UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186284

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 3.11 Accession No. H 29739

Author R.26.S

Title

This book should be returned on or before the date last marked below

विषय-सूची

भूमिका .. १

१. प्रधान अध्यापक ७

२. अध्यापक-मंडल ३१

३. अनुशासन ४५

४. पाठशाला का संसृष्ट जीवन ६६

५. पाठ्य-क्रम ७२

६. समय-चक्र-विभाग (Time Table) ८६

७. आन्तरिक व्यवस्था ९८

८. छात्रावास १२५

९. स्वास्थ्य १४३

१०. शारीरिक क्रियाएँ १५३

११. अन्य क्रियाएँ १६४

१२. भवन तथा फर्नीचर १८७

१३. प्रबन्धकारिणी समिति तथा प्रबन्धक . .. १९६

१४. पाठशाला-निरीक्षण २०६

१५. माता-पिता तथा पाठशाला २१८

१६. धार्मिक शिक्षा २३०

१७. ग्राम्य शिक्षा २३८

परिशिष्ट २५४

हॉकी २५४

एसोसिएशन फ़ुटबॉल २६०

रगर टच २६४

क्रिकेट २६६

बॉलीबॉल २७३

बास्केटबॉल २७७
छोटे खेल २८०

योजना-सूची

१. पंजाब में १०० लड़कों के लिए छात्रावास की योजना का ढंग पृ० १९२ के सामने
२. पंजाब के एक प्राथमिक, माध्यमिक एवं हाई स्कूल की योजना पृ० १९३
३. मद्रास की एक सेकेंडरी पाठशाला के लिए एक तरह का नमूना पृ० १९४
४. ४० विद्यार्थियों के लिए हाई स्कूल का विज्ञान-कक्ष पृ० १९५

शिक्षालय-संगठन

[भारत में शिक्षालय-संगठन के लिए सुझाव]

डब्ल्यू. एम. रायबर्न

एम० ए०, लिट्० डी०

अनुवादिका

रामेश्वरी देवी श्रीवास्तव,

एम० ए०, बी० एड० एससी०, एम० एड०

अध्यक्षा—इतिहास-विभाग,

महिला विद्यालय, लखनऊ

लखनऊ

दि अपर इंडिया पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड

१९५८

प्रथम हिन्दी संस्करण १९५५
पुनर्मुद्रण १९५८

१९५८, दि अपर इंडिया पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड
लखनऊ

Checked 1969

मुद्रक
दि अपर इंडिया पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड
लखनऊ

प्राक्कथन

इस पुस्तक की रचना उन व्यक्तियों को ध्यान मे रखकर की गई है जो शिक्षक बनने के लिए प्रशिक्षण-कक्षाओं में अध्ययन कर रहे है और जो इस बात का कुछ व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं कि पाठशालाओं का संगठन किस प्रकार होता है, (तत्सम्बन्धी) कतिपय समस्याएँ क्या है और उनका सामना किस तरह से किया जा सकता है। यह भी आशा की जाती है कि (इस पुस्तक में) स्थान-स्थान पर उन लोगों को, जो संगठन-कार्य में पहले ही मे लग चुके हैं, कुछ सहायता-पूर्ण सुझाव प्राप्त हो सकेंगे।

इस अवसर पर मैं श्री वी० डी० घाटे, एम० ए०, टी० डी०, जिन्होंने मुझे अनेक सहायतापूर्ण सुझाव दिये; श्री जे० ई० पार्किन्सन, जिन्होने मुझे पंजाब एजूकेशनल जरनल से विज्ञान-कक्ष, छात्रावास भवन तथा विद्यालय भवन के नक़शों की नकल करने की अनुमति दे दी; पंजाब के सार्वजनिक शिक्षा-संचालक, जिन्होने पंजाब के एजूकेशनल कोड से अध्यापकों की नियुक्ति के लिए होनेवाले समझौते के फ़ॉर्म को उद्धृत करने की आज्ञा दी; मद्रास की संरकार, जिसने एक शिल्पी का आलेख्य दे दिया जिसके ऊपर नकशा नं० ३ आधारित है; डॉ० ए० एल० सदरलैंड, जिन्होंने डॉक्टरी निरीक्षण का फ़ॉर्म दिया और श्री आर० एम० चेतसिंह, जिन्होने सुझाव दिये, इन सभी के प्रति अपना कृतज्ञतापूर्ण धन्यवाद प्रगट करना चाहता हूँ।

खरार
१२-१२-३४

डब्ल्यू० एम० रायबर्न

अनुवादिका की ओर से

आज रायबर्न महोदय की 'Suggestions for the Organization of Schools in India' को हिन्दी भाषा का नवीन परिधान पहना कर पाठकों के समक्ष रखते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। राष्ट्र-भाषा बनकर हिन्दी ने जो महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है वह किसी से छिपा नहीं है। ऐसी अवस्था में हिन्दी भाषा की पुस्तकों की माँग बढ़ जाना स्वाभाविक ही है। विश्वविद्यालय की कक्षाओं में हिन्दी माध्यम स्वीकार हो जाने के कारण विद्यार्थियों को हिन्दी में लिखी हुई संदर्भ पुस्तकों की आवश्यकता और भी अधिक जान पड़ने लगी है। इस दिशा में विद्यार्थी समाज की किंचित्मात्र सेवा करने के अभिप्राय से उपर्युक्त पुस्तक का रूपान्तर किया गया है।

लेखक ने अपनी इस छोटी-सी रचना में "गागर में सागर" भर दिया है; फल-स्वरूप भारतीय पाठशाला संगठन का कोई भी पहलू इससे अछूता नहीं रह पाया है। यद्यपि इस पुस्तक का जन्म अब से लगभग इक्कीस वर्ष पूर्व (१२-१२-१९३४) हुआ था तथापि इसमें दिये गये सुझाव इतने स्वाभाविक एवं व्यावहारिक है कि आज भी वे ज्यों के त्यों लागू किये जा सकते है। यही कारण है कि यह पुस्तक प्रशिक्षण कक्षाओं में अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों की एक अमूल्य निधि बन गई है।

उस "अमूल्य निधि" को किसी प्रकार की काट छांट किये बिना ही पाठकों के पास तक पहुंचा देने के अभिप्राय से पुस्तक का अनुवाद करते समय इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है कि भाषा परिवर्तन के साथ भाव परिवर्तन न होने पाये। जहां कहीं इसका भय जान पड़ा है वहां हिन्दी शब्दों के साथ-साथ अंग्रेजी शब्द भी दे दिये गये है। हिन्दी के क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग कम-से-कम किया गया है और भाषा को सर्वग्राह्य बनाने का पूर्ण प्रयास किया गया है। मौलिक पुस्तक में दिये हुए चार्ट कुछ धुधले हो गये है और साथ ही उनमे इतने छोटे अक्षरों का प्रयोग किया गया है कि उनका अध्ययन नेत्रों के लिए बड़ा कष्टकर बन जाता है। इस कठिनाई को दूर करने के विचार से प्रस्तुत पुस्तक में सारे चार्ट फिर से बड़े स्पष्ट ढंग से बनाये गये हैं और अक्षर छोटे होते हुए भी इतने बड़े हैं कि विद्यार्थियों को उनके पढ़ने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो। इस प्रकार अनुवादिका एवं प्रकाशक द्वारा इस बात का भरसक प्रयत्न किया गया है कि पुस्तक पूर्णतया सफल हो। पाठकों से निवेदन है कि यदि इसमें कोई त्रुटि रह गई हो तो अपने सुझाव देकर हमें अनुगृहीत करें। यह अनुवाद अंग्रेजी संस्करण के १९४८ के पुनर्मुद्रण से किया गया है।

रामेश्वरी देवी श्रीवास्तव
अनुवादिका

१.११.५५.

भूमिका

प्रवृत्ति एवं आदर्श का ही दूसरा नाम संगठन है। हमारी संस्था का संगठन उसी उद्देश्य के अनुसार होगा, जिसको सामने रखकर हम कार्य करेंगे। इस पुस्तक मे अनेक स्थानों पर विभिन्न रुखों, सम्बन्धो एव आदर्शो पर ज़ोर दिया गया है, जिसका अनुभव पाठक स्वयं करेंगे। ऐसा करने का कारण यह है कि मैं स्वयं पूरे दावे के साथ यह अनुभव करता हूं कि ये ही वे सत्य है जिनके आधार पर सच्चे तथा उचित संगठन का निर्माण होना चाहिए, और जब तक वे रुख, सम्बन्ध, आदर्श तथा उद्देश्य ठीक न होंगे और सद्इच्छा एवं मनोवैज्ञानिक ज्ञान से ओत-प्रोत न होंगे, तब तक कोई भी संगठन अथवा संगठन की योजना इस नाम से सम्बोधित होने की अधिकारिणी नही हो सकती।

आदिरूप में संगठन विद्यालय के प्रबन्ध, समय-सारिणी, अध्ययन की योजनाओं, विभिन्न प्रकार के भवनों, रजिस्टरों तथा पाठ्य-क्रमों का ही विषय नही है। उसका मुख्य विषय तो है—हमारा वह रुख, जो हम अपने काम तथा अपने साथ काम करनेवालों के प्रति रखते हैं। हमारे लिए तो सबसे अधिक विचारणीय हैं--हमारे कार्य का उद्देश्य तथा वे बच्चे, जिनके साथ हम काम करते हैं। साधारण रूप से संगठन का तात्पर्य है—वे व्यावहारिक उपाय, जिनका सहारा लेकर हम यह चेष्टा करते हैं कि जिस कार्य-प्रणाली का प्रयोग हम करें, वह हमारे उद्देश्यों की पूर्ति में अधिक-से-अधिक

सहायक हो सके और हमारे बच्चों को उससे अधिक-से-अधिक लाभ हो सके।

मैंने जान-बूझ कर 'साथ' शब्द का प्रयोग किया है—"वे बच्चे जिनके साथ हम कार्य करते हैं।" पाठशाला के लिए सबसे आवश्यक बात यह है कि वह एक सहकारी सभा के रूप में कार्य करे। पुस्तक भर में जगह-जगह पर इस बात के ऊपर ज़ोर दिया गया है—प्रधान अध्यापक तथा अध्यापक-वर्ग के बीच सहयोग, अध्यापकों का पारस्परिक सहयोग, प्रधान अध्यापक तथा छात्रों में सहयोग, अध्यापकों तथा छात्रों में सहयोग और स्कूल तथा बच्चों के माता-पिता में सहयोग। हमारा संगठन इस सहकारी सभा (co-operative society) को निश्चित रूप से निपुणता एवं निर्विघ्नता के साथ अपना कार्य सम्पादन करने में समर्थ बनानेवाला एक साधन है। परन्तु सबसे अधिक ध्यान इस बात का रखना चाहिए कि संगठन की स्थापना करने के लिए हम जिन उपायों का प्रयोग करें, वे किसी प्रकार भी सहयोग की इस प्रवृत्ति के विरुद्ध न हों, अथवा हमें अपने उद्देश्य-पथ से विचिलत करने के कारण न बनें।

व्यवस्थापन तथा व्यवस्था दोनों ही धोखे मे डाल देनेवाली चीज़ें हैं। इसके पूर्व कि हम यह जानें कि हम कहां हैं, हमारे और हमारे विद्यार्थियों के बीच दो बातें आ जाती हैं—हमारी व्यवस्था करने की अभिलाषा और व्यवस्थापन में हमारी व्यस्तता। फलस्वरूप हम अपनी योजनाओं में, सरकुलरों (circulars) में, काग़ज़ातों और रजिस्टरों की लिखा-पढ़ी में इतने निमग्न हो जाते है कि उस व्यक्तिगत संसर्ग तथा व्यक्तिगत सम्पर्क को, जो हमारे लिए सबसे अधिक मूल्यवान् है और जिसकी उत्पति की ओर हमें सबसे अधिक ध्यान देना चाहिए, खो बैठते है। हर एक मनुष्य, जो संगठन से तनिक भी सम्बन्ध रखता है, इस बात को अच्छी तरह समझता है। और सम्भवत: हममें से अधिकांश लोगों को यह बात माननी पड़ेगी कि हमने संगठन को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दे रखा है, अथवा यों कहिए कि संगठन के ऊपर हमने जितना ज़ोर दिया है वह उचित नहीं। सम्भवत: आज के अधिकारी-वर्ग पर जो सबसे बड़ा दोष लगाया जा सकता है, वह यह है कि वे (बच्चों के साथ) व्यक्तिगत संसर्ग एवं व्यक्तिगत सम्पर्क को तिलांजलि देकर अपने को विद्यालय-सम्बन्धी विस्तृत विवरणों तथा हिसाब-किताब में ही फंसाये रखते हैं; और इसीके कारण देश भर की शिक्षा-प्रणाली तथा देश के बच्चों को हानि पहुँच रही है।

पाठशाला का केन्द्रबिन्दु है—'बालक'। अत: हमारे संगठन के अन्दर कोई

भी बात ऐसी न आनी चाहिए जो उसके विकास में बाधक हो, बल्कि दूसरी ओर संगठन तो इस प्रकार का होना चाहिए जो उसके विकास में सहायक हो! इसीलिए पाठशाला को एक सहकारी संस्था के रूप में सामने रखना इतना आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति को इस बात की स्वतन्त्रता अवश्य होनी चाहिए कि वह दूसरों की संगति में रहकर उन्हीं के साथ परस्पर आदान-प्रदान करते हुए अपना विकास करता रहे। यह तो स्वाभाविक ही है कि कुछ लोगों की देन (contribution) दूसरों की अपेक्षा अधिक होगी। बच्चा तो धीरे-ही-धीरे समझेगा कि वह एक सहकारी संस्था का सदस्य है। हमारी पाठशाला की व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए कि प्रत्येक क्रिया तथा पाठशाला के समस्त कार्य इस द्वैध उद्देश्य (double object) की ओर लक्ष्य करते हों—सहयोग की प्रवृति एवं किसी लक्ष्य-विशेष पर पहुँचने के लिए दूसरों के साथ मिलकर कार्य करने की क्षमता का विकास तथा एक ऐसे विश्व का निर्माण जहां बालक को व्यक्तिगत रूप से अपनी रुचियों एवं अपने झुकाव के अनुरूप अपना विकास करने की स्वतन्त्रता हो।

स्वाभाविक रूप से इस विकास के अन्तर्गत उसका मानसिक विकास ही नहीं, उसके व्यक्तित्व के सभी अंगों का विकास शामिल होगा। इसके अन्दर मानसिक विकास के साथ-साथ उसका शारीरिक, सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास भी सम्मिलित होगा। इसीलिए उन लोगों को, जो पाठशाला-संगठन से सम्बन्धित हों, उन सभी प्रबन्धों के साथ सम्बन्ध रखना चाहिए, जो इन समस्त दिशाओं में बालक का विकास कराने के लिए किये जायँ। इनमें से किसी की भी उपेक्षा करने का तात्पर्य यह है कि पाठशाला अपने कर्तव्य को पूरी तरह से नहीं निभा रही है। पाठशाला का उद्देश्य होना चाहिए व्यक्तिगत रूप में बालक को अपने स्वभाव के समस्त तत्त्वों एवं शक्तियों में सामंजस्य रखते हुए अपना विकास करने के योग्य बनाना, उसको अपनी समस्त मूल-प्रवृत्तियों का प्रयोग तथा शोधन करने के लिए सुयोग देना, अपनी रुचियों को स्वतन्त्र रूप से व्यक्त करने की सुविधा प्रदान करना, और एक ऐसे आदर्श की जागृति करने की चेष्टा करना जो बालक के जीवन में नियन्त्रणकर्ता का कार्य कर सके, और इस प्रकार उसकी शक्तियों एवं मूल-प्रवृतियों में सामंजस्य बनाये रखकर उसको (उसकी शक्तियों तथा मूल-प्रवृतियों को) उस आदर्श का पालन करने में लगाये रख सके। दूसरे शब्दों में, पाठशाला का उद्देश्य है अपने छात्रों में एक ऐसे

व्यक्तित्व की उत्पत्ति करना जिसमें सामंजस्य हो, जो पूर्णतया विकसित हो, और जो अपनी निश्चित रुचियों को बनाये रखने के साथ-साथ दूसरों के सहयोग में अपने को व्यक्त करने की क्षमता रखता हो।

यह कार्य संगठन का है कि वह स्कूल को एक ऐसा सूक्ष्म जगत् बना दे जहां बालक अपनी आयु-वृद्धि के साथ-साथ ऐसा करने में भी समर्थ हो सके और जहां पर आवश्यक सहायता एवं मार्ग-दर्शन पाकर उसे अपने लिए यह सब करने की स्वतन्त्रता हो। पाठशाला में क्रमबद्धता तथा व्यवस्था क़ायम करने के लिए जो भी उपाय अपनाया जाय, उसमें इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। संगठन करते समय इस उद्देश्य एवं अभिप्राय को जितना ही भुला दिया जायगा, पाठशाला अपने वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति से उतनी ही दूर हटती जायगी।

पाठशाला-संगठन में सम्यक् उद्देश्य और सम्यक् (right) सहकारी प्रवृत्ति होने के साथ-ही-साथ हर चीज़ की ओर विस्तृत ध्यान भी बहुत जरूरी है। सफल संगठनकर्ता वही है, जो हर चीज की छोटी-से-छोटी बात का ध्यान रखे और जिसमें एक प्रतिभावान् व्यक्ति की तरह काम करने के लिए कष्ट उठाने की अपरिमित क्षमता हो। मेरा यह कहने का मतलब नहीं कि संगठनकर्ता अपने को तमाम छोटी-छोटी बातों में ही लगा दे। पर हां, मैं यह कहूँगी कि उसे यह पहले ही से सोच लेना चाहिए कि किस समय क्या होने की सम्भावना है, और उन सारी ही बातों का प्रबन्ध कर देना चाहिए जो देखने में तो बिलकुल मामूली-सी जान पड़ती हों पर जिनकी वजह से उसके सगठन के बनने और बिगड़ने का अंदेशा हो। जिस प्रकार बढ़ई उस मेज़ की, जिसे वह बना रहा हो, अथवा दर्ज़ी उस पोशाक की, जिसे वह सिल रहा हो, कुछ छोटी-छोटी बातों में ऐसी हाथ की सफ़ाई दिखा दे कि बनकर तैयार होने पर वे अति सुन्दर जान पड़ने लगें; उसी प्रकार सावधानी के साथ छोटी-छोटी बातों की ओर ध्यान देना और उन सभी चीज़ों का पहले से प्रबन्ध कर लेना, जिनकी आवश्यकता आ पड़ने का अदेशा हो, एक सफल संगठनकर्ता बनने की कुंजी है। वह व्यक्ति, जो भाग्य में विश्वास रखता है और हर काम ऐन मौक़े के लिए टाल देता है, कभी अच्छी व्यवस्था क़ायम नहीं कर सकता। ज़रा-सी बात में लापरवाही हो जाने से पूरी समय-सारिणी (time table) गड़बड़ हो जायगी।

यह कहने के साथ-ही-साथ यह बताना भी जरूरी है कि बिना जरूरत तफसीलों (details) को बढ़ाते रहना कितना अनुचित है। अच्छा संगठन छोटी-बड़ी सभी चीजों की ओर सावधानी से ध्यान देने पर ही निर्भर रहता है, पर इसका यह मतलब नहीं कि हम ध्यान देने ही के लिए जबर्दस्ती हर चीज को विस्तृत बना दें विशेषकर दूसरों के लिए। स्कूलों की ओर से निरीक्षकों (inspectors) के कार्यालय के विरुद्ध यह एक बड़ी आम शिकायत है। ऐसी किसी तफसील की आवश्यकता नहीं जो जरूरी न हो, पर साथ ही उन सभी तफसीलों की ओर ध्यान देना चाहिए जो जरूरी हैं। प्रधान अध्यापक तथा शिक्षक-वर्ग को अपने-आप यह तय कर लेना चाहिए कि उनके अपने स्कूल में कौन-कौन-सी चीजें जरूरी हैं।

प्रधान अध्यापक तथा शिक्षक-गण को निरन्तर संगठन को सरल बनाने के मार्ग और उपायों की खोज करते रहना चाहिए। संगठन-सम्बन्धी अनेक झंझटों और नियमों का होना एक सुसंगठित पाठशाला का चिह्न नहीं। ऐसे नियम चाहे आवश्यक हों या न हों, पर जरूरी बात तो यह देखना है कि संगठन निर्विघ्न रूप से सामंजस्य के साथ उस उद्देश्य एवं अभिलाषा की पूर्ति के मार्ग पर आरूढ़ है, जिसके लिए पाठशाला का अस्तित्व है। ऐसे परिवर्तन का सदैव स्वागत करना चाहिए जो पाठशाला के सुप्रबन्ध में हस्तक्षेप किये बिना उसके कार्य को अधिक सरल और निर्विघ्न बना दे।

अध्याय १

प्रधान अध्यापक

पाठशाला में प्रधान अध्यापक का स्थान उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना एक जहाज में कप्तान का। प्रधान अध्यापक पाठशाला के विभिन्न अंगों को एकीकरण के सूत्र में बांधकर रखनेवाला वह साधन है जो सस्था भर में सन्तुलन बनाये रखता है और साथ ही इस बात की चेष्टा करता रहता है कि उसका शान्तिपूर्वक सर्वांगीण विकास होता रहे। वही पाठशाला की गति का निर्धारक है और वही उन परम्पराओं को, जो समय के साथ-साथ विकसित होती रहती है, एक निश्चित रूप देनेवाली मुख्य शक्ति है। अतः यह आवश्यक है कि वह केवल एक उच्च चरित्रवाला मनुष्य ही न हो, वरन् वह एक निष्ठा (faith) वाला व्यक्ति भी हो, जिसे अपने पेशे में श्रद्धा हो, अपने विद्यार्थियों में निष्ठा हो, मानव स्वभाव में निष्ठा हो और अपने अध्यापक वर्ग में निष्ठा हो। प्रधान अध्यापक के चरित्र का सबसे महत्त्वपूर्ण गुण है—उसकी प्रेरक शक्ति; छात्रों को मिलनेवाले समस्त सुयोगों का समुचित उपयोग करने की प्रेरणा देते रहना, ताकि वे अपनी ईश्वर-प्रदत्त शक्तियों के अनुरूप अपना उच्चतम विकास कर सकें तथा उनमें अपने प्रति (प्रधान अध्यापक के प्रति) एवं अपनी मन्त्रणा, बुद्धि तथा सद्इच्छा के प्रति विश्वास उत्पन्न करने की प्रेरणा देते रहना;

अपने सहायक अध्यापक-वर्ग में शक्ति एवं जीवन का संचार करके उनको, परस्पर मेल और सद्‌इच्छा से रहने की प्रेरणा देते रहना और उनमें अपने प्रति उनके (अध्यापकों के) नेता के रूप में विश्वास रखने की प्रेरणा देते रहना।

यदि कोई भी पाठशाला सफलता के सोपान पर चढ़ना चाहती है तो उसके प्रधान अध्यापक के प्रति इस प्रकार का विश्वास पैदा होना सबसे अधिक आवश्यक है। बार-बार यह बात देखने में आती है कि पाठशाला की उन्नति में केवल एक रुकावट है। वह क्या ? प्रधान अध्यापक में अपनी प्रेरणा द्वारा अपने प्रति विश्वास तथा अपने अध्यापक-वर्ग में पारस्परिक सद्‌भावना उत्पन्न करने की क्षमता का अभाव। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अपने प्रति विश्वास वही मनुष्य उत्पन्न कर सकता है जो उस विश्वास का पात्र हो। पर अक्सर यह भी देखा जाता है कि प्रधान अध्यापक व्यक्तिगत रूप से विश्वास का पात्र होते हुए भी, अपने अध्यापक-वर्ग तथा विद्यार्थियों के मन में अपने प्रति वह विश्वास नहीं उत्पन्न कर पाता। विश्वास उत्पन्न करने के लिए केवल विश्वासपात्र होना ही पर्याप्त नहीं। सच तो यह है कि वह तो युद्ध का आधा ही भाग है; बचे हुए आधे भाग की प्राप्ति तो लड़कर विजय प्राप्त करने से ही होगी।

पहली बात तो यह है कि प्रधान अध्यापक के लिए यह आवश्यक है कि वह अध्यापक-वर्ग एवं विद्यार्थियों के प्रति होनेवाले अपने बर्ताव में सहानुभूतिपूर्ण कल्पना का विकास करे। पाठशाला के अध्यापक-वर्ग हमेशा ही भिन्न-भिन्न श्रेणी तक शिक्षित होते हैं, उनकी योग्यता अलग-अलग होती है, उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भिन्न होती है, उनके धर्म अलग होते हैं और यहां तक कि उनके जीवन-सम्बन्धी आदर्श भी अलग-अलग होते हैं। उसको चाहिए कि वह उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि, शिक्षा-सम्बन्धी पृष्ठभूमि तथा उनका व्यक्तिगत इतिहास समझने की चेष्टा करे, ताकि वह उनकी कठिनाइयों को, जीवन के प्रति उनकी प्रतिक्रिया को और जीवन की विभिन्न स्थितियों को सहानुभूति के साथ समझ सके। इसका मतलब यह नहीं कि वह विद्यालय के प्रत्येक शिक्षक की जांच करता रहे। जिन बातों को जानना उसके लिए जरूरी है, वे एकदम से नहीं जानी जा सकतीं; वे तो बहुत दिनों में धीरे-धीरे अध्यापक-मण्डल के प्रत्येक अध्यापक के साथ मित्रवत् व्यवहार स्थापित कर लेने के बाद ही मालूम हो सकती हैं। यह तो स्वाभाविक है कि विद्यालय के

प्रत्येक अध्यापक के साथ उसकी मित्रता समान रूप से नहीं हो सकती, कुछ अध्यापक उसे अधिक आकर्षित करेंगे और कुछ कम, परन्तु वह विद्यालय के सभी अध्यापकों के प्रति 'दोस्ताना रुख' बनाये रख सकता है, ताकि वे (अध्यापक) यह समझते रहें कि वह (प्रधान अध्यापक) उनके प्रति सहानुभूति रखता है और उनके दृष्टिकोण तथा उनकी कठिनाइयों को समझने की भरसक चेष्टा करता है। यह सबसे ज़्यादा ज़रूरी है कि प्रधान अध्यापक अपने विद्यालय के अध्यापक-मंडल के प्रति इस प्रकार का मित्रवत् तथा सहानुभूतिपूर्ण रुख पैदा करे।

दूसरी बात यह है कि प्रधान अध्यापक को यह देखना चाहिए कि अध्यापक-वर्ग के प्रति होनेवाले उसके समस्त व्यवहार सहयोग के सिद्धान्त पर आधारित हों, और ठीक तो यही है कि पाठशाला की पूर्ण व्यवस्था एवं पूर्ण संचालन ही इस सिद्धान्त के अनुसार हो। यह मित्रवत् रुख का उपसिद्धान्त (corollary) है। प्रधान अध्यापक को अपने-आपको एक निरंकुश शासक न समझना चाहिए, जिसका कर्तव्य हो केवल हुक्मों को जारी करना ; ऐसे हुक्म जिनका पालन अध्यापक-वर्ग के द्वारा उस पुराने सिद्धान्त के अनुसार, जो कहता है कि "तुमको यह पूछने का अधिकार नहीं कि ऐसा क्यों हो रहा है", हो। इसके विपरीत वह तो एक ऐसे समुदाय का मुखिया है जिसके सभी सदस्य एक साथ मिलकर एक ही अभिप्राय की पूर्ति के लिए कार्य कर रहे हैं। इस प्रकार वह अध्यापक-मंडल के सदस्यों के लिए हुक्म जारी करने के बजाय उनका सहयोग प्राप्त करने की चेष्टा करेगा। जब वह सोचता है कि किसी चीज़ में कुछ-परिवर्तन होना चाहिए, तब वह अपने अध्यापक-मंडल की सलाह लेगा। यह मन्त्रणा वास्तविक मंत्रणा होनी चाहिए, वह दिखावटी मंत्रणा नहीं जहां प्रधान अध्यापक जो कुछ करना चाहता है उसके सम्बन्ध में पहले ही भाषण दे देता है और इस बात को इतना स्पष्ट कर देता है कि हरएक को उसके साथ सहमत होना ही पड़ता है, और कोई भी उसकी आलोचना करने अथवा विपरीत मत प्रकट करने का साहस नहीं कर सकता। अध्यापक-मंडल से वास्तविक सहयोग प्राप्त करना आसान काम नहीं। अधिकांश मामलों में तो अध्यापक-गण उस प्रधान अध्यापक के प्रति, जो सहयोग प्राप्त करने की चेष्टा करता है, क्षण भर के लिए संदेह कर ही लेंगे। अध्यापक-गण प्रधान अध्यापक की निरंकुशता के इतने आदी हो जाते हैं कि उनमें से बहुतेरे अपनी यथार्थ सम्मति देते डरते हैं। दूसरे (अध्यापक) यह सोचते हैं कि अपनी राय

देने से कोई फायदा नहीं, क्योंकि जो कुछ वे कहेंगे उसके ऊपर कोई ध्यान तो दिया न जायगा। और लोग (अध्यापक) अपनी हर बात में दूसरों से सलाह लेने के इतने आदी हो गये हैं कि उनमें अपने लिए विचार करने की शक्ति ही नहीं रह गई है।

परन्तु इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी प्रधान अध्यापक का उद्देश्य यही होना चाहिए कि वह वास्तविक सहयोग की प्राप्ति करे; ऐसा सहयोग, जहां सभी की राय और दृष्टिकोण की ओर पूरा-पूरा ध्यान दिया जाय और जहां पाठशाला के संचालन एवं भलाई के सम्बन्ध में होनेवाले वाद-विवाद के फलस्वरूप लोगों की वास्तविक सम्मति तथा अनभव मालूम किये जा सकें। वहां ऐसे वाद-विवाद होंगे जिनमें सबको अपनी वास्तविक राय देने का समान रूप से अवसर मिलेगा और जो भी राय दी जायगी, वह ऊपर से लादी जानेवाली किसी एक मनुष्य की राय न होगी। इसका मतलब तो यही हुआ कि अपनी पाठशाला का प्रबन्ध और अपने अध्यापक-वर्ग के साथ व्यवहार करने में प्रधान अध्यापक अपने समस्त निरंकुश उपायों को उठाकर ताक पर रख दे। वास्तविक सहयोग और निरंकुशता साथ-साथ कार्य नहीं कर सकते। यदि पाठशाला को वास्तव में सफल बनाना है तो सहयोग के द्वारा निरंकुशता को निकाल बाहर करना ही होगा।

सम्भवतः यह प्रश्न उठेगा कि "उस हालत में प्रधान अध्यापक को क्या करना चाहिए, जब कि वह कोई ऐसी नई बात करने के लिए बड़ा उत्सुक है जिससे उसके विचार में पाठशाला की भलाई अवश्य होगी, पर जिसके आरम्भ होने से अध्यापक-वर्ग के विरोध का सामना करना पड़ेगा?" निस्सन्देह यह स्थिति बड़ी कठिन होगी, और इसलिए और भी, क्योंकि बहुत से अध्यापक, जो अच्छी तरह से यह समझते हुए भी कि प्रस्तुत सुझाव अनुचित है, यह देखकर कि प्रधान अध्यापक उसको कार्यान्वित करने के लिए बहुत लालायित है, डर के मारे अपनी राय पर क़ायम न रह सकेंगे। ऐसी हालत में पहला काम जो प्रधान अध्यापक को करना चाहिए वह यह है कि वह अपने सुझाव पर फिर से विचार करे। यदि अधिकांश लोग उसके विरुद्ध हैं तो सम्भावना इस बात की है कि उसका (प्रधान अध्यापक का) सुझाव ही दोषपूर्ण हो। फिर यदि पुनः विचार करने के बाद भी उसे इस बात का संतोष है कि उससे पाठशाला की भलाई अवश्य होगी, तो उसे चाहिए कि वह उस योजना के सम्बन्ध में लोगों को

विस्तारपूर्वक वाद-विवाद करने का समय दे। उस विचार को धीरे-धीरे लोगों के मन में बैठाने का अवसर दिया जाय। जब समय के साथ-साथ उसकी नवीनता चली जायगी तो विरोध भी अपने-आप ही कम हो जायगा। यदि विचार वास्तव में अच्छा है तो ऐसा करने से विरोध बिलकुल खतम हो जायगा। उसे अध्यापक-वर्ग के सामने मामला रख देना चाहिए, पर अपना निर्णय उनके ऊपर लादने की चेष्टा न करनी चाहिए।

दूसरा उपाय यह हो सकता है कि वह अध्यापकों से यह कहे कि वे उसके विचार अथवा योजना को कुछ काल तक चलाकर देखें और वह उनसे इस बात की प्रतिज्ञा कर ले कि यदि योजना सफल होती हुई न दिखाई पड़ेगी तो वह उसका त्याग करने के लिए तैयार होगा। अधिकांश अध्यापक अपना उत्तरदायित्व अच्छी तरह से समझनेवाले होते हैं और वे ज़रूर इस बात को मान जायँगे। असल बात तो यह है कि जब प्रधान अध्यापक किसी पाठशाला में नया-नया जाता है तो उसके सामने बहुत-से मामले ऐसे आते हैं जिनमें अपनी सत्ता के बल पर अपना विचार अथवा अपनी योजना बलात् लादने के सिवा और कोई चारा ही नहीं होता। जैसे-जैसे समय बीतता है और मित्रवत् रुख तथा विश्वास की भावना को, जिसका ज़िक्र पहले हो चुका है, बढ़ने का समय मिलता है, वैसे-वैसे प्रधान अध्यापक के सामने आनेवाले इस तरह के मामलों की संख्या घटती जाती है और धीरे धीरे उनकी संख्या नहीं के बराबर हो जाती है।

इस सम्बन्ध में एक बात है, जिसका स्मरण प्रधान अध्यापक को हर समय अवश्य रखना चाहिए। वह यह है कि जब वह किसी नई पाठशाला में जाय तो पहले धीरे-धीरे सब काम करे। वहां पर उसे अनेक परिवर्तन करने की आवश्यकता दिखाई पड़ेगी; पर यदि वह जल्दबाज़ी से काम लेगा तो तमाम मुसीबतों में फँस जायगा। वहां पहुँचते ही सुधार का विस्तृत कार्यक्रम जारी कर देने के बजाय उसके लिए तो अच्छा यही होगा कि वह कुछ समय तक रुका रहे, ताकि अध्यापक-वर्ग, विद्यार्थी और उनके माता-पिता उसे जान जायँ। उसको याद रखना चाहिए कि इन सब बातों में समय लगता ही है। यदि वह आरम्भ में धीरे-धीरे चलता है और अपने परिवर्तनों का आरम्भ शनैः-शनैः करता है तो उसकी सफलता कहीं अधिक निश्चित होगी, और सारी बातों को देखते हुए पाठशाला की उन्नति भी कहीं जल्दी होगी।

नये प्रधान अध्यापक तथा नये निरीक्षक भी कभी-कभी ऐसा सोचते है कि अपने आगमन को अधिक महत्त्वपूर्ण बनाने के लिए अपने पूर्वाधिकारियों के तरीक़ों तथा कार्य में सम्भवतः जितने भी परिवर्तन हो सकें, कर डाले जायँ। यह एक गलती है। चाहे कितने ही परिवर्तनों की आवश्यकता क्यों न हो, परन्तु यदि प्रधान अध्यापक हर काम में बहुत जल्दी करना है तो वह अपने ही लक्ष्य से दूर हो जाता है।

मित्रवत् रुख का, जिसके ऊपर हमने जोर दिया है, यह मतलब नहीं कि अगर जरूरत हो तब भी साफ़ बात न कही जाय या सीधा काम न किया जाय। मित्र का काम यह नहीं कि वह मीठी-मीठी बातें कहकर सन्तुष्ट हो जाय और बुराइयों की तरफ़ ध्यान ही न दे, हालांकि अक्सर समझा यही जाता है। सच्चे मित्र का यह कर्तव्य है कि वह अपने मित्र को ठीक रास्ते पर लाये, चाहे उसे समय पड़ने पर कड़ी बात कहने की आवश्यकता ही क्यों न पड़ जाय। प्रधान अध्यापक का कर्तव्य है कि वह अपने अध्यापक-वर्ग के कार्यों का एक उचित स्तर बनाये और यदि उसे उनके काम में ढिलाई, लापरवाही, अव्यवस्था और संदेहयुक्त व्यवहार दिखाई पड़े तो बिना किसी प्रकार की दुर्बलता दिखाये उनकी खबर ले। मित्रवत् रुख कायम करने का यह मतलब नहीं कि आदमी लापरवाह हो जाय और जो जैसा हो रहा है, उसे वैसे ही होने दे। जब ज़रूरत हो तब उसे तीक्ष्णता के साथ और विषय के ऊपर ही बोलने अथवा कार्य करने के लिए तैयार रहना चाहिए; परन्तु ग़लती करनेवाले के चरित्र, वातावरण और उसकी दशाओं को समझते हुए सहानुभूति के साथ ऐसा किया जा सकता है। मित्रवत् रुख होने के साथ-साथ जो डांट-फटकार होगी, उसकी अनुभूति अधिक होगी, और उसका प्रभाव भी अधिक महत्त्वपूर्ण होगा।

अपने सहकारी-समुदाय का मुखिया होने के नाते प्रधान अध्यापक का कर्तव्य है कि वह स्वयं अपने को एक स्तर तक उठाये रहे। यदि वह अन्धों का अन्धा नेता नहीं है तो उसे अपने-आपको शिक्षा-सम्बन्धी नवीन आन्दोलनों के उन उपयोगों के, जो भारत के विभिन्न भागों तथा दूसरे देशों में किये जा रहे हैं, शुद्ध मनोविज्ञान तथा शिक्षा-मनोविज्ञान के नवीन विचारों के और न्यू ऐजूकेशनल फेलोशिप (New Educational Fellowship) जैसी संस्थाओं के संसर्ग में रखना चाहिए, जिनका उद्देश्य रहता है अपने सदस्यो और शिक्षण-व्यवसाय को शिक्षा-सम्बन्धी आधुनिक विचार एवं अभ्यास के साथ-ही-साथ चलाते रहना। उसे चाहिए कि वह

शिक्षा तथा मनोविज्ञान-सम्बन्धी तरह-तरह की जितनी भी पत्रिकाएँ पढ़ सके उतनी पढ़े तथा आसानी से विद्यालय के लिए अधिक-से-अधिक जितनी भी मँगा सके, मँगाये। उसे इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि उसका अपना वाचनालय और साथ ही पाठशाला का वाचनालय, दोनों ही आधुनिक साहित्य से युक्त हों। मैं ऐसे अनेक प्रधान अध्यापकों को जानता हूँ जो पूरे साल में शायद एक किताब भी न ख़रीदते होंगे। प्रत्येक प्रधान अध्यापक, जो वास्तव में इस पद का अधिकारी है, अपने वेतन की एक निश्चित रक़म ज़रूर ऐसी पुस्तकों के ख़रीदने में ख़र्च करेगा, जिनसे उसे अपने पेशे मे सहायता एवं प्रेरणा मिलेगी। उसे चाहिए कि वह कभी-कभी उन प्रायोगिक पाठशालाओं को देखने के लिए जाय, जहां पर मार्ग-दर्शक (Pioneer) कार्य करने की चेष्टा की जा रही है। साथ-ही-साथ उसे कभी-कभी मामूली ढंग की, परन्तु अच्छी पाठशालाओं का भी निरीक्षण करना चाहिए। उसे ऐसे वक्ताओं की खोज में रहना चाहिए, जो शिक्षा अथवा मानव-स्वभाव के ऊपर उन सभाओं के सम्मुख कुछ बोल सकें, जहां अध्यापक-वर्ग भी उपस्थित हो सके। संक्षेप में कहने का तात्पर्य यह है कि उसे हर समय सचेत और तत्पर रहने के साथ ही अपने काम और अपनी पाठशाला के लिए उत्साहपूर्ण होना चाहिए। यदि वह सचेत न रहेगा और अपने-आपको शिक्षा-जगत् में क्या हो रहा है, इस बात से अवगत रखने की भरसक चेष्टा नहीं करता रहेगा तो भला वह अपने सहयोगी अध्यापकों को सचेत रहने तथा उनको अपने कार्य में रुचि लेने में किस प्रकार सहायता दे सकेगा।

प्रधान अध्यापक का उद्देश्य यह भी होना चाहिए कि वह अपने विद्यार्थियों के साथ मित्रवत् सम्बन्ध स्थापित करे और उनमें भी अपने प्रति (प्रधान अध्यापक के प्रति) वैसा ही विश्वास पैदा करे, जैसा वह अपने सहयोगी अध्यापकों में पैदा करना चाहता है। अनुशासन का प्रश्न और अनुशासन में भय का स्थान बाद के अध्याय में लिया जायगा। यहां पर तो इतना ही कह देना काफ़ी है कि यदि प्रधान अध्यापक वास्तविक सफलता प्राप्त करना चाहता है और यदि वह पाठशाला को समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग बनाना चाहता है तो उसे अपने विद्यार्थियों का दृढ़ विश्वास अवश्य प्राप्त कर लेना चाहिए। इस प्रकार का विश्वास प्राप्त करने का मतलब यह है कि उसे अपने विद्यार्थियों को अवश्य जानना चाहिए। हां, अपने सहयोगी

अध्यापकों के समान व्यक्तिगत रूप से उन्हें (विद्यार्थियों को) जानना तो उसके लिए नितान्त असम्भव है, पर उसके आदर्श का लक्ष्य होना यही चाहिए। पर यह तर्क तो केवल बड़ी पाठशाला के विरुद्ध है (यह इस प्रकार के कई तर्कों में से एक है)। जब पाठशाला के विद्यार्थियों की संख्या तीन सौ या साढ़े तीन सौ से बहुत अधिक बढ़ जाती है, तब प्रधान अध्यापक के लिए अपने विद्यार्थियों को जानना बड़ा मुश्किल हो जाता है। अतः इस दृष्टिकोण से तो पाठशाला का छोटा होना ही अच्छा है।

विद्यार्थियों के प्रति प्रधान अध्यापक का ऐसा रुख और उनके प्रति उसका ऐसा व्यवहार होना चाहिए कि वे न तो उसे हौआ समझते रहें और न उसके पास मंत्रणा करने अथवा सहायता लेने के लिए आते हुए हिचकें, और निर्भयता के साथ अपनी व्यक्तिगत समस्याएँ उसके सामने ला सकें। यदि उन्हें (विद्यार्थियों को) इस बात का विश्वास होगा कि उनकी बात सहानुभूति के साथ सुनी जायगी तो प्रधान अध्यापक एवं विद्यार्थियों के बीच इस प्रकार के व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित हो जायँगे कि उनके कारण प्रधान अध्यापक को अपने शिक्षा-सम्बन्धी आदर्शों को कार्यान्वित करने के अमूल्य सुयोग प्राप्त हो सकेंगे। इस प्रकार व्यक्तिगत सम्बन्ध जितने अधिक स्थापित हो जायँगे, पाठशाला अपने कार्य में उतनी ही अधिक वास्तविक सफलता प्राप्त करने में समर्थ हो जायगी। हाँ, यह ज़रूर है कि मैं यह मानकर चलता हूँ कि प्रधान-अध्यापक एक उच्चतम नैतिक चरित्र का पुरुष है।

सहयोग की वह प्रवृत्ति, जो प्रधान-अध्यापक और उसके अध्यापक-वर्ग के बीच इतनी आवश्यक है, प्रधान-अध्यापक एवं विद्यार्थियों तथा अध्यापक-वर्ग एवं विद्यार्थियों के बीच भी होनी चाहिए। ख़ास तौर से बड़े विद्यार्थियों के लिए तो यह बहुत ही ज़रूरी है। प्रधान अध्यापक को यह देखने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए कि शिक्षक और विद्यार्थी के बीच वह पुरातन विरोध-भावना, जो अब भी बहुतायत से पाई जाती है, न रहने पाये और विद्यार्थी स्वयं यह समझते रहें कि पाठशाला में उनका वास्तविक भाग है, पाठशाला के कार्य और उसके संगठन में उनका हाथ है। ऐसा करने का सबसे अच्छा उपाय है—स्वायत्त शासन की प्रणाली, और प्रधान अध्यापक द्वारा ऊंचे दर्जों में पढ़नेवाले विद्यार्थियों से मंत्रणा। इस प्रकार की मंत्रणा सिर्फ़ दिखावटी (formal) न हो, वरन् यह सच्चे सहयोग के लिए की

जाय, ताकि विद्यार्थीगण यह समझें कि उनकी सहायता वास्तव में मांगी जाती है, उनके सुझाव एवं सम्मतियों का वास्तव में कुछ मूल्य है, उनकी ओर ध्यान दिया जाता है और पाठशाला के प्रबन्ध मे उनका भी वास्तविक भाग है। अपने विद्यार्थियों के साथ इस प्रकार का सच्चा सहयोग स्थापित करना प्रधान अध्यापक के हाथ में है।

प्रधान अध्यापक शिक्षक के रूप में

प्रधान अध्यापक मामूली तौर से एक या दो विषयों का विशेषज्ञ होगा और इसीलिए वह स्वयं इन्हीं विषयों को पढ़ायेगा। निश्चय ही यह बहुत ज़रूरी है कि वह शिक्षण का कार्य स्वयं भी यथेष्ठ मात्रा मे करे, पर इतना ज्यादा नहीं कि उसे विद्यालय की देख रेख और दफ्तर के काम के लिए पर्याप्त समय ही न मिल पाये। इस सम्बन्ध में यह कहना एक तरह से ज़रूरी ही है कि हर एक पाठशाला में एक बाबू (clerk) होना चाहिए। कुछ सूबों में विभाग (शिक्षा) की ओर से क्लर्कों के वेतन के लिए सरकारी आर्थिक योग (grant-in-aid) नहीं दिया जाता, जिसके कारण पाठशालाएँ क्लर्क नहीं रख पातीं। पर अधिकांश सरकारी पाठशालाओं में क्लर्क होते हैं, और किसी भी पाठशाला में क्लर्क के बिना काम चलाने की चेष्टा करना झूठी मितव्ययिता है। निरीक्षकों (inspectors) के दफ्तरों से मांगे जानेवाले तमाम काग़ज़ों की लिखा-पढ़ी और इसके अलावा रोज़मर्रा का काम ही बहुत ज्यादा होता है, और दिन-पर-दिन वह बढ़ता ही जाता है। रजिस्टरों में दर्ज करने का काम बड़ा महत्त्वपूर्ण है। उसको बड़ी सावधानी से करना और जांचना चाहिए। मुनीम (accountant) की नियुक्ति बड़ी सावधानी से करनी चाहिए। यदि यह सब काम प्रधान अध्यापक और उसके उन साथी अध्यापकों के कंधे पर डाल दिया जाय, जो इन सब कामों को करना जानते हैं, तो इसका मतलब यह होगा कि पाठशाला के अन्य कार्य उचित रूप से न हो सकेंगे। इस तरह से प्रधान अध्यापक को विद्यालय की देख-रेख के लिए पर्याप्त समय न मिल पायेगा और दूसरे अध्यापक उस काम को, जो उन्हें करना चाहिए, करने के लिए समय न दे सकेंगे। इसलिए (शिक्षा) विभाग चाहे क्लर्क की आवश्यकता न समझे और उसके वेतन के लिए आर्थिक सहायता

(grant-in-aid) न दे, तब भी उसको रख लेना ही अच्छा है। इस प्रकार कुछ ज्यादा पैसा तो ज़रूर खर्च हो जायगा, पर उससे जो लाभ होगा वह कहीं अधिक मूल्यवान् होगा।

तब प्रधान अध्यापक को शिक्षण का काफ़ी काम करना चाहिए। उसे सप्ताह के ३९ या ४० घंटों में से लगभग २३ अथवा २४ घंटे (periods) पढ़ाने चाहिए। उसके शिक्षण-विषय तो वही होंगे जिनमें उसने विशेष योग्यता प्राप्त की है। अगर सम्भव हो तो उसे दो विषय पढ़ाना चाहिए, जिनमें से एक अंगरेज़ी अथवा गणित-शास्त्र हो। मेरी सलाह तो यह है कि प्रधान अध्यापक को पाठशाला की सबसे छोटी कक्षा में भी कुछ घंटे (periods) पढ़ाना चाहिए। पाठशाला चाहे प्राइमरी हो, चाहे मिडिल हो और चाहे हाई स्कूल हो, पर यह बात सभी के लिए समान रूप से लागू हो सकती है। प्रधान अध्यापक को उस कक्षा के बच्चों को, जिसमें अधिकांश बालक पाठशाला में प्रवेश करते हैं (सबसे छोटी कक्षा), पांच या छः घंटे पढ़ाना चाहिए। इसके दो कारण हैं। पहली बात तो यह है कि ऐसा करने से प्रधान अध्यापक को अपने विद्यार्थियों को जानने में बड़ी सहायता मिलेगी। यह तो स्वाभाविक ही है कि यदि वह अपने विद्यार्थियों को रोज़ पढ़ाता रहे तो उसे उनको (विद्यार्थियों को) जानने का अच्छा मौका मिलेगा। इस प्रकार उसे उनका जो अनुभव प्राप्त होगा उसके कारण उसे उनकी उन्नति की जांच करने में, उनके आम व्यवहार और पाठशाला में जैसे-जैसे वे आगे बढ़ते जाते है (ऊँची कक्षाओं में आते जाते है) वैसे-वैसे उनमें किस प्रकार सुधार हो रहा है आदि बातें जानने में बड़ी सहायता मिलेगी। उसको उनकी योग्यताओं तथा चरित्र का भी अच्छा ज्ञान हो जायगा, जो उसके लिए, जब तक वे (विद्यार्थी) पाठशाला में पढ़ते रहेंगे तब तक के लिए, बहुत ही मूल्यवान् होगा। छोटे विद्यार्थियों के साथ प्रधान अध्यापक के लिए कार्य करना कितना अधिक महत्त्वपूर्ण है—इस सम्बन्ध में जितना कहा जाय उतना कम है।

दूसरी बात यह है कि, जैसा आगे के अध्याय में शिक्षण के दृष्टिकोण से अध्यापकों को व्यक्तिगत रूप से स्थान (समय-सारिणी—Time table में) देने के सिलसिले में बताया जायगा, पाठशाला की सबसे छोटी कक्षा सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। प्रायः प्रधान अध्यापक इस चीज़ को नहीं समझ पाते और वे अपना सारा ध्यान उसी कक्षा की ओर लगा देते हैं जो मैट्रिकुलेशन परीक्षा में बैठने जा रही है, और अगर

थोड़ा और किया तो उस कक्षा के साथ-साथ उसके पहलेवाली कक्षा की ओर भी ध्यान दे दिया। प्रधान अध्यापक यदि पाठशाला का सर्वश्रेष्ठ शिक्षक न हो तो कम-से-कम उनमें से एक तो होगा ही, और छोटी कक्षाओं के लिए उत्तम शिक्षक होना ही चाहिए। अंग्रेज़ी के लिए, जो प्रायः प्रधान अध्यापक ही पढ़ाता है, यह बात ख़ास तौर से कही जा सकती है। उचित ढंग, अच्छे उच्चारण, अच्छे मुहावरे और आमतौर से इस विषय के अच्छे शिक्षण को दृष्टिकोण में रखते हुए यह बहुत ही जरूरी है कि प्रधान अध्यापक स्वयं, यदि वह अंग्रेज़ी का शिक्षक है, उन बच्चों को, जो विषय को आरम्भ कर रहे हैं, सप्ताह में पांच या छः घंटे अंग्रेज़ी पढ़ाये।

यदि प्रधान अध्यापक केवल एक ही विषय पढ़ाता है तो वह पाठशाला की सबसे छोटी, सबसे बड़ी और बीच की कक्षा में कुछ घंटे (periods) ले सकेगा। इस प्रकार निश्चित रूप से पाठशाला भर में उस विषय के शिक्षण में उसका हाथ रहेगा। यदि वह दो विषय पढ़ाता है, तो सम्भवतः अपने कार्य का विभाजन इतने विस्तार के साथ न कर सकेगा। पर जब कभी संभव हो, ऐसा करने का प्रयास करना चाहिए।

देखभाल (Supervision)

"देखभाल विस्तृत होनी चाहिए। पाठशाला की समस्त क्रियाएँ इसके अधिकार-क्षेत्र के भीतर आ जाती हैं। सम्भवतः बहुत कम प्रधान अध्यापकों को इस मामले में पूर्ण सफलता प्राप्त हो पाती है। पूर्ण सफलता तो मिलती ही किसे है! परन्तु जब उसकी अपने कर्तव्य-सम्बन्धी धारणा अत्यन्त संकुचित होती है, तब वह उन मौक़ों पर देखभाल करने में चूक जाता है, जहां उसे करनी चाहिए; और उसकी मेहनत तथा असर का नतीजा थोड़ा ही हो पाता है। पाठशाला के जीवन का कोई भी अंग ऐसा नहीं जिसे प्रधान अध्यापक के निरीक्षण से बचना चाहिए; क्योंकि सभी विद्यार्थियों को बनाने और बिगाड़ने में सभी का कुछ-न-कुछ योग होता है। तब यह बात स्पष्ट हो जाती है कि केवल शिक्षण-कार्य की ही ओर ध्यान देना काफ़ी नहीं है, वरन् पाठशाला के बाहर विद्यार्थी क्या करते रहते हैं, खेल-कूद, छात्रावास का जीवन, विद्यार्थियों का सोना और भोजन, गृह-कार्य के रूप में दिया हुआ पाठशाला का कार्य आदि सभी की देख-भाल रखना आवश्यक है। और इन सब का निरीक्षण केवल

बौद्धिक विकास के दृष्टिकोण से न हो, वरन् विद्यार्थी का शारीरिक एवं नैतिक विकास भी ध्यान मे रखा जाय। निस्सन्देह उस मुख्य अध्यापक को, जिसे परीक्षा की सफलताओं की ही चिन्ता रहती है, इस बात का मोह लगता है कि वह बालक के बौद्धिक विकास के अलावा किसी तरफ़ ध्यान ही न दे; पर उस ओर भी जितना ध्यान दिया जाता है उसका क्षेत्र बहुत ही संकुचित और उथला रहता है।"*

प्रधान अध्यापक का काफ़ी समय निरीक्षण के कार्य में निकल जायगा। यह तीन प्रकार का होगा--पहला, रजिस्टरों और हिसाब-किताब की देखभाल, जो देखभाल का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है; दूसरा, शिक्षण-कार्य तथा कक्षाओं में क्या हो रहा है, इसकी देखभाल; तीसरा, पाठशाला के नैतिक आचरण और उसके नैतिक विकास की देखभाल, जिसके भीतर छात्रावास और वहां क्या होता है, इसकी देखभाल शामिल होगी। यह आख़िरी काम सबसे ज्यादा जरूरी है।

रजिस्टरों तथा हिसाब-किताब की देख भाल.

प्रधान अध्यापक को चाहिए कि वह समस्त कक्षाओं के रजिस्टर महीने में एक बार मंगाये और उनकी जांच करे। ऐसा करने से वह अपने अध्यापकों को जान जायगा और उसे यह मालूम हो जायगा कि किस (अध्यापक) के काम की ओर विशेष ध्यान देने और देखभाल करने की आवश्यकता है। पर रजिस्टर तो हर एक ही देखा जाना चाहिए। उनमे अशुद्धियों का आना बड़ा ही भद्दा जान पड़ता है। वर्ष की हर तिमाही (term) में कम से-कम एक बार प्रवेश तथा अपक्रम (withdrawal) के खातों की जांच होनी चाहिए। वर्ष के पहले दो-तीन महीनों तक इनकी जांच विशेष रूप से आवश्यक है; क्योंकि इन्हीं दिनों अधिकांश विद्यार्थी पाठशाला में प्रवेश पाते हैं। सम्पति-रजिस्टर की जांच हर तिमाही में एक बार होनी चाहिए। दूसरे खातों की जांच कभी-कभी होनी चाहिए।

जहां तक हिसाब-किताब का सम्बन्ध है, कैश-बुक प्रतिदिन लिखी जानी चाहिए, तनख्वाह के रजिस्टर की खानापूरी उसी दिन हो जानी चाहिए, जिस दिन रुपया चुकाया जाय, और प्रॉविडेंट-फ़ंड (provident fund) की रक़म हर महीने

*H. G. Wyatt, *School Organisation*, पृष्ठ ५।

की चौथी तारीख के पहले चुका देनी चाहिए। प्रधान अध्यापक का कर्तव्य है कि वह देख ले कि ये सारी बातें हो गईं या नहीं। उसको अपनी प्रबन्धकारिणी समिति अथवा प्रबन्धकर्ता (मैनेजर) के सम्मुख जो भी हिसाब-किताब रखना हो, वह सब महीने के आख़िर तक तैयार हो जाना चाहिए। जब उपस्थिति-रजिस्टरों की जांच हो चुके तब शुल्क (fees) सम्बन्धी हिसाब की जांच करनी चाहिए और बैंक की पुस्तक में जितना रुपया भरा गया है, उसके साथ उसको (फ़ीस के हिसाब को) मिला लेना चाहिए। प्रबन्धकारिणी समिति अथवा विभाग के प्रति इन रक़मों की ज़िम्मेदारी आख़िर में प्रधान अध्यापक के ही ऊपर होती है। और यदि वह रुपया-पैसा अपने हाथ में नहीं रखता और उसका हिसाब भी स्वयं नहीं करता, तब भी उसके लिए यह ज़रूरी है कि वह जमा-ख़र्च के हिसाब की जांच सावधानी के साथ और लगातार करता रहे। उपे कन्टिन्जेन्सियों के रजिस्टर (contingencies register) की भी जांच हर महीने के आख़िर में कर लेनी चाहिए और स्वयं इस बात की संतुष्टि कर लेनी चाहिए कि सारी रसीदें व्यवस्थित रूप में हैं; वे चीज़ें जो सम्पत्ति-रजिस्टर (property register) अथवा वाचनालय के खाते में भरी जानी चाहिए, भर दी गई हैं और सारी बातों का विस्तृत विवरण ठीक से दिया गया है। बैंक की पुस्तक के साथ-साथ प्रॉविडेंट-फ़ंड (provident fund) के हिसाब की जांच कभी-कभी कर लेनी चाहिए, जिसमें इस बात का संतोष हो जाय कि सब-कुछ ठीक है। उसको देख लेना चाहिए कि बैंक द्वारा दिये जानेवाले ब्याज की जांच वर्ष में एक बार हो जाती है और फ़ंड जमा करनेवाले समस्त सदस्यों को एकत्र-धन की उक्ति दे दी जाती है।

विद्यार्थियों के बहुत-से फ़ंड, जैसे खेल का फ़ंड और वाचनालय फ़ंड भी प्रधान अध्यापक के नियंत्रण में होंगे। यदि वह स्वयं उनका हिसाब न रखकर यह काम क्लर्क या बड़े (senior) अध्यापकों को सौंप देता है, तो भी उसे यह अवश्य देख लेना चाहिए कि इन फ़ंडों के लिए जमा होनेवाला शुल्क बैंक में नियमित रूप से जमा कर दिया जाता है (इसकी जांच कैश-बुक के साथ होगी) और आय-व्यय का हिसाब तथा रसीदें, सभी व्यवस्थित रूप में हैं। यह काम भी महीने में एक बार होना चाहिए। इन फ़ंडों के ख़र्च की आज्ञा देने का अधिकार प्रधान अध्यापक के ही हाथ में होगा। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसी ख़र्च की आज्ञा दी जाय जो फ़ंड-

विशेष से न्यायपूर्वक होना चाहिए। पर प्रधान अध्यापक इस मामले में अत्यधिक सचेत तो नहीं रह सकता। ये फ़ंड तो धरोहर के रूप में होते हैं। ये कुछ निश्चित कामों के लिए जमा किये जाते हैं। इनका ख़र्च उन कामों के अलावा और किसी चीज़ के लिए न होना चाहिए।

छात्रावास के सम्बन्ध में रजिस्टरों की जांच अवश्य होनी चाहिए। छात्रावास की कैश-बुक और उपस्थिति-रजिस्टर की जांच महीने में एक बार अवश्य होनी चाहिए। छात्रावास के सम्पत्ति-रजिस्टर (property register) की जांच भी प्रत्येक तिमाही में एक बार अवश्य होनी चाहिए। इस रजिस्टर की कोई भी मद (item) अथवा पाठशाला के सम्पति-रजिस्टर (property register) की कोई भी मद मैनेजर अथवा प्रबन्धकारिणी सत्ता की आज्ञा के बिना हटाई नहीं जा सकती।

अध्यापन-कार्य की देखभाल.

जहां तक अध्यापन-कार्य की व्यवस्था का सम्बन्ध है, यदि अध्यापकों को विभागों (faculties) में बांट दिया जाय, जिसका वर्णन आगे के अध्याय में किया गया है, तो देख-भाल करना बहुत ही आसान हो जायगा। उस हालत में प्रत्येक विभाग का प्रधान उस विभाग विशेष की देख-भाल करने में प्रधान अध्यापक को सहायता दे सकता है। प्रधान अध्यापक (अपने पद के नाते) प्रत्येक विभाग का सदस्य होता है और विभागीय सभाओं के ज़रिये, ख़ास तौर से वर्ष एव प्रत्येक तिमाही के आरम्भ में, पाठशाला भर के विभिन्न विषयों के निर्धारित होनेवाले पाठ्यक्रमों की देख-भाल कर सकता है और विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में उठनेवाली समस्याओं के ऊपर अपना परामर्श दे सकता है, जैसे प्रयोग में लाई जानेवाली विधियां आदि, आदि।

फिर भी इतना ही काफ़ी नहीं है। यह आवश्यक है कि प्रधान अध्यापक पढ़ाई होते समय विभिन्न कक्षाओं का नियमित रूप से निरीक्षण करता रहे। चाहे सीनियर (senior) अध्यापक इस काम में प्रधान अध्यापक की मदद ही क्यों न करते रहें, तब भी प्रधान अध्यापक को व्यक्तिगत रूप से देखना चाहिए कि कक्षा का कार्य

किस प्रकार किया जा रहा है और कक्षाएँ किस प्रकार चल रही हैं। अपने निरीक्षण का एक निश्चित कार्यक्रम सबको बता देना उसके लिए कुछ ज़रूरी नहीं, पर हां, उसके पास निजी रूप से एक कार्यक्रम हो तो अच्छा है; क्योंकि इस तरह से कक्षाओं का नियमित रूप से निरीक्षण करने में उसको सुविधा होगी। प्रधान अध्यापक के पास एक सुझाव-पुस्तिका होनी चाहिए, जो विभिन्न विषयों के लिए अलग-अलग प्रकरणों (sections) में बंटी हो, और कक्षाओं के लिए हर प्रकरण के, छोटे खण्ड बना दिये गये हों। इस पुस्तिका में उसे वे सुझाव लिख लेना चाहिए जो निरीक्षण करते समय उसके मन में उठते हैं, और जिन्हें उसने सम्बन्धित अध्यापकों तक पहुंचा दिया है। इससे उसको अपने निरीक्षण-कार्य को क्रमबद्ध बनाने में सहायता मिलेगी। साथ ही वह इस बात की जांच भी कर सकेगा कि पाठशाला की उन्नति कहां तक हो रही है।

यदि प्रधान अध्यापक ने अपने शिक्षक-वर्ग से सहयोग एवं मित्रता का व्यवहार क़ायम कर लिया है, जिसकी उपयोगिता के विषय में पहले बताया जा चुका है, तो उसका कक्षा में जाना शिक्षक के लिए भयोत्पादक कठिन परीक्षा न होगा। यह वह अवसर होगा जब शिक्षक की सहायता मिलेगी और रचनात्मक सुझाव पेश किये जायगे। शिक्षकगण प्रधान अध्यापक के इस प्रकार के निरीक्षण का स्वागत करेंगे।

प्रधान अध्यापक को ऐसी कोई बात न करनी चाहिए कि उसका निरीक्षण शिक्षक का कार्य पहले से अधिक कठिन बना दे। उसे निष्पक्ष होना चाहिए। उसे उस सामग्री को ध्यान में रखना चाहिए जिसे लेकर शिक्षक कार्य कर रहा है। उसको शिक्षक के स्वभाव, प्रकृति और योग्यता का ध्यान रखना चाहिए। यदि अध्यापक वह काम नहीं कर पाता, जो उससे (प्रधान अध्यापक से) स्वयं नहीं हो पाता, तो उसे झुंझलाना नहीं चाहिए। उसे अध्यापक का दृष्टिकोण समझना चाहिए। उसे इस बात के लिए सावधान रहना चाहिए कि वह अपने विचारों को जबरदस्ती अध्यापक के गले के नीचे उतारने की चेष्टा न करे। उसे चाहिए कि वह बाद में अध्यापक के साथ उन विषयों की विवेचना कर ले। यदि प्रधान अध्यापक सोचता है कि शिक्षक द्वारा प्रयोग में लाई जानेवाली कुछ विधियां ग़लत हैं, तो उसे चाहिए कि वह अध्यापक को यह समझाने का मौक़ा दे कि वह उन विशेष विधियों का प्रयोग क्यों

करता है, और तब उसके विचार में वे विधियां कहां तक दोषपूर्ण है, यह इंगित करे तथा अपने रचनात्मक सुझाव प्रस्तुत करे।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि विवेचना तथा सुझाव प्रस्तुत करने का काम कक्षा के सम्मुख न होगा। यदि, जैसा अंग्रेज़ी पढ़ाते समय कभी-कभी हो जाता है, शिक्षक ऐसी कोई चीज़ पढ़ाते हुए पाया जाय, जो ग़लत है, तो उसे उसी जगह, उसी समय ठीक कर देना चाहिए; पर यह काम बड़ी सावधानी के साथ करना चाहिए। निश्चय ही सहयोग की प्रवृत्ति का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि प्रधान अध्यापक उन दोषों की ओर इशारा न करे, जो उसे दिखाई पड़ते हैं। यदि वह ऐसा नहीं करता तो वह अपनी पाठशाला अथवा शिक्षक-वर्ग के प्रति सच्चा न होगा। पर यह तो दोस्ताना ढंग से किया जा सकता है। यदि वह ज़रूरत समझे तो कभी-कभी नमूने के तौर पर एक कक्षा को एक पाठ पढ़ा दे। अगर वह चाहे तो यह समझा दे कि एक नये विचार को किस प्रकार कार्यान्वित किया जाय।

लिखित कार्य का निरीक्षण सावधानी और क्रमबद्धता के साथ किया जाना चाहिए। कभी-कभी तो यह काम कक्षा में हो सकता है, पर यदा-कदा जब मौक़ा मिले, विभिन्न कक्षाओं की विभिन्न विषयों की अभ्यास-पुस्तिकाएँ मगा लेना चाहिए और उसे (प्रधान अध्यापक को) उन्हें स्वयं पढ़कर यह देखना चाहिए कि क्या लिखित कार्य हो रहा है, शिक्षक द्वारा वह किस प्रकार ठीक किया जा रहा है, विद्यार्थीगण स्वयं अपनी अशुद्धियों को समझ रहे है या नहीं और उनको संतोष-जनक ढग से दूर करने की चेष्टा कर रहे है या नही। हो सकता है कि प्रधान अध्यापक के पास हर कक्षा की हर विषय की हर पुस्तिका पढ़ने का समय न हो; पर यदि वह कभी-कभी ऐसा कर सके तो इससे बहुत लाभ होगा। पर उनमें से कुछ पर एक नज़र डालने से उसको इस बात का अन्दाज़ लग सकता है कि काम किया जा रहा है और यदि उसे कुछ कमियां दिखाई पड़ती है तो वह कापियों के साथ उस-उस बंडल-विशेष को और सावधानी के साथ पढ़ सकता है। उसे उन विद्यार्थियों की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए, जिनकी साप्ताहिक रिपोर्ट होती है (सातवां अध्याय देखिये) और जिनके स्तर से नीचे होने का ज्ञान उसे है। जिन पुस्तिकाओं का वह परीक्षण करता है, उन पर उसे हस्ताक्षर कर देना चाहिए और उनके ऊपर वे विवरण (remarks) लिख देना चाहिए जो उसके विचार में विद्यार्थी के लिए उपयोगी हों।

परीक्षा के प्रश्न-पत्रों का निरीक्षण प्रधान अध्यापक द्वारा होना चाहिए। उसे प्रश्नपत्रों को ध्यान से पढ़कर यह देख लेना चाहिए कि वे अत्यधिक सरल अथवा अत्यधिक कठिन तो नहीं हैं। अंक-दान के स्तर की जानकारी करने के लिए उसे कभी-कभी परीक्षा की कापियों के ऊपर भी एक नज़र डाल लेनी चाहिए। कभी-कभी शिक्षक का खराब और अधूरा काम सरल परीक्षा प्रश्न-पत्र अथवा सरल अंक-दान के द्वारा ढक जाता है। यह एक जगह ऐसी है जहां प्रधान अध्यापक को विभाग के प्रधान से बहुत अधिक सहायता मिल सकती है। कभी-कभी प्रधान अध्यापक को विभिन्न कक्षाओं की उन विषयों की, जिनमें वह स्वयं परीक्षा लेने की क्षमता रखता है, परीक्षा लेनी चाहिए और विभाग के प्रधान के द्वारा अन्य विषयों की छोटी-छोटी परीक्षाएँ लिवानी चाहिएँ।

प्रधान अध्यापक को शिक्षकों द्वारा किये जानेवाले निजी शिक्षण (Private tution) कार्य पर भी नियंत्रण रखना चाहिए। इसकी चर्चा सातवें अध्याय में फिर से की जायगी। प्रधान अध्यापक शिक्षक के बाहरी काम के ऊपर भी अपना नियंत्रण बनाये रहे, यह बात देखने में भले ही उसकी (शिक्षक की) स्वतंत्रता में हस्तक्षेप जान पड़े, पर वास्तव में प्रधान अध्यापक ही इस बात का सर्वश्रेष्ठ निर्णायक है कि पाठशाला में प्रत्येक अध्यापक से कितना कार्य अपेक्षित है और सलिए शिक्षक बाहरी शिक्षण-कार्य के लिए कितना समय दे सकता है। विद्यार्थियों के लिए अध्यापकों की योग्यता का भी सबसे अच्छा निर्णायक वही है। प्रकृति एवं चातुर्य में भिन्नता होने के कारण एक अध्यापक विद्यार्थी-विशेष के साथ उतनी सफलता न प्राप्त कर सकेगा, जितनी दूसरा अध्यापक प्राप्त कर लेगा। निजी शिक्षण-कार्य की सारी शर्तें प्रधान अध्यापक के ज़रिये से तय होनी चाहिए, ताकि विद्यार्थी के माता या पिता न तो ठगे जायँ और न वे (अध्यापक) स्वयं ठग सकें। जिस समय अध्यापक पाठशाला में नौकरी करना आरम्भ करे, उसी समय उसको इस प्रबन्ध के बारे में साफ़-साफ़ बता देना चाहिए। जो भी कार्य किया जाता है उसके ऊपर नज़र रखने तथा कभी-कभी उसकी जाँच करने का उत्तरदायित्व प्रधान अध्यापक के ऊपर होगा।

आम देखभाल (General supervision).

प्रधान अध्यापक को वित्त-रजिस्टरों की लिखा-पढ़ी तथा अध्यापन-कार्य के

अतिरिक्त, विद्यालय-जीवन के अन्य अंगों की भी देखभाल करनी चाहिए। प्रधान अध्यापक अपनी पाठशाला के विद्यार्थियों की शारीरिक क्रियाओं का, विशेषरूप से खेलकूद का, निरीक्षण करने के लिए उत्तरदायी है। दसवें अध्याय में खेलों की व्यवस्था पर प्रकाश डाला जायगा। यदि पाठशाला समुदायों में बँटी है, जैसा वहां (दसवें अध्याय में) सुझाया गया है, तो प्रधान अध्यापक को किसी समुदाय-विशेष के प्रति अपने को अनुरक्त न करना चाहिए। वरन् उसे किसी भी समुदाय की ओर रहने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। जब वह किसी भी समुदाय में शामिल होता है तो उसे जो भी खेल खेला जा रहा है, उसमें सक्रिय भाग लेना चाहिए। उसको सावधानी के साथ यह देख लेना चाहिए कि जिस अध्यापक को खेल का भार सौंपा गया है वह उस खेल के नियमों को जानता है जो खेला जा रहा है, और वह रेफ़री (referee) का काम निपुणता के साथ सँभाल रहा है। अक्सर अध्यापकगण, विशेषतया जब वे छोटे-छोटे बालकों के समुदायों के साथ होते हैं, बड़ी लापरवाही के साथ रेफ़रीकरने लगते हैं। कभी-कभी तो वे स्वयं खेल के नियमों को सीखने तक की तकलीफ़ गवारा नहीं करते; फलस्वरूप वे खेल का ठीक से नियन्त्रण नहीं कर पाते, और कभी तो वे लापरवाही ही कर जाते हैं। खेल चाहे छोटे बालकों के लिए ही क्यों न हो, पर यदि उसका नियंत्रण असावधानी के साथ किया जाता है, तो वह उनके (बालकों के) लिए ख़राब तो होता ही है, साथ-ही-साथ इस तरह से खेल का सारा मज़ा भी किरकिरा हो जाता है। अतः प्रधान अध्यापक जब समुदायों को देखने के लिए जाता है तो उसे इस मामले की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। उसे समुदाय की चुस्ती तथा सतर्कता के ऊपर भी ध्यान देना चाहिए और यदि वह उसमें सुस्ती का आभास पाता है तो उसे चाहिए कि वह बाद में अध्यापक को वे विधियां बताये जिनसे वह सुस्ती दूर की जा सकती है। प्रधान अध्यापक कभी-कभी छोटे-छोटे खेलों का प्रदर्शन करके विद्यालय में नये-नये खेल आरम्भ कर सकता है।

खेलों के निरीक्षण-सम्बन्धी इस कार्य में, यदि अध्यापक-मंडल में ऐसे व्यक्ति हों जो स्वयं बड़े खिलाड़ी हों, तो प्रधान अध्यापक उनकी मदद के लिए बुला सकता है। यों तो हरएक के पास अपना-अपना समुदाय होगा ही, पर यदा-कदा देखने और निरीक्षण करने के लिए उन्हें एक या दो अन्य समुदाय भी दिये जा सकते हैं।

जब तक अध्यापक-मंडल में एक शिक्षित (trained) ड्रिल-मास्टर न हो तब तक शारीरिक व्यायाम-समुदायों की देख-रेख प्रधान अध्यापक एवं सीनियर अध्यापकों द्वारा उसी प्रकार से होनी चाहिए। ड्रिल-मास्टर होने पर भी प्रधान अध्यापक का समुदायों के निरीक्षणार्थ जाते रहना बड़ा ज़रूरी है।

प्रधान अध्यापक को यदा-कदा गृह-बैठकों, साहित्य-सभाओं की बैठकों तथा रेडक्रॉस सोसाइटियों की बैठकों में जाना चाहिए। उसे इस प्रकार की बैठकों के कार्यक्रम पर बिना किसी आडम्बर के नजर रखनी चाहिए और मौक़ा पड़ने पर उनकी उन्नति के सम्बन्ध में सुझाव प्रस्तुत कर देने चाहिए। यदि पाठशाला में कोई सहकारी सभा है तो उसकी और उसके हिसाब-किताब की देखभाल सावधानी के साथ होनी चाहिए। सच तो यह है कि पाठशाला की प्रत्येक क्रिया में प्रधान अध्यापक को हाथ डालना ही है; नये साहसिक कार्यों एवं नई-नई क्रियाओं को आरम्भ कर लेना ही पर्याप्त नहीं होता। प्रारम्भिक दशाओं में तो सावधानी के साथ उनकी देख-भाल करना तथा उनको पनपाने के लिए साधन जुटाना बहुत ज़रूरी है। परन्तु उनकी ओर निरंतर ध्यान देना भी आवश्यक है, अन्यथा वे निर्जीव हो जायँगी, धीरे-धीरे उनकी उपयोगिता ख़तम हो जायगी और वे कुछ दिनों में विलुप्त हो जायँगी।

प्रधान अध्यापक को अपने विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान देना चाहिए। पुरानी बीमारी के मामलों में उसे माता या पिता को बुलाकर रोग दूर करनेवाले उपायों के सम्बन्ध में अपने सुझाव देने चाहिए। उसे पाठशाला के डाक्टर अथवा नर्स से नियमित विवरण प्राप्त करते रहना चाहिए। उसे यह देखने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए कि वार्षिक स्वास्थ्य-निरीक्षण के अवसर पर डाक्टर द्वारा की गई सिफ़ारिशों का पालन माता-पिता कर रहे हैं या नहीं।

छात्रावास की देखभाल.

यदि पाठशाला के लगाव में छात्रावास हो तो उसके प्रबन्ध का पूर्ण भार प्रधान अध्यापक के ही ऊपर होगा। कुछ सूबों में यह चलन है कि अध्यापकों में से किसी एक को छात्रावास का भार सौंप दिया जाता है और यह काम उसके पाठशाला-सम्बन्धी कर्तव्यों में से एक समझा जाता है। जब तक बालकों की संख्या बहुत कम न हो तब तक इस प्रकार का प्रबन्ध होना ठीक नहीं। यदि विद्यार्थियों की संख्या

ज़रा भी ज्यादा हो तो छात्रावास के लिए पूरे समय का एक प्रबन्धकर्ता होना चाहिए। यहां तक कि जहां पर विभागों (शिक्षा-विभागों) की ओर से इस प्रकार के प्रबन्धकर्ता (Superintendent) के वेतन में आर्थिक योग न देकर संस्था को उसकी नियुक्ति के सम्बन्ध में हतोत्साह किया जाता है, वहां भी इस प्रकार के एक व्यक्ति को रखने से जितने नैतिक एवं शारीरिक लाभ होंगे, उनके सामने आर्थिक बोझ कोई मूल्य नहीं रखता। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि प्रधान अध्यापक को उस हालत में एक बहुत बड़ी मदद हो जायगी जब कि उसे कोई ऐसा व्यक्ति मिल जायगा जो छात्रावास का भार वहन कर सके तथा अपना पूरा समय इस काम के लिए दे सके।

यदा-कदा प्रधान अध्यापक को छात्रावास में रहनेवाले विद्यार्थियों को मिलनेवाले भोजन, खाना पकाने के प्रबन्ध, रसोईघर, खाने के कमरे, प्लेटें धोने के इन्तज़ाम और प्लेटें तथा चम्मच, आदि का परीक्षण करना चाहिए। उसे प्रबन्धकर्ता के साथ भोजन के सम्बन्ध में बातचीत करनी चाहिए और यह देखना चाहिए कि जितना रुपया विद्यार्थियों से वसूल किया जाता है, उस हिसाब से अच्छे-से-अच्छा भोजन मिल रहा है या नहीं। यह देखने के लिए कि छात्रावास में स्वच्छता और सफ़ाई रहती है, छात्रावास के नियमों का पालन होता है और एतराज़ पैदा करनेवाली कोई बात नही की जा रही है, उसको नियमित रूप से छात्रावास का निरीक्षण करने के लिए जाते रहना चाहिए। उसे समय बदल-बदल कर छात्रावास जाना चाहिए; जैसे—पाठशाला की पढ़ाई के घंटों में, खाने के समय, शाम को, रात को। उसे धुलाई और स्वास्थ्य-सम्बन्धी प्रबन्धों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। ख़ास तौर से गर्मी के मौसम में पीने के लिए दिये जानेवाले पानी के प्रबन्ध को देखना तो बड़ा ही ज़रूरी है। उसे इस बात की ओर भी ध्यान देना चाहिए कि विद्यार्थीगण किस प्रकार सोते हैं, जब वे अन्दर सोते हैं तो दरवाज़े और खिड़कियां खुली रहती हैं या नहीं, सोते समय वे चादरों अथवा कम्बलों से पूरा मुंह तो नहीं ढक लेते, उनको सोने के लिए पर्याप्त समय मिलता है और नियमित समय पर सब काम होता है या नहीं। स्वभावतः वह छात्रावास में रहनेवाले विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की भी देखभाल करेगा और रोगी विद्यार्थियों के सम्बन्ध में उसे नियमित रूप से ख़बर मिलती रहेगी।

छात्रावास के सम्बन्ध में प्रधान अध्यापक को हिसाब-किताब की देख-भाल भी सावधानी के साथ करनी पड़ती है—शुल्क का हिसाब, भोजन का हिसाब, कन्टिन्जेंसियों का हिसाब, छात्रावास की कैश-बुक, सम्पत्ति-रजिस्टर और अन्य कोई भी रजिस्टर जो छात्रावास में रखे जाते हैं। वह जब-तब उपस्थिति-रजिस्टर को देखे। छात्रावास के सम्बन्ध में उसका कार्य कठिन न होगा, बशर्ते कि उसे एक अच्छा प्रबन्धकर्ता मिल जाय। परन्तु उत्तम प्रबन्धकर्ता मिल जाने पर भी छात्रावास के जीवन एवं काय के समस्त क्षेत्रों का अनवरत निरीक्षण तो उसे करना ही होगा।

वे सारी ही बातें, जिनकी विवेचना की जा चुकी है, महत्त्वपूर्ण हैं, अतः इस बात को अवश्य याद रखना चाहिए कि प्रधान अध्यापक के मस्तिष्क में निरीक्षण का मुख्य उद्देश्य यह देखना हो कि यथासम्भव पाठशाला उन आदर्शों की प्राप्ति कर रही है, जिनको उसने (प्रधान अध्यापक) तथा उसके अध्यापक-मडल ने अपने सामने रखा है। उसे उन असंख्य छोटी-छोटी बातों में पड़कर, जिनमे वह घिरा रहता है और जिनकी ओर उसे ध्यान देना ही है, अपने आदर्श को नहीं भूल जाना चाहिए। इस प्रश्न की अपेक्षा कि अमुक कार्य हुआ या नही, यह प्रश्न अधिक महत्त्वपूर्ण है कि विद्यार्थीगण अपने लिए विचार करना, अपने लिए समझना और अपने लिए काम करना सीख रहे हैं अथवा नही ? क्या उन्हें अपनी प्रवृत्तियों का सर्वांगीण विकास करने का अवसर दिया जा रहा है ? क्या उनके जीवन से भय को दूर भगाया जा रहा है ? क्या उनकी शिक्षा उनके जीवन तथा वातावरण से सम्बन्धित है ? क्या वह शिक्षा, जो उन्हें पाठशाला में प्राप्त हो रही है, उन्हें उनके गांव, उनके नगर, उनके देश और विश्व के अच्छे नागरिक बनाने में समर्थ होगी ? क्या उन्हें देश-भक्ति एवं अन्तर्राष्ट्रीयता के सच्चे आदर्श दिये जा रहे हैं ? क्या मन और आत्मा से वे इतने पूर्ण हो जायँगे कि जब पाठशाला से बाहर निकलकर संसार में प्रवेश करेंगे तब वे उन बदलती हुई स्थितियों का, जो वहां उनके सामने आयेंगी, मुक़ाबला करने तथा उन्हें अपने साँचे में ढाल लेने में समर्थ होंगे, और इस प्रकार अपने युग तथा अपनी पीढ़ी को एक उचित देन दे सकेंगे ? यह वह प्रश्न है जो प्रधान अध्यापक के रुख़ तथा उसकी विधियों को एक निश्चित रूप देते हुए उसके मस्तिष्क में हर समय बना रहे। उसका निरीक्षण इस प्रकार के आदर्शों द्वारा निर्देशित होना चाहिए और उसे हर समय उन सभी शक्तियों एव विधियों को प्रोत्साहन देने के लिए जो उसके आदर्शों की पूर्ति में सहायक

हों, और उन सारी ही बातों को जो उस दिशा में उसके द्वारा किये जानेवाले समस्त प्रयासों को विफल करनेवाली हों, हतोत्साह करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

प्रधान अध्यापक तथा माता-पिता

माता-पिता के साथ पाठशाला का सम्बन्ध पन्द्रहवें अध्याय में अधिक विस्तार-पूर्वक बताया जायगा। यहां पर इतना ही कह देना काफ़ी है कि प्रधान अध्यापक को जब कभी सुयोग मिल सके, अपने विद्यार्थियों के माता-पिता के सम्पर्क में आने और उस सम्पर्क को बनाये रखने की चेष्टा करनी चाहिए। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जब विद्यार्थियों के माता-पिता पाठशाला में आयें तब उसे सदैव उनके साथ सतर्कता के साथ नम्रतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए। कभी-कभी विशेषरूप से ग्रामीण क्षेत्रों में प्रधान अध्यापक माता-पिता के साथ धैर्यहीन तथा अभिमानपूर्ण व्यवहार करते हुए दिखाई देते हैं। निश्चय ही इससे बढ़कर कोई दूसरी ग़लती और प्रधान अध्यापक के वास्तविक प्रभाव को इससे जल्दी नष्ट करनेवाली कोई चीज़ न होगी। माता-पिता के प्रति हर प्रकार का आदर दिखाना चाहिए, चाहे वे क्रोध उत्पन्न करनेवाली बातें ही क्यों न करते हों, जैसा प्रायः वे करते हैं। माता-पिता के सम्पर्क में आने तथा उनको जानने के लिए प्रधान अध्यापक को ऐसे अवसरों से, जो उसे 'माता-पिता दिवस', पारितोषिक-वितरण और विभिन्न तरीक़ों के जलसों के रूप में मिलते हैं, पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिए। वे जब चाहें तब उन्हें पाठशाला में आने की स्वतंत्रता रहनी चाहिए और उन लोगों के लिए, जो दूर के गांवों से आते हैं, इस प्रकार का प्रबन्ध रहना चाहिए कि यदि वे चाहें तो रात भर छात्रावास में ठहर सकें।

पाठ्य पुस्तकें

प्रधान अध्यापक के कार्य का एक महत्त्वपूर्ण विभाग है उन पाठ्य पुस्तकों का चुनाव जिनका पाठशाला में प्रयोग किया जाता है। उसे हमेशा पाठ्य पुस्तकें चुनते समय जिस विषय की पुस्तकें चुननी हों, उस विषय के अनुभवी अध्यापकों की सलाह ले

लेनी चाहिए। सच बात तो यह है कि पाठ्य पुस्तकों के सम्बन्ध में पहले विभागीय बैठकों में विवेचना हो जानी चाहिए। जिस बैठक में पाठ्य पुस्तकों के ऊपर विचार होनेवाला हो, उसमें उपस्थित होने के लिए प्रधान अध्यापक को विशेषरूप से आमंत्रित कर लिया जाय। फिर भी प्रधान अध्यापक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पाठ्य पुस्तकों में परिवर्तन बहुत जल्दी-जल्दी न किया जाय। जब पाठ्य पुस्तकें बहुधा बदलती रहती हैं तो कभी-कभी माता-पिता के ऊपर खर्च का बोझ बढ़ जाता है, खास तौर से जब परिवार में कई एक बच्चे होते हैं। जब किसी विशेष पाठ्य पुस्तक के प्रति असंतोष प्रकट किया जाता है तो सम्बन्धित विभाग को चाहिए कि वह शिक्षा-विभाग द्वारा स्वीकृत सभी अथवा कुछ पुस्तकों को नमूने के तौर पर मँगा ले और उनको ध्यानपूर्वक पढ़कर देखे। पर हां, यह काम बैठक होते समय नहीं हो सकता। यह तो पहले से करके रख लेना चाहिए। प्रधान अध्यापक को स्वयं भी उनका अध्ययन कर लेना चाहिए और तब सभा में निश्चय होना चाहिए, जिसकी पुष्टि प्रधान अध्यापक द्वारा होगी। एक नई पाठ्य पुस्तक आरम्भ करने का अन्तिम उत्तरदायित्व प्रधान अध्यापक के ही ऊपर है। पर जिन विषयों में वह स्वयं विशेषज्ञ नहीं है, उनमें उसे अपने विशेषज्ञ अध्यापकों की सम्मति से निर्देशित होना चाहिए और जिन विषयों में वह स्वयं विशेषज्ञ है उनमें भी उसे दूसरों की, जो विषय का अध्यापन कर रहे है, रायों का, जो विभागीय बैठक में व्यक्त की जा चुकी हैं, लिहाज़ रखना चाहिए।

पाठ्य पुस्तक चुनते समय कई एक बातें ऐसी हैं जिन्हें ध्यान में रखना चाहिए:—

(१) क्या वह इस ढंग से लिखी गई है कि विद्यार्थियों में अपने-आप विचार करने की शक्ति उत्पन्न हो, अथवा उसमें सारी बातें स्वयं ही बता दी गई हैं?

(२) क्या उसकी भाषा और शैली उत्कृष्ट एवं स्पष्ट है? क्या वह इस ढंग से लिखी गई है कि सरलता से समझी जा सके?

(३) क्या उसमें अध्ययन तथा क्रिया करने के तरीक़ों के सम्बन्ध में सुझाव दिये गये हैं? क्या वह विद्यार्थियों को आत्माभिव्यक्ति के उपाय बताती है? क्या वह उनको अपने मन से कार्य आरम्भ करने का प्रोत्साहन देती है?

(४) क्या वह अन्य विषयों से सम्बन्ध रखती है, अथवा उसे पढ़ते समय बालक यह भूल जाता है कि उस विषय के अतिरिक्त, जिसके ऊपर पुस्तक लिखी गई है, कोई दूसरा विषय है ही नहीं?

(५) क्या पाठ्यक्रम उसके अन्दर पर्याप्त मात्रा में आ जाता है?

(६) क्या वह यथार्थ है? क्या उसके तथ्य सच्चे हैं?

(७) क्या वह उस कक्षा एवं उस आयु के लिए उपयुक्त है, जिसके लिए वह लिखी गई है? क्या उसका वर्गीकरण उचित रूप में किया गया है?

(८) क्या उसमें पाठशाला में प्रयोग की जानेवाली विशेष प्रणालियों (जैसे डॉल्टन प्लान—Dalton Plan) का ध्यान रखा गया है?

(९) क्या उसमें चित्रों का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया गया है?

(१०) क्या वह अच्छी तरह से उत्कृष्ट अक्षरों में छपी है?

(११) सब बातों के होते हुए भी क्या वह सस्ती है?

किसी पाठ्य पुस्तक के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय करने के पूर्व प्रधान अध्यापक को इन सब बातों पर ग़ौर कर लेना चाहिए। एक बार तय कर लेने के बाद उसे पुस्तक का प्रयोग काफ़ी समय तक करना चाहिए और उन लोगों के भुलावे में न आना चाहिए जो उसे नई पुस्तकों को आरम्भ करने के लिए उकसाते रहते हैं। यदि उसने समस्त प्राप्त पुस्तकों का अध्ययन करने के पश्चात् सावधानी के साथ अपना मत पक्का किया है तो उसे चाहिए कि वह नई पुस्तक को कम-से-कम दो या तीन वर्ष तक चलाकर देखे कि वह कितनी उपयोगी सिद्ध होती है। इस बीच में वह देखता रहे कि पुस्तक उसकी आशाओं के अनुरूप है या नहीं।

———

अध्याय २

अध्यापक-मंडल

चुनाव

पाठशाला के अध्यापकों के चुनाव के अन्तिम निर्णय का अधिकार आमतौर से प्रबन्धकारिणी-समिति अथवा प्रबन्धक के हाथ में, यदि उसे समिति की ओर से यह अधिकार सौंप दिया गया है, रहता है। सरकारी पाठशालाओं मे अलग-अलग सूबों में प्रचलित प्रणाली के अनुसार यह मामला तय होता है। परन्तु पाठशाला चाहे सरकारी हो या प्राइवेट—नियुक्ति करनेवाले अधिकारियों को प्रधान अध्यापक की सलाह से नये अध्यापकों की नियुक्ति करनी चाहिए और जब तक उनके पास कोई अच्छे कारण उपस्थित न हों, तब तक उन्हें प्रधान अध्यापक के खिलाफ़ न जाकर उसकी सलाह के मुताबिक़ काम करना चाहिए। वह अपने अध्यापकों तथा अपनी पाठशाला को जानता है और इसलिए इस बात को जानने में अधिक समर्थ है कि संस्था के लिए किस ढंग का अध्यापक उपयुक्त होगा। वह जानता है कि कौन-सा काम करना है, और इसलिए वह इस बात का सबसे अच्छा निर्णायक है कि अमुक उम्मेदवार रिक्त स्थान के योग्य है या नहीं। प्राइवेट पाठशालाओं में यदि यह नियम बना दिया जाय कि प्रबन्धकारिणी-समिति अथवा प्रबन्धक नई नियुक्तियां करते

समय प्रधान अध्यापक की सम्मति ले लें, तो (पाठशालाओं में) अनबन बहुत कुछ दूर हो जाय।

जब कोई नई नियुक्ति होती है, तब नये अध्यापक को एक निश्चित अवधि तक के लिए परीक्ष्यमाण (probationary) बनाकर रखना चाहिए। सबसे अच्छा तो यह है कि यह अवधि एक वर्ष की रखी जाय। इसमें पाठशाला तथा अध्यापक दोनों का ही फ़ायदा है। प्रायः इससे कम समय में अध्यापक के लिए यह बताना कठिन हो जाता है कि वह नई परिस्थितियों तथा नई पाठशाला में किस प्रकार खप सकेगा। प्रधान अध्यापक तथा अध्यापक-मंडल के दूसरे अध्यापकों को जानते-जानते कुछ समय लगता है। दूसरी ओर, थोड़े समय में प्रायः यह बताना कठिन होता है कि अमुक अध्यापक (पाठशाला के लिए) उपयुक्त है या नहीं। एक वर्ष में प्रधान अध्यापक को इस बात का अच्छा मौक़ा मिल जाता है कि वह परीक्ष्यमाण अध्यापक के काम का मूल्यांकन कर सके और यह निश्चित कर सके कि वह प्रस्तुत पद के लिए योग्य व्यक्ति है अथवा नहीं। परीक्षण के इस काल में प्रबन्धक समिति अथवा अध्यापक, दोनों को ही इस बात की स्वतंत्रता है कि यदि वे चाहें तो थोड़े दिन की सूचना देकर अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लें। जब परीक्षण-अवधि के अन्त में स्थायी होने का सवाल आता है उस समय फिर प्रबन्धकारिणी-समिति को प्रधान अध्यापक की सलाह लेनी चाहिए।

पाठशाला में आते समय अध्यापकों को इस बात पर ज़ोर देना चाहिए कि परीक्षण-अवधि की व्याख्या स्पष्ट रूप से कर दी जाय और उन्हें इस बात पर भी ज़ोर देना चाहिए कि नौकरी के नियम निश्चित रूप से निर्धारित कर दिये जायँ। स्थायी हो जाने पर एक निश्चित समझौता (agreement) तैयार करके उसके ऊपर हस्ताक्षर होने चाहिए। इस मामले की चर्चा तेरहवें अध्याय में फिर से की जायगी।

अध्यापक का चुनाव करते समय प्रधान अध्यापक एवं प्रबन्धक को इन तमाम बातों का ध्यान रहना चाहिए—सर्वप्रथम तथा परमावश्यक है चरित्र; उसके बाद बच्चों को समझने तथा उनके साथ उचित रूप में कार्य करने की क्षमता; अध्यापन की योग्यता, काम करने की इच्छा-शक्ति और सहयोगिता। यदि अध्यापक दूसरी पाठशाला से आता है तो उसके पास प्रशंसा-पत्र होंगे, और यदि उसने अध्यापन का

कार्य पहले नहीं भी किया है, तो भी उसके पास शिक्षण-विद्यालय (training college) से मिले हुए आवेदन-पत्र (report) एवं प्रशंसा-पत्र होंगे ही। पर प्रधान अध्यापक तथा प्रबन्धक को दूसरों के निर्णय पर बहुत अधिक विश्वास नहीं करना चाहिए। किसी अध्यापक की नियक्ति करने के पूर्व उन्हें उससे भेंट करने पर ज़ोर देना चाहिए। अन्तिम निश्चय करने के पहले वे उससे पाठशाला में दो-तीन दिन तक अध्यापन-कार्य करने के लिए भी कह सकते हैं। परीक्षण-काल में अवश्य ही उनको इस बात के तमाम मौक़े मिलेंगे कि वे अध्यापक को अपने मन के अनुकूल कार्य करना सिखा दें, पर स्वभावतः अनुकूल रूप में प्रभावित हुए बिना तथा यह सोचे बिना कि वह एक अच्छा अध्यापक बनेगा, प्रधान अध्यापक तथा प्रबन्धक के लिए किसी भी अध्यापक को परीक्षण-अवधि के लिए ले आना बुद्धिमानी का काम नहीं। अध्यापक को किसी भी प्रकार से अपनी सेवा में लेने के पूर्व ही उनको इस बात का निश्चय, जितनी अच्छी तरह से हो सके, कर लेना चाहिए। परीक्षण-अवधि तो उन्हें यह देखने का अवसर प्रदान करती है कि उनके निर्णय ठीक हुए या नहीं। पर ये निर्णय उनके अपने होने चाहिए। प्रशंसा-पत्रों से निर्देशित होने के साथ-साथ उन्हें यह बात याद रखनी चाहिए कि पाठशालाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं और स्थानीय परिस्थितियां अलग-अलग होती हैं। हो सकता है कि वही अध्यापक, जो एक पाठशाला में सफल है, दूसरी में जाकर कठिनाइयों का अनुभव करे। प्रधान अध्यापक और प्रबन्धक सुरक्षित इसी में हैं कि वे अपने निरीक्षण के आधार पर अपने परिणाम निकालें।

बनावट (Composition)

भारतीय पाठशाला के अध्यापक-मंडल की बनावट के मामले में, शिक्षक किस सम्प्रदाय का है, यह प्रश्न ज़रूर उठ खड़ा होता है। साम्प्रदायिक पाठशालाओं की प्रबन्धकारिणी-समितियां प्रायः इस बात पर ज़ोर देने की कोशिश करती हैं कि जहां तक सम्भव हो, उनकी अपनी बिरादरी के ही अध्यापक नौकर रखे जायँ। उसी जाति के अध्यापकों का ध्यान सदैव पहले रखा जाता है। कुछ दृष्टिकोणों से तो ऐसा करने में प्रत्यक्षतः कई एक फ़ायदे हैं। पर हां, पूरे देश को दृष्टि में

रखते हुए इससे अनेक हानियां भी हैं। शायद वर्तमान परिस्थितियों के अन्तर्गत रहकर अधिक-से-अधिक हम यही कह सकते हैं कि साम्प्रदायिक पाठशाला में उन अध्यापकों की, जो उसी सम्प्रदाय के हैं, प्रभुता रहनी चाहिए। पर ऐसी पाठशाला का पूरा अध्यापक-मंडल उसी एक सम्प्रदाय का नहीं होना चाहिए। मुसलमानी पाठशाला में अधिकांश अध्यापक मुसलमान भले ही हों, पर कुछ जगहें अन्य सम्प्रदाय के अध्यापकों के लिए अवश्य रखनी चाहिए। ईसाई-पाठशाला में मुसलमान और हिन्दू अध्यापक होने चाहिए। यह तो प्रबन्ध कारिणी-समिति के ऊपर निर्भर है कि अध्यापक-मंडल में उनकी अपनी जाति के अध्यापकों की संख्या का प्रतिशत क्या होगा, पर अन्य सम्प्रदायों के कुछ अध्यापक तो सदैव ही रहने चाहिए। उन पाठशालाओं में, जो सभी सम्प्रदायों के लिए खुली हों, अवश्य ही एक मिश्रित अध्यापक-मंडल होना चाहिए, जिसमें किसी एक सम्प्रदाय-विशेष के अध्यापकों का अतीव बाहुल्य न हो। बनावट (अध्यापक-मंडल की) उस प्रदेश की जनसंख्या की बनावट के ऊपर निर्भर होगी, जिसके अन्तर्गत पाठशाला स्थित है। जिस सम्प्रदाय की पाठशाला हो, अध्यापक-मंडल में उसी सम्प्रदाय के सारे ही अध्यापक न रखे जायँ। इसके दो कारण हैं। पहली बात तो यह है कि आम तौर से साम्प्रदायिक पाठशालाओं में भी सारे बच्चे एक ही सम्प्रदाय के नहीं होते और इस तरह से प्रधान अध्यापक को उस हालत में बड़ी मदद मिलेगी, जब कि उसके अध्यापक-मंडल में एक या दो अध्यापक अल्पसंख्यक जाति के होंगे। यदि उन विद्यार्थियों के साथ, जो उसके (प्रधान अध्यापक) सम्प्रदाय के नहीं हैं, निबटने की कोई ज़रूरत पड़ेगी, तो वे उसको सहायता एवं सम्मति देने में समर्थ होंगे। दूसरी बात यह है कि उन विद्यार्थियों के लिए, जो उसी सम्प्रदाय के हैं जिसकी पाठशाला में प्रधानता है, यह बड़ी अच्छी बात है कि वे अपनी जातिवालों की अपेक्षा दूसरे सम्प्रदायवालों के सम्पर्क में अधिक आयें। जब वे पाठशाला छोड़कर बाहर दुनियां में जाते हैं तब उन्हें यही करना है, और यदि अपने विद्यार्थी-जीवन में उन्होंने अपने उन अध्यापकों से, जो दूसरे सम्प्रदाय के हैं, इस विषय में कुछ भी सीख लिया है कि उनके सम्प्रदाय की अपेक्षा दूसरे सम्प्रदायों में क्या-क्या अच्छाइयां हैं, तो साम्प्रदायिक मतभेदों को दूर करने की कुछ आशा की जा सकेगी। निश्चय ही यह तर्क उन पाठशालाओं के विरुद्ध है, जो विशुद्ध रूप में साम्प्रदायिक हों। देश के लिए यह बड़ा ही

उत्तम हो यदि किसी भी पाठशाला में, ख़ास तौर से उन क्षेत्रों में जहां मिली-जुली आबादी हो, किसी एक सम्प्रदाय के विद्यार्थी संख्या में दो-तिहाई से अधिक न हों। इसका मतलब यह हुआ कि जिस सम्प्रदाय की पाठशाला है, उसको छोड़कर अन्य सम्प्रदायों के विद्यार्थियों की संख्या कम-से-कम एक-तिहाई हो।

अब एक प्रश्न यह उठता है कि अध्यापकगण विशेषज्ञ हों अथवा नहीं; पाठशाला में कक्षा-अध्यापक हों अथवा विषय-अध्यापक; और या जो प्रबन्ध हो वह (दोनों के) बीच का हो।

ऊंची कक्षाओं में तो विशेषज्ञ-अध्यापकों के साथ कार्य करना कठिन नहीं होता, पर छोटी कक्षाओं में उनको लेकर कभी-कभी कुछ अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ जाता है। तथापि कतिपय हानियों के होते हुए भी, छोटी कक्षाओं के लिए जहां तक हो सके, विशेषज्ञ अथवा विषय-अध्यापक रखना ही ज्यादा अच्छा होता है।

मामूली एकवर्गीय सेकेंडरी पाठशाला में एक गणित का विशेषज्ञ, दो या तीन अँगरेज़ी के विशेषज्ञ, एक आधुनिक भारतीय तथा शास्त्रीय भाषाओं का विशेषज्ञ और एक विज्ञान-विशेषज्ञ रखना सदा ही सम्भव रहता है (आमतौर से विज्ञान-विशेषज्ञ पूरे समय विज्ञान न पढ़ा सकेगा, उसको उसके साथ-साथ कोई दूसरा विषय भी पढ़ाना पड़ेगा)। ड्राइंग तथा हस्तकला की शिक्षा देने के लिए विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है; पर इन विशेषज्ञों के अतिरिक्त ऐसे अन्य अध्यापक रखना ज़रूरी होगा, जो कई एक विषय पढ़ा सकें। कारण बिलकुल स्पष्ट है—यदि वे किसी एक ही विषय के विशेषज्ञ होंगे, तो उनके लिए पर्याप्त काम निकालना असम्भव होगा। तब नियम यह होना चाहिए कि जहां तक हो सके, विशेषज्ञ-अध्यापक नियुक्त किये जायँ और यथासम्भव इस बात की चेष्टा की जाय कि किसी भी अध्यापक को दो से अधिक विषय न पढ़ाने पड़ें। बड़ी पाठशालाओं में, जहां एक से अधिक वर्ग हों, शुरू से आख़िर तक सब विशेषज्ञ अध्यापकों का प्रबन्ध करना कोई कठिन कार्य नहीं है।

प्राथमिक पाठशालाओं में भी, जहां आमतौर से विशेषज्ञ नहीं होते, यदि अध्यापकों को एक कक्षा के समस्त विषय पढ़ाने के लिए दे देने के बजाय वे बिषय पढ़ाने के लिए लिये जायँ, जिनमें उनकी रुचि हो, तो ज्यादा अच्छा होगा। हां, जिन पाठशालाओं में एक ही दो अध्यापक हों, वहां विशेषज्ञ होना सम्भव नहीं।

तब विषय-अध्यापकों के पक्ष में कौन-कौन से कारण हैं? क्या यह कहना सत्य न होगा कि यदि एक अध्यापक एक कक्षा के समस्त विषयों का अध्यापन करता है तो उसे उस कक्षा-विशेष के कार्य में सन्तुलन क़ायम करने तथा उनकी उन्नति का अन्दाज़ लगाने, उनकी कमज़ोरी मालूम करने तथा किस चीज़ पर ज़ोर देने की आवश्यकता है--यह निश्चित करने का अधिक अच्छा अवसर मिल सकेगा। क्या वह अपने शिष्यों को अधिक अच्छी तरह से न जान जायगा?

यह मानना पड़ेगा कि विशेषज्ञ अथवा विषय-अध्यापकों की पद्धति के साथ यह बहुत ज़रूरी है कि अध्यापकगण एक-दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध रखें और एक-दूसरे से परामर्श लेते रहें। निस्सन्देह भय इस बात का है कि विषय-अध्यापक केवल अपने ही विषय का ध्यान रखें और दूसरे विषयों की उपेक्षा करते हुए अपने विषय में अत्यधिक गृह-कार्य दे दें और आमतौर से उसके ऊपर बहुत ज्यादा ज़ोर दें। कक्षा-अध्यापकों की पद्धति से इस प्रकार के ख़तरे बड़ी आसानी से बचाये जा सकते हैं और अन्योन्य सम्बन्ध (correlation) सरल हो जाता है। परन्तु यदि ख़तरे समझ लिये जाते है, तो विषय-अध्यापकों के रहते हुए भी उनका मुक़ाबला किया जा सकता है और उनसे बचने का प्रबन्ध हो सकता है। विषय-अध्यापकों की पद्धति से कई एक बहुत बड़े-बड़े लाभ हैं।

पहली बात तो यह है कि इसके द्वारा रुचि के वितरण में निश्चित रूप से अधिक समानता प्राप्त की जा सकती है। मामूली तौर से एक कक्षा-अध्यापक के लिए, जो सारे ही विषयों का अध्यापन करता है, उन सभी विषयों में समान रूप से रुचि रखना सम्भव नहीं। फिर भी यह बात स्वतः सिद्ध मानी जाती है कि सफल अध्यापन के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक अपने विषय में ख़ूब रुचि रखता हो। साधारणतया विशेषज्ञ अध्यापक उसी विषय का अध्यापन करता है, जिसमें उसकी विशेष रुचि है, अन्यथा वह उसमें विशेष योग्यता प्राप्त ही क्यों करता? प्रत्येक विशेषज्ञ अपने-अपने विषय में रुचि रखता है, जिसके फलस्वरूप प्रत्येक विषय में कक्षा को बड़ी रुचिपूर्ण ढंग से पढ़ाया जाता है।

दूसरी बात यह है कि विशेषज्ञ को अपने विषय का जितना अधिक ज्ञान होता है, उस विषय-विशेष का उतना ज्ञान कक्षा-अध्यापक को किसी प्रकार नहीं हो सकता। पाठशालाओं में शायद भाषाओं को छोड़कर, जहां आरम्भ करनेवालों से

लेकर ऊपर तक सभी के लिए यह सोचा जाता है कि अध्यापक का ज्ञान जितना ही अधिक हो उतना ही अच्छा है, अकेले विषय का ही ज्ञान इतना महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जाता। पर वहां भी विधि का ज्ञान एक ऐसी वस्तु है, जिसके कारण विशेषज्ञ को कक्षा-अध्यापक की अपेक्षा कहीं अधिक लाभ होगा। एक कक्षा-अध्यापक प्रत्येक विषय को पढ़ाने की विधियों में समान रूप से निपुण होने की आशा नहीं कर सकता। वह प्रत्येक विषय के अध्यापन की नवीनतम विधियों का उपयोग करने की आशा नहीं कर सकता। विशेषज्ञ अपने विषय में ऐसा करने में समर्थ होता है और इसलिए विशेषज्ञ-अध्यापक-प्रणाली के अन्तर्गत प्रत्येक विषय की अध्यापन-विधि अच्छा होना लाज़मी है।

तीसरी बात यह है कि विशेषज्ञ अथवा विषय-अध्यापक को अपने विद्यार्थियों को जानने तथा उनके ज्ञान का प्रयोग करने के लिए कहीं अधिक सुयोग प्राप्त होता है। निश्चय ही साल भर में कक्षा-अध्यापक अपने विद्यार्थियों के साथ विषय अध्यापक की अपेक्षा अधिक समय तक रहता है, पर आगामी वर्ष वह उनसे अलग हो जाता है और जहां तक कक्षा-कार्य का सम्बन्ध है, वह फिर उनके सम्पर्क में ही नहीं आ पाता। दूसरी ओर विषय-अध्यापक विद्यार्थियों को चार या पांच वर्ष तक अपने साथ रखता है। इस अवधि में वह उनके बारे में जानकारी प्राप्त कर सकता है, उनके द्वारा की जानेवाली उन्नति पर दृष्टि रख सकता है, उनकी कठिनाइयों का पता लगा सकता है और व्यक्तिगत रूप से उनको सहायता देने तथा उनके साथ व्यवहार करने के लिए ऐसी विधियां खोजकर निकाल सकता है, जो वर्षों तक उसके लिए उपयोगी हों। अपने विद्यार्थियों के लिए वास्तव में कुछ करने का उसको कहीं अच्छा सुयोग मिल जाता है। वह उनके साथ केवल एक ही अवस्था पर नहीं रहता, वरन् उनको अपने संसर्ग में रखते हुए धीरे-धीरे विकसित करता रहता है, इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि उसे उनको जानने का अधिक अवसर मिले और वह अपने प्राप्त किये हुए ज्ञान का कहीं अच्छा उपयोग कर सके। कभी-कभी ऐसा कहा जाता है कि विषय-अध्यापकों के रखने का मतलब है—विद्यार्थियों को विषय के अधीन कर देना, पर ऐसी धारणा निर्मूल है। चाहे प्रयोग में लाई जानेवाली प्रणाली कक्षा-अध्यापक प्रणाली हो अथवा विषय-अध्यापक प्रणाली हो, पर विषय के प्रति विद्यार्थी की अधीनता तो एक ऐसी वस्तु है जो अध्यापक के ऊपर व्यक्तिगत रूप से निर्भर

रहती है। इस प्रकार कक्षा-अध्यापक विद्यार्थी को इस मामले में ठीक उसी प्रकार परेशान कर सकता है जिस प्रकार एक विषय-अध्यापक कर सकता है।

चौथी बात यह है कि विषय-अध्यापक अपने कार्य का वर्गीकरण कक्षा-अध्यापक की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह से कर सकता है। उदाहरण के लिए मान लो जैसे उसके ऊपर सातवीं, आठवीं, नवीं और दसवीं कक्षाओं के गणित का उत्तरदायित्व है; ऐसी दशा में कार्य का वर्गीकरण करने तथा अपने विद्यार्थियों की उन्नति के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने में जैसे-जैसे वे ऊँची कक्षाओं में चढ़ते जाते हैं, उसको कई एक कक्षा-अध्यापकों के मुक़ाबले में कहीं अधिक सुविधा होगी। उसके पास उनके सम्बन्ध में आवश्यक ज्ञान तो है ही, उसी के सहारे वह गत वर्ष जहां रुका था, उसके आगे से अपना कार्य आरम्भ कर देता है। बल्कि यों कहना चाहिए कि इस प्रकार विषय चार अलग-अलग शिक्षकों के बीच विभाजित होने के बजाय नीचे से लेकर ऊपर तक बराबर उसी के नियंत्रण में रहता है। जब एक विषय लगातार कई कक्षाओं में एक ही अध्यापक पढ़ाता है, तब पाठ्यक्रम भी कहीं अधिक संतोषजनक ढंग से निर्धारित किया जा सकता है।

यदि डॉल्टन प्लान जैसी किसी व्यक्तिगत कार्य-प्रणाली का प्रयोग किया जाता है, तब तो विषय-अध्यापकों का रखना ज़रूरी हो जाता है। प्रॉजेक्ट-विधि-व्यवस्था के अन्तर्गत कक्षा-अध्यापकों का प्रयोग करने में सम्भवतः अधिक सरलता होगी। पर ऐसा कोई कारण तो समझ में नहीं आता कि विषय-अध्यापकों के साथ इस विधि का प्रयोग न हो पाये। यदि प्रॉजेक्ट (Project) का कार्यान्वित करने के सम्बन्ध में घंटों की पाबन्दी सख्ती के साथ न की जाय, तो मभवतः यह पता लगेगा कि कक्षा-अध्यापक की प्रणाली अधिक सुविधाजनक है।

जो कुछ हम पहले देख चुके हैं, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि माध्यमिक विभागों से लेकर ऊँचे विभागों तक बराबर विषय-अध्यापकों का होना एक ऐसा आदर्श है, जिसको लक्ष्य करके हमें चलना चाहिए। इस प्रकार की प्रणाली पूर्णरूप से चालू की जा सकती है या नहीं, यह बात पाठशाला मे होनेवाली कक्षाओं की संख्या के ऊपर निर्भर होगी। यदि कक्षा-अध्यापकों के स्थान पर विषय-अध्यापकों का प्रयोग किया जाता है, तो प्रत्येक कक्षा के लिए एक ऐसे अध्यापक की नियुक्ति होनी चाहिए, जो उस कक्षा की देख-रेख के लिए उत्तरदायी हो। ऐसे कामों के लिए, जैसे

शुल्क लेने तथा कक्षा के संसृष्ट (corporate) कार्य का निरीक्षण करने के लिए, ऐसा करना (शिक्षक की नियुक्ति) आवश्यक है।

विभाग (Faculties)

अध्यापक-मंडल पाठशाला के उद्देश्य एवं लक्ष्य की पूर्ति के लिए एक साथ मिल कर सहयोग के साथ काम करनेवाला एक समुदाय है। जैसा हम इसके पहलेवाले अध्याय में देख चुके हैं, अध्यापक-मंडल के सदस्यों के तथा प्रधान अध्यापक और प्रबन्धकारिणी-समिति के बीच पूर्ण सहयोग होना आवश्यक है। व्यवस्था के बिना सहयोग नहीं हो सकता और इसीलिए यह ज़रूरी है कि इस काम के लिए निश्चित प्रबन्ध किये जायँ।

पहली बात यह है कि अध्यापक-मंडल को विभागों में बाँट दिया जाय। इसका मतलब यह है कि वे सारे ही अध्यापक, जो एक विषय-विशेष का अथवा कई एक सम्बन्धित विषयों का अध्यापन करते हैं, उस विषय अथवा उन विषयों के विभाग का निर्माण करेंगे। जैसे अंग्रेज़ी पढ़ानेवाले समस्त अध्यापक मिलकर अंग्रेज़ी-विभाग, गणित पढ़ानेवाले समस्त अध्यापक गणित-विभाग और इसी प्रकार विज्ञान-विभाग (छोटी पाठशाला में इन दोनों—को गणित और विज्ञान—मिलाया जा सकता है; बड़ी पाठशाला में कृषि को विज्ञान के साथ शामिल किया जा सकता है), सामान्य-ज्ञान-विभाग, आधुनिक भारतीय भाषाओं का विभाग, शास्त्रीय भाषाओं का विभाग (छोटी पाठशाला में ये दोनों मिलाये जा सकते हैं) आदि बनेंगे। यदि (पाठशाला में) टेक्निकल विषयों की शिक्षा दी जाती है तो टेक्निकल विषयों का एक अलग विभाग होना चाहिए, जिसके अन्तर्गत ड्राइंग शामिल होगी। यदि माध्यमिक पाठशाला के साथ एक प्राथमिक पाठशाला का लगाव है तो प्राथमिक पाठशाला के अध्यापकों का एक प्राथमिक पाठशाला-विभाग बन जायगा। अपने पद के नाते प्रधान अध्यापक प्रत्येक विभाग का सदस्य होता है, पर प्रत्येक विभाग की प्रत्येक बैठक में उपस्थित रहना उसके लिए ज़रूरी नहीं।

विभाग की बैठकों में प्रत्येक विभाग का अपना सीनियर अध्यापक सभापति का आसन ग्रहण कर सकता है और सभा में होनेवाले कार्य को रजिस्टर में दर्ज करने

के लिए एक मंत्री की नियुक्ति की जा सकती है। विभागों की बैठकें जब कभी आवश्यकता हो तभी हो सकती है, पर महीने में कम-से-कम एक बैठक तो ज़रूर होनी चाहिए। विभाग के विषय के अध्यापन तथा व्यवस्था से सम्बन्ध रखनेवाले कोई भी मामले बैठकों मे पेश किये जा सकते हैं और उनके ऊपर विवेचना की जा सकती है, परन्तु नियमित रूप से होनेवाली मासिक सभा में विषयों के जिस नियमित पाठ्य-क्रम की विवेचना तथा प्रदर्शन किया जाय, उसको प्रति तिमाही के आरम्भ में ही तैयार कर लेना चाहिए। एक विषय के निश्चित हो जाने का मतलब यह नहीं कि दूसरे मामले पेश नहीं किये जा सकते और उनके ऊपर वाद-विवाद नहीं हो सकता, पर इस प्रकार के पाठ्य-क्रम से विभाग के कार्य में स्थिरता एव अविच्छिन्नता आ जाती है।

विभागों की ओर से अपने विषय के अध्यापन के सम्बन्ध में प्रयोगों (experiments) का आयोजन किया जा सकता है। उन्हें चाहिए कि परीक्षाफलों की तुलना करें, इन परीक्षाफलों के मूल्यांकन की चेष्टा करें और इस प्रकार विषय में उत्कट रुचि बनाये रहें तथा विषय के सम्बन्ध में कुछ रचनात्मक एवं उत्पादक कार्य करते रहें। विभागीय बैठकों में विद्यार्थियों के सम्बन्ध में व्यक्तिगत रूप से वाद-विवाद करने का भी अवसर मिल जाता है, विशेषरूप से जहाँ एक ही विषय को दो अध्यापक पढ़ाते है ; जैसे अँग्रेजी। प्रत्येक विभाग के सभापति को, अर्थात् विषय के सीनियर अध्यापक को, यह आदेश मिलना चाहिए कि वह भी अपने विषय का कुछ निरीक्षण-कार्य करे और इस प्रकार प्रधान अध्यापक के काम में मदद पहुंचाये।

वर्ष के आरम्भ मे विभाग की बैठक करके पाठशाला की समस्त कक्षाओं के लिए अपने विषय-विशेष का पाठ्य-क्रम निर्धारित कर लेना चाहिए। ऐसा करने से पाठ्य-क्रम सुन्दर एव क्रमबद्ध बन जायगा। सभा के सामने तो मोटी-मोटी बातों को लेकर (पाठ्य-क्रम का) एक ढांचा तैयार कर लेना काफ़ी है, उसको विस्तार के साथ तैयार करने का काम तो व्यक्तिगत अध्यापकों के ऊपर छोड़ा जा सकता है। यदि कक्षा-अध्यापक-प्रणाली का प्रयोग किया जा रहा है तो ऐसा करना विशेषरूप से आवश्यक है।

विषय-अध्यापकों के बारे में इस बात का अधिक भय नहीं, परन्तु एक ही विषय को पढ़ानेवाले समस्त शिक्षकों के बीच सहयोग होना तो फिर भी आवश्यक होगा, क्योंकि कहीं-न-कहीं तो वे मिलेंगे ही और वहीं पर रिक्त स्थान रह जाने

अथवा एक के ऊपर दूसरे का कुछ भाग आ जाने का भय होगा। हर तिमाही के प्रारम्भ में भी विभाग को हर कक्षा के तिमाही पाठ्य-क्रम की विवेचना कर लेनी चाहिए। यदि कभी-कभी एक विभाग का अध्यापक दूसरे विभाग की बैठक में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित कर लिया जाय, तो बड़ा ही अच्छा हो। अंग्रेजी का अध्यापक कभी-कभी वर्नाक्यूलर विभाग को सहायता दे सकता है।

अध्यापक-मंडल की सभाएँ

महीने में कम-से-कम एक बार अध्यापकों की बैठक होनी चाहिए, जिसमें पूरा अध्यापक-मंडल उपस्थित हो। जैसा पहले संकेत किया जा चुका है, इन बैठकों में सच्ची सहकारी प्रवृत्ति होनी चाहिए और इनको पारस्परिक सहायता के वास्तविक साधन बनना चाहिए। नियमित रूप से होनेवाली अध्यापक-मंडल की इन मासिक सभाओं के लिए विषयों के उस पाठ्य-क्रम का, जिसके ऊपर विचार, वाद-विवाद अथवा प्रदर्शन किया जाय, खाका तो तैयार कर ही लेना चाहिए, पर साथ-ही-साथ सभा का पर्याप्त समय पाठशाला के स्वाभाविक दैनिक जीवन के सम्बन्ध में उठनेवाले मामलों, अध्यापकों तथा प्रधान अध्यापक के सुझावों और विभिन्न विभागों की रिपोर्टों में लग जाना चाहिए। नियमित रूप से होनेवाली अध्यापक-मंडल की प्रत्येक मासिक सभा में प्रत्येक विभाग की ओर से एक रिपोर्ट पेश की जानी चाहिए। ऐसा करने से विषयों के अन्योन्य सम्बन्ध (correlation) से सम्बन्धित मामलों, एक कठिन समस्या बन जानेवाले विद्यार्थियों तथा अन्य मामलों पर, जो किसी एक विभाग-विशेष से सम्बन्धित होते हुए भी सामान्य रुचि एवं महत्ता के विषय हों, विचार तथा वाद-विवाद करने का अवसर मिल जाता है। अध्यापकों की मासिक सभा जल्दी-जल्दी में न होनी चाहिए; उसके लिए काफ़ी समय देना चाहिए। इस प्रकार व्यय किये हुए समय का सदुपयोग ही होगा।

एक मंत्री की नियुक्ति होनी चाहिए और सभा की कार्यवाही का विवरण रजिस्टर में दर्ज होना चाहिए। अध्यापक-मंडल की सभा का जितना व्यावहारिक अंश है, उसमें तो प्रधान अध्यापक के लिए सभापति का आसन ग्रहण करना स्वाभाविक ही है, पर सभा के द्वितीय अंश में, जब सभा के सम्मुख कोई विशेष विषय

प्रस्तुत किया जाता है, तब ज्यादा अच्छा यही होगा कि विभिन्न अध्यापक बारी-बारी से सभा का उत्तरदायित्व सँभालें। यदि ऐसा किया जाता है तो प्रधान अध्यापक के लिए पारस्परिक मित्रता स्थापित करने का उद्देश्य, जिसको वह सदैव अपने सम्मुख रखता है, पूर्ण करने में सरलता होगी।

अध्यापक-मंडल को नियमित रूप से होनेवाली इस सभा के लिए यदि किसी प्रकार सम्भव हो सके, तो कार्य-सूची (agenda) पर होनेवाले आवश्यक कार्यों की सूचना काफ़ी पहले से दे देनी चाहिए, ताकि अध्यापकों को उनके ऊपर विचार करने का समय मिल जाय। यदि सभा में मामले अचानक पेश कर दिये जाते हैं तो अध्यापकों से यह आशा करना कि वे उनके सम्बन्ध में अपना सर्वोत्कृष्ट योग दे सकेंगे, असम्भव है। इस प्रकार की सूचना देना सर्वदा सम्भव नहीं होता, पर मामूली तौर से ऐसा हो सकता है और ऐसे सभी मामलों में, जहां महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों का प्रस्ताव रखा जाय, ऐसा ज़रूर कर लेना चाहिए। यदि विभागों की ओर से (सभा के सामने) कोई आवश्यक मामले पेश करना हो तो उनकी सूचना भी देनी चाहिए।

महीने के अन्दर अध्यापक-मंडल की नियमित रूप से होनेवाली सभा के अतिरिक्त अन्य सभायें करने की भी आवश्यकता पड़ सकती है। ये बैठकें थोड़े समय के लिए होंगी और इनमें उन्हीं ज़रूरी व्यावहारिक बातों पर विचार किया जायगा, जो टाली नहीं जा सकतीं। यदि अध्यापक-मंडल के काफ़ी सदस्य अध्यापकों की सभा बुलाने के लिए प्रार्थना करें, तो प्रधान अध्यापक को इस प्रकार की सभा बुलाने में किसी तरह की आनाकानी न करनी चाहिए।

अध्यापक-मंडल की इस प्रकार की व्यवस्था के अन्तर्गत, जिसमें अध्यापकों का विभागों में विभाजन हो, विभागीय बैठकें तथा पूरे अध्यापक-मंडल की सभाएँ हों। जो काम किया जा रहा है उसके ऊपर विचार तथा उसकी विवेचना करने के लिए, प्रयोगों का आयोजन करने के लिए, पाठशाला के कार्य की उन्नति का संचालन करने के लिए, कार्य में अन्योन्य सम्बन्ध स्थापित करने के लिए, व्यवस्था के लिए, नई विधियों की विवेचना करने के लिए, दुस्साध्य विद्यार्थियों के बारे में ग़ौर करने के लिए, अध्यापक-मंडल के सदस्यों के बीच होनेवाली शिकायतों अथवा परेशानियों को, या इसी तरह की अन्य बातों को, जो पाठशाला के विद्यार्थियों के बीच

उन्हें दिखाई पड़ती हों, दूर करने के लिए, बहुत समय मिल जायगा और पाठशाला के वातावरण को स्वस्थ एवं पुष्ट बनाने में अत्यधिक सहायता मिलेगी।

कार्य-निर्देशन (Assigning work)

यह बहुत ज़रूरी है कि वह पुराना ख्याल, जिसके अनुसार यह समझा जाता है कि सर्वोत्कृष्ट गुणोंवाले अध्यापकों को सबसे ऊंची कक्षाओं को ही पढ़ाना चाहिए, त्याग दिया जाय। छोटी-से-छोटी कक्षाओं को पढ़ाने में अधिक-से-अधिक अध्यापन-कौशल की आवश्यकता पड़ती है। सर्वोत्कृष्ट गुणों से सम्पन्न अध्यापकों को निम्नतम कक्षाएँ पढ़ानी चाहिए। उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी को देखिये। उसमें सबसे महत्त्वपूर्ण पद वह है, जिस पर होनेवाला अध्यापक उन बच्चों को पढ़ाता है जो अंग्रेज़ी सीखना आरम्भ कर रहे हैं। इस स्थान पर एक ऐसे मनुष्य को होना चाहिए, जिसमें अध्यापन-कौशल सबसे अधिक हो और जिसको अंग्रेज़ी का सर्वोत्कृष्ट ज्ञान हो। आरम्भ करनेवाले बच्चों को पढ़ाने का आदेश पाना अपनी शान के खिलाफ़ न समझना चाहिए। इसे तो सम्मान का पद समझना चाहिए। अन्य विषयों के बारे में भी यही हाल है। जो लोग नींव डालते हैं वे ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। यदि सारी बातें समान हों, तो सर्वोत्कृष्ट प्रशिक्षण पानेवाले व्यक्ति को इस बात का भार सौंप देना चाहिए कि वह छोटी कक्षाओं के लिए अधिक-से-अधिक समय यथासम्भव देता रहे। इसका मतलब यह नहीं कि ऊंची कक्षाओं में पढ़नेवालों के लिए कुशल अध्यापन की आवश्यकता ही नहीं। आजकल पाठशालाओं में समस्त अध्यापक प्रशिक्षित होने चाहिए। पर कहना यह है कि यदि एक अध्यापक अध्यापन-सम्बन्धी उच्च डिग्री या योग्यता प्राप्त करके आता है तो उसको ऊंची कक्षाएँ आप-से-आप दे ही दी जायँ, यह बात उचित नहीं। उदाहरण के लिए यदि प्रधान अध्यापक को इस बात का चुनाव करने की स्वतन्त्रता न हो कि वह अपनी मैट्रिकुलेशन कक्षा तथा अंग्रेज़ी की निम्नतम कक्षा दोनों में से कौन-सी कक्षा को पढ़ाये, तो उसे सबसे छोटी कक्षा को पढ़ाने का ही भार अपने ऊपर लेना चाहिए।

इसमें एक गुण हो सकता है। कुछ अध्यापक बड़ी आयुवाले विद्यार्थियों के साथ अधिक स्वच्छन्द होते हैं और उनको अल्पायु बालकों की अपेक्षा ज़्यादा अच्छी

तरह से पढ़ा सकते हैं। सच तो यह है कि गोल छेदों में वर्गाकार खूटियों को ठोकने की चेष्टा करने से लाभ ही क्या! प्रधान अध्यापक को अपने अध्यापकों की रुचियों तथा उनके झुकाव का अध्ययन अवश्य कर लेना चाहिए और उसके बाद जहां तक सम्भव हो उसी के अनुसार अध्यापकों के बीच कक्षाओं का विभाजन करना चाहिए। यदि कोई शिक्षक वयस्क विद्यार्थियों के साथ विशेषरूप से अच्छा है, तो उसको वे ही विद्यार्थी पढ़ाने के लिए मिलने चाहिए। परन्तु यदि सारी चीज़ें बराबर हों तो सर्वोत्कृष्ट अध्यापकों को निम्नतम कक्षाएँ पढ़ाने के लिए मिलनी चाहिए और ऐसा करने में इज्ज़त घट जाने का कोई अंदेशा न होना चाहिए।

अध्याय ३

अनुशासन

शब्द-कोष के अनुसार अनुशासन का अर्थ है मानसिक एवं नैतिक प्रशिक्षण को नियंत्रण में लाना। पाठशाला में अनुशासन का साधारण अर्थ है—कार्यों को करने में व्यवस्था एवं क्रमबद्धता, नियम तथा आज्ञाओं का पालन। बाहरी दिखाव में तो उस पाठशाला का अनुशासन अच्छा ही समझा जाता है, जहां के विद्यार्थी कक्षा में आज्ञा-पालक रहते हैं, छात्रावास में किसी तरह की परेशानी नहीं पैदा करते और नैतिक अपराधों से साफ़ बचकर निकल आते हैं। तो भी वास्तविक अनुशासन का निर्णय विधि एवं परिणाम दोनों के ही आधार पर होना चाहिए; और परिणाम भी केवल पाठशाला या छात्रावास में नहीं, वरन् खेल के मैदान में, सड़क पर, बाज़ार में और घर में, सभी जगह देखना चाहिए। इसका निर्णय इस बात को भी ध्यान में रखकर होना चाहिए कि वयस्क विद्यार्थी पाठशाला छोड़कर संसार में प्रविष्ट होने पर कैसा नैतिक आचरण करते हैं। ये ही वे जगहें हैं जहां अनुशासन की सच्ची परीक्षा हो सकती है और जहां हम यह मालूम कर सकते हैं कि पाठशाला सचमुच इस दिशा में अपना कार्य कर रही है।

अनुशासन दो प्रकार का हो सकता है। एक प्रकार का अनुशासान वह है, जो

भय के ऊपर आधारित रहता है और सत्ता के प्रयोग द्वारा बाहर तथा ऊपर से विद्यार्थी के ऊपर लादा जाता है। दूसरे प्रकार का अनुशासन वह है जिसका विकास शनैः शनैः आत्म-नियंत्रण एवं सहयोग की आदतें डालने के फलस्वरूप होता है, जो विद्यार्थी द्वारा केवल इसीलिए नहीं स्वीकृत होता अथवा जिसका पालन वह केवल इसीलिए नहीं करता कि वह ऊपर से लादा गया है, वरन् इसलिए करता है कि वह स्वयं उसकी आवश्यकता तथा मूल्य को स्वीकार करता है। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि दूसरे प्रकार का अनुशासन ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए। सच्चा अनुशासन तभी आ सकता है जब विद्यार्थी की इच्छित स्वीकृति प्राप्त हो, और जब वह स्वयं अपने से याचित बातों के औचित्य एवं आवश्यकता को स्वीकार करता हो। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार के अनुशासन के परिणाम कक्षा तथा पाठशाला में तो दृष्टिगोचर होंगे ही, पर बाहर तो वे और भी अधिक दिखाई पड़ेंगे। आत्म-नियंत्रण, जो अनुशासन का फल आना चाहिए, एक ऐसी आदत है जो जीवन में पाठशाला के बाहर तथा पाठशाला छोड़ देने के बाद भी दिखाई पड़ेगी।

भय एक ऐसा अस्त्र है, जिसका प्रयोग जितना कम-से-कम हो सके, करना चाहिए और जब उसका प्रयोग करें तो हमें यह समझना चाहिए कि हम क्या कर रहे हैं। विद्यार्थियों को किसी काम के करने से रोकने के लिए भय भले ही लाभदायक हो, परन्तु सक्रिय रचनात्मक कार्य करने की इच्छा उत्पन्न करने के लिए इससे कोई लाभ नहीं। दूसरे शब्दों में इसका प्रभाव नकारात्मक (negative) है विधेयात्मक (positive) नहीं। अच्छी नैतिक अथवा मानसिक आदतें पदा करने के लिए यह बिलकुल बेकार है। यह बुरी आदतें पड़ने से बचा सकता है और जो बुरी आदतें पड़ रही हैं उनको दूर कर सकता है और यही इसका काम है। पर हमें यह बात याद रखनी चाहिए कि भय केवल इतना ही कर सकता है। बालक को कड़ी सज़ा देकर हम उसको झूठ बोलने से डरा सकते हैं, पर इस विधि से हम उसे सत्य से प्रेम करना नहीं सिखा सकते; पर हमारा वास्तविक उद्देश्य यही होना चाहिए। जब हम बालक से चुपचाप बैठने के लिए कहते हैं तब दंड का भय दिखाकर उसे चुप बिठा सकते हैं, पर ऐसी हालत में हमें यह कल्पना नहीं करना चाहिए कि हम उसको आज्ञा-पालन का पाठ पढ़ा रहे हैं; हम जो कुछ भी उसे सिखा रहे हैं, वह है केवल विवेक।

तब अनुशासन के सम्बन्ध में यह सिद्धान्त हमारे सामने आता है—भय और भय से प्रभावित होनेवाला दंड केवल नकारात्मक दिशा में ही काम देते हैं।

दंड के भेद

१. शारीरिक दंड (Corporal punishment).

शारीरिक दंड इस प्रकार का दंड है, जिसका प्रयोग कम-से-कम होना चाहिए। यदि हमारा काम इसके बिना चल जाय तो बहुत ही अच्छा है। मामूली तौर से इस प्रकार का दंड देने का मतलब यह है कि हम स्वय अपनी असफलता को स्वीकार करते हैं। यदि इसका प्रयोग करना ही है तो प्रयोग करते समय दंड पानेवाले (विद्यार्थियों) का व्यक्तिगत रूप से लिहाज़ रखना चाहिए। शारीरिक दंड देने का अधिकार केवल प्रधान अध्यापक को होना चाहिए और अध्यापकों द्वारा तमाचे लगाने तथा ठोकर मारने की आदत को रोकने के लिए सख्ती के साथ कोशिश करनी चाहिए। यदि अध्यापक शारीरिक दंड देने की सिफ़ारिश करता है, तो उससे ऐसा करने के कारण पूछना चाहिए। उसके बाद प्रधान अध्यापक को, विद्यार्थी को ध्यान में रखते हुए, अपनी विवेक-बुद्धि का प्रयोग करके यह निश्चय करना चाहिए कि इस प्रकार का दंड दिया जाय या नहीं और यदि दिया भी जाय तो कठोरता की मात्रा कितनी हो। कुछ बच्चे कोमल हृदय के तथा चातुर्यपूर्ण होते हैं, जिनके लिए शारीरिक दंड बड़ा ख़राब होता है। यह कहने में कोई डर नहीं कि मामूली तौर से यौवन-प्राप्त विद्यार्थियों के लिए इस प्रकार का दंड हानिकारक है। परन्तु प्रधान अध्यापक को अपने विद्यार्थियों के सम्बन्ध में प्राप्त किये हुए ज्ञान के अनुसार अपनी विवेक-बुद्धि का प्रयोग करना होगा। यह नियम कदापि न होना चाहिए कि प्रधान अध्यापक के पास जितने भी विद्यार्थी भेजे जायं, उन सबको शारीरिक दंड दिया ही जाय।

२. दंड के रूप में दिया जानेवाला फ़ालतू काम.

बरतने के लिए यह सिद्धान्त अच्छा है कि जहां तक सम्भव हो दंड अपराध के अनुरूप हो, अर्थात् दंड अपराध का ही स्वाभाविक परिणाम हो। साधारण रूप में यदि काम न किया जाय अथवा लापरवाही के साथ किया जाय, तो स्वाभाविक दंड

तो यह है कि विद्यार्थी से वह काम करवाया जाय जो उसने नहीं किया है, अथवा जो काम लापरवाही के साथ किया गया है उसको दुबारा करवाया जाय। पर दोनों हालतों में थोड़ा फ़ालतू काम और दे दिया जाय। यदि इस रूप में दंड दिया जाता है, तो दंड के रूप में किये हुए कार्य से काफ़ी लाभ होगा। दंड के रूप में बच्चे से लम्बी-लम्बी कविता कण्ठस्थ कराना अथवा गद्य या पद्य की कुछ लाइनें लिखवाना बड़ी ग़लती है। इस प्रकार के दंड देना बच्चे के समय एवं शक्ति की बरबादी करना है। ऐसा करने से कुछ लाभ नहीं होता। दंड के रूप में जो भी काम दिया जाय, वह कम-से-कम कुछ लाभदायक तो होना ही चाहिए (अध्याय ७ में अवरोध [detention] देखिये)।

इस प्रकार का दंड देते समय यह याद रखना चाहिए कि दंड के रूप में दिये जानेवाले कार्य के सम्बन्ध में अप्रिय विचार-सम्बद्धता हो जाने का भय है? बार-बार दंड के रूप में इस प्रकार का काम दिये जाने से कार्य की किसी शाखा-विशेष के प्रति स्थायी रूप से घृणा पैदा हो सकती है। हमको इस बात के लिए बहुत सावधान रहना चाहिए कि जो कुछ हम करते हैं उसका प्रभाव क्या होगा। जो दंड हम देते हैं उससे हमारा मुख्य अभिप्राय नष्ट न होना चाहिए। जैसा ऊपर बताया जा चुका है, इस प्रकार का भय उस दशा में कम हो जाता है, जब कि हम एक निश्चित प्रकार के अर्थहीन दंड का, जिसका प्रयोग सदा ही होता है, त्याग करते है और जब कि दंड के रूप में हम विद्यार्थी से केवल एक ही आशा करते हैं कि जो काम नहीं किया गया, वह कर लिया जाय अथवा लापरवाही के साथ किया हुआ कार्य सावधानी के साथ फिर से कर लिया जाय। दुराचार के लिए दंड के रूप मे पाठशाला का कार्य देने का नियम बनाना बुद्धिमानी का काम नहीं।

३. जुर्माना (अर्थ-दंड).

जुर्माना करना दंड देने का कोई अच्छा तरीक़ा नहीं है। कारण बिलकुल स्पष्ट है—मामूली तौर से इसका बोझ माता-पिता पर पड़ता है, न कि विद्यार्थी पर। बहुत मामलों में बिना छुट्टी लिये अनुपस्थित हो जाने तथा देर से कक्षा में आने के लिए कोड (Education Code) द्वारा जुर्माने के रूप में दंड की व्यवस्था की गई है। बिना छुट्टी लिये अनुपस्थित हो जाने में बहुधा माता-पिता का दोष होता है और

ऐसे मामलों में सज़ा के लिए कोई एतराज़ नहीं। पर साथ-ही-साथ अक्सर ऐसा भी होता है कि अनुपस्थित होने में विद्यार्थी का उतना ही दोष होता है जितना उसके माता-पिता का; और जब प्रधान अध्यापक को संतोष हो जाय कि ऐसा मामला है, तब विद्यार्थी को दंड देने के लिए उसको फ़ालतू काम देने का प्रबन्ध करना चाहिए, जिससे वह (विद्यार्थी) अपनी अनुपस्थिति के कारण होनेवाले नुक़सान को पूरा कर सके। पाठशाला में देर से पहुँचने में मामूली तौर से विद्यार्थी का ही दोष होता है, और इसीलिए जुर्माना करने से कोई लाभ नहीं होता। हां, उसके प्रति होनेवाली माता-पिता की प्रतिक्रिया के रूप में अप्रत्यक्ष-रूप से भले ही कुछ हो जाय। जहां विभागीय नियमों तथा कोडों द्वारा इसके ऊपर ज़ोर दिया जाता है, वहाँ प्रधान अध्यापक को यह नियम ज़रूर बना लेना चाहिए कि वह विद्यार्थी से निबटने के लिए अवरोध अथवा किसी अन्य उपाय का भी प्रयोग करेगा।

४. कक्षा-कार्य के अतिरिक्त दंड के रूप में दिया हुआ कार्य.

आचरण के विरुद्ध कोई काम करने पर दंड का वह हितकर रूप, जिसका प्रयोग अपराधी के लिए बहुधा किया जा सकता है विद्यालय-भवन अथवा मैदान के सिलसिले में किसी प्रकार का काम देना है। इस प्रकार का दंड स्थानीय दशाओं तथा प्राप्य कार्य किस प्रकार का है, इसके अनुसार बदल जायगा; परन्तु मामूली तरह से विभिन्न प्रकार के ऐसे कार्य, जो किये जा सकें, ढूँढ़ निकालना कोई कठिन काम नहीं। इस प्रकार दंड प्रायः अपराध के अनुरूप ही हो सकता है। उदाहरण के लिए यदि अपराध का सम्बन्ध स्वच्छता के अभाव से है तो सफ़ाई का कुछ काम दिया जा सकता है (दंड के रूप में)। यदि पाठशाला की अथवा दूसरे विद्यार्थियों की कोई चीज़ जान-बूझकर अथवा लापरवाही से खो दी गई है या नष्ट कर दी गई है, तो ऐसी हालत में अपराधी को ऐसा काम देना चाहिए, जिससे वह धन कमाकर होनेवाले नुक़सान के बदले में यदि पूरा नहीं तो कम-से-कम काफ़ी धन देकर कुछ हद तक उसकी पूर्ति कर सके।

५. नैतिक दंड.

इस प्रकार के दंड से मेरा मतलब है इन दंडों से; जैसे—सार्वजनिक अथवा व्यक्तिगत क्षमा-याचना, पदों से नीचे उतार देना, दिये हुए उत्तरदायित्व से वंचित

कर देना आदि आदि। मामूली तौर से भारतीय बच्चों के लिए ये दंड बड़े ही कठोर हैं और प्रधान अध्यापक को इनका प्रयोग सावधानी के साथ करना चाहिए। फिर भी कभी-कभी ऐसे मौक़े आ पड़ते हैं जब किये हुए अपराध के लिए ठीक इसी प्रकार का दंड देना उचित होता है और उनके फलस्वरूप अपराधी शीघ्र ही ठीक रास्ते पर आ जाता है। इनका प्रयोग करने में, जैसा कि दंडों के सभी मामलों में होता है, प्रधान अध्यापक को उस विद्यार्थी के ऊपर, जिसे वह दंड देने जा रहा है, सावधानी के साथ विचार कर लेना चाहिए। दूसरों के मुक़ाबले में कुछ विद्यार्थियों को इन दंडों से अधिक दुःख होता है। पर ऐसे मामलों में, जैसे किसी को परेशान करना, अपराध की मात्रा के अनुसार निजी रूप में अथवा सबके सामने क्षमा-याचना करवाना दंड देने का सबसे कल्याणकारी तरीक़ा है। पद से नीचे उतारने तथा उत्तरदायित्व से वंचित करने के सम्बन्ध में यह आवश्यक है कि पहले से बिना चेतावनी दिये तथा भर्त्सना किये आख़िरी क़दम न उठाया जाय।

अनुशासन के इस नकारात्मक पक्ष में जो सबसे अधिक आवश्यक तत्त्व है, वह है अनिवार्यता (inevitability)। न्याय के प्रबन्ध में चंचलता तथा असावधानी होने से प्रत्येक पाठशाला का अनुशासन नष्ट हो जाता है और विद्यार्थियों एवं अध्यापकों में असंतोष फैल जाता है। इस बात को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि जिन अपराधो के लिए जो सज़ाएँ निश्चित हैं, उन अपराधों के किये जाने पर वे सज़ाएँ हमेशा दी जायँ। जब कभी सम्भव हो, निश्चित अपराधों के लिए निश्चित तथा जाना हुआ दंड दिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए देर से आने के लिए, जिसके लिए दिया हुआ बहाना प्रधान अध्यापक के विचार से कुछ ठीक नहीं जान पड़ता, एक निश्चित दंड होना चाहिए और बिना किसी हेर-फेर के यह दिया जाना चाहिए। जब कोई चीज़ असावधानी के साथ नष्ट कर दी जाती है अथवा खो दी जाती है, तब उसके बदले में उसी प्रकार की दूसरी चीज़ ख़रीदने के लिए आवश्यक होनेवाला पूरा ही धन अथवा प्रतिशत के हिसाब से उस धन का एक निश्चित अंश उपार्जन करने के लिए कार्य कराने की निश्चित दंड-व्यवस्था होनी चाहिए। अपराध के बाद बिना किसी हेर-फेर के यह दंड मिलना ही चाहिए। गृहकार्य न करने पर और संतोषजनक कारण भी न बताने पर सदैव एक निश्चित दंड मिलना चाहिए। अवरोध इस प्रकार का दंड हो सकता है।

यह बात तो ज़रूर है कि हर मामले में इस नियम का पालन नहीं हो सकता। जैसा हम पहले देख चुके हैं, प्रधान अध्यापक द्वारा विद्यार्थी को व्यक्तिगत रूप से ध्यान में रखने की गुजाइश करनी ही पड़ेगी। यह नियम बनाने से बढ़कर कोई मूर्खता न होगी कि किसी अपराध-विशेष के लिए बिना किसी हेर-फेर के शारीरिक दंड अवश्य दिया जायगा। यहा तक कि उन मामलों में भी, जिनके उदाहरण पहले दिये जा चुके हैं, प्रधान अध्यापक को, दिये गये बहानों तथा कारणों को ध्यान में रखकर, अपनी विवेक-बुद्धि तथा निर्णय का प्रयोग करना पड़ता है। परन्तु अनेक सामान्य अपराधों के मामले में, जैसे वे अपराध जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, यह सम्भव है कि कुछ निश्चित दंड निर्धारित कर दिये जायँ जो अधिकांश मामलों में लागू हो सकें।

प्रत्येक पाठशाला में कुछ नियम अवश्य होने चाहिए। कोई भी व्यवस्थित संस्था नियमों के बिना नही चल सकती। परन्तु संस्था के हित में नियम जितने ही कम हों, उतना ही अच्छा है। फिर भी यह आवश्यक है कि जब नियम बनाये जाते हैं, तब उनसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी लोग—अध्यापक एवं विद्यार्थी—उनको अच्छी तरह से समझ लें। यह भी बहुत ज़रूरी है कि जब नियम बनाये जाते हैं, तब अध्यापकों तथा विद्यार्थियों को उनके बनने के कारण समझा दिये जायँ। ऐसा करने से इस बात का विश्वास हो जायगा कि नियम उचित हैं और नियम केवल नियम के लिए नही बनाये गये है। इस तरह से विद्यार्थियों के लिए नियमों का पालन करना भी सरल हो जायगा। उस नियम की अपेक्षा, जो बलात् लाद दिया जाय, एक ऐसे नियम का पालन करना, जिसको हम जानते हैं, समझते हैं और जिसके बनाये जाने के कारण की सराहना करते हैं, कहीं ज्यादा आसान है। यदि प्रधान अध्यापक इस बात के लिए थोड़ा भी समय देता है कि सब लोग उसके नियमों तथा उनके बनाये जाने के कारणों को समझ लें, तो अनुशासन का काम बहुत ज्यादा आसान हो जाता है। यह योजना बुद्धिमत्तापूर्ण है कि जब अध्यापक-मंडल की बैठक में किसी नियम के विषय में निर्णय हो जाय, अथवा जब उसके ऊपर विचार किया जा रहा हो, तब सीनियर विद्यार्थियों को अपने विश्वास में ले लिया जाय, नियम तथा उसके बनाने के कारण उनको समझा दिये जायँ और उसके विषय में उनके विचार प्राप्त कर लिये जायँ। वे इस विश्वास का प्रत्युत्तर अवश्य देंगे और इस प्रकार सब काम कहीं अधिक

सरलता से चलता रहेगा। एक बार कोई नियम बन जाने के बाद मामूली तौर से उसके विरुद्ध कार्य न होना चाहिए। यहां फिर स्थिरता और निश्चय आधे युद्ध की तरह हैं। दूसरे मामलों की तरह यहां भी प्रधान अध्यापक को अपनी विवेक-बुद्धि का प्रयोग करने का अधिकार है, परन्तु यदि वह बुद्धिमान् होगा तो जहां तक सम्भव हो सकेगा कम-से-कम ऐसे अवसर आने देगा, जबकि नियमों के विरुद्ध कार्य किये जायँ।

प्रधान अध्यापक को एक दंड-रजिस्टर रखना चाहिए और दंड के सारे मामले इस रजिस्टर में दर्ज करने चाहिए। इसके अन्दर अपराध, दिया हुआ दंड और दंड के प्रति होनेवाली बालक की प्रतिक्रिया का अर्थात् दंड देते समय बालक पर उसका क्या प्रभाव पड़ा, इसका उल्लेख होना चाहिए, यदि प्रधान अध्यापक अपने भावी निर्देशन के लिए कुछ नोट करना चाहता है, तो रजिस्टर में विवरण के लिए एक खाना होना चाहिए। इस रजिस्टर में अवरोध-सम्बन्धी दंडों का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि अवरोध-रजिस्टर में आवश्यक ब्योरा मिल ही जाता है। उन सभी मामलों की सूचना, जिनमें शारीरिक दंड दिया जानेवाला हो, माता-पिता अथवा अभिभावक को दे देनी चाहिए और यदि सम्भव हो, तो अपराध तथा दंड के बारे में भी उन्हें बता देना चाहिए।

पुरस्कार तथा पारितोषिक

विद्यार्थियों के लिए यदि एक ओर दंड है तो दूसरी ओर पुरस्कार तथा पारितोषिक भी। इनका उद्देश्य है—रुचि को बढ़ाना तथा उत्तम कार्य एवं उत्तम व्यवहार की ओर लक्ष्य प्रदान करना। यहां पर फिर, जैसे दंडों के मामले में होता है, पुरस्कारों तथा पारितोषिकों का प्रयोग करते समय यह बात ठीक-ठीक समझ लेना ज़रूरी है कि क्या किया जा रहा है। पैदा की हुई रुचि बाहरी रुचि होती है, जो विषय के साथ ज़बरदस्ती जोड़ दी जाती है, और इसीलिए उसकी तुलना उस स्वाभाविक रुचि के साथ नहीं की जानी चाहिए जो विषय के प्रति स्वयमेव उत्पन्न होती है। पर बिलकुल रुचि न होने से तो इस प्रकार की (पैदा की हुई) रुचि होना अच्छा ही है, हालांकि यह एक पूछने योग्य प्रश्न है कि जहां पहले से रुचि उपस्थित नहीं है, वहां क्या पारितोषिकों के

जरिये काफ़ी रुचि पैदा की जा सकती है? पारितोषिक प्रदान करके जिन विशेषताओं को हम विकसित करना चाहते हैं, उनसे बिलकुल भिन्न विशेषताओं को प्रोत्साहन मिल जाने का अन्देशा है। यदि पारितोषिक मूल्यवान् होते हैं तो उनकी वजह से लालच पैदा होता और बढ़ता है और हर हालत में अस्वस्थ स्पर्धा की भावना आती है। यदि पुरस्कार देने का सिद्धान्त अपनाया जाता है तो उस हालत में मेरी सलाह यह है कि जहां तक सम्भव हो सके, व्यक्तिगत स्पर्धा के तत्त्व को दूर कर दिया जाय। पारितोषिक व्यक्तिगत रूप में देने के स्थान पर सामूहिक रूप में देना चाहिए। इस प्रकार सहयोग की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है। उदाहरण के लिए यदि कई दलोंके बीच स्पर्धा होती है तो एक दल के सदस्य खेल के मैदान में, दौड़ के रास्ते में अथवा कक्षा मे व्यक्तिगत रूप से अपनी विजय की उतनी चिन्ता नहीं करते, जितनी अपने दल की विजय की करते हैं। जो कुछ भी वे करते है, वह अपने दल अथवा अपनी कक्षा अथवा समुदाय की इकाई, जो कुछ भी हो, की सहायता के लिए करते हैं। इसकी आवश्यकता नहीं कि ध्वजा, पताका, प्याला अथवा और कोई भी वस्तु, जो विजय-चिह्न के रूप में प्रदान की जाय, यथार्थ में मूल्यवान् हो। वैजयन्ती (trophy) का मूल्य कोई महत्त्व नहीं रखता। महत्त्व की वस्तु तो है --सहयोगपूर्ण प्रयत्न का सफल परिणाम। बच्चों और बड़ों, सभी को स्पर्धा में आनन्द आता है और स्पर्धा तो होगी ही, पर जहां तक सम्भव हो, हमको इस बात की पूरी-पूरी कोशिश करनी चाहिए कि व्यक्तिगत रूप में होनेवाली स्पर्धा को छोड़ दिया जाय और अभिलाषा का शोधन इस प्रकार किया जाय कि व्यक्ति-विशेष (अपने लिए नहीं) अपने समुदाय के लिए कार्य करना, खेलना अथवा दौड़ना सीख जाय।

कार्य के लिए कक्षा-पारितोषिकों के प्रश्न के सम्बन्ध में यह एक उत्तम योजना होगी कि उन विद्यार्थियों को, जिनको वर्ष की तिमाही परिक्षाओं में अंकों के कुल योग में से जितने अंक मिलने की सम्भावना हो प्रतिशत के हिसाब से उससे अधिक अंक मिले हों, सार्टीफ़िकट दे दिये जायं। प्रत्येक विषय के लिए सार्टीफ़िकेट होते हैं। सार्टीफ़िकेट का यथार्थ मूल्य तो थोड़ा ही है, पर सम्मान प्राप्त करने का प्रलोभन तमाम विद्यार्थियों के बीच फैल जाता है। पारितोषिक तो तीन ही चार को मिल सकते हैं, परन्तु प्रत्येक कक्षा में एक या दूसरे विषय में प्रमाणपत्र प्राप्त कर लेना बहुत से विद्यार्थियों के लिए सम्भव है। ऐसा करने से उन तमाम विद्यार्थियों को प्रोत्साहन

मिलेगा, जिनके ऊपर पारितोषिकों का प्रभाव कदापि नहीं पड़ सकता था।

तो भी सब-कुछ देखते हुए सबसे उत्तम यही है कि पुरस्कारों एवं पारितोषिकों का प्रयोग कम ही किया जाय। अध्यापक द्वारा सराहना तथा अच्छी तरह किये हुए कार्य के लिए उसके द्वारा की जानेवाली प्रशंसा सर्वोत्तम पारितोषिक हैं, और यदि अध्यापक तथा विद्यार्थी के बीच सम्यक् सम्बन्ध स्थापित हो चुका है, तो अधिकांश विद्यार्थी भी ऐसा ही समझेंगे। अच्छी तरह से किया हुआ कार्य अपना पारितोषिक स्वयं ले आता है और उत्तम जीवन व्यतीत करने के लिए किये जानेवाले सच्चे प्रयत्नों के बदले में प्राकृतिक पारितोषिक के रूप में विश्वास, दृढ़ निश्चय तथा उत्तरदायित्व-पूर्ण पदों की प्राप्ति होती है। इस प्रकार के पारितोषिक—जैसे आचरण के पारितोषिक—देना सदा ही बुरा है। सदाचरण उस दशा में सदाचरण नहीं रह जाता, जब कि वह घूसखोरी का परिणाम बन जाता है और इस प्रकार के पारितोषिकों का एकमात्र परिणाम यह होता है कि विद्यार्थी (इसके पानेवाले विद्यार्थी) स्वयं अपने ऊपर गर्व करने लगते है।

स्वायत्त शासन

अभी तक हम अनुशासन के नकारात्मक पक्ष की चर्चा करते रहे हैं, तो भी इससे हमारा ज्यादा मतलब नहीं; हमारा मुख्य सम्बन्ध तो है (अनुशासन के) विधेयात्मक पक्ष से। पाठशाला मे विधेयात्मक एवं रचनात्मक अनुशासन का निर्माण करने के लिए और उस आत्म-नियत्रण को, जो अनुशासन का यथार्थरूप है, शिक्षा देने के लिए स्वायत्त शासन प्रणाली का सहारा लेना सबसे उत्तम मार्ग है। विद्यार्थी आत्म-नियत्रण का पाठ उसके विषय में दूसरों से सुनकर नहीं पढ़ेंगे, वरन् अभ्यास करते-करते आप ही उसको सीख लेंगे। स्वायत्त शासन-प्रणाली के द्वारा, जैसा उसके नाम से ही विदित होता है, उन्हें ऐसा करने का अवसर प्राप्त हो जायगा।

यदि हम अंग्रेजी बोलने तथा लिखने का अभ्यास करने की चेष्टा न करें तो हम इस बात की आशा नहीं कर सकते कि हमको अंग्रेजी बोलना या लिखना आ जायगा। जब तक हम काम करने के लिए मिलनेवाले सुयोगों का उपयोग नहीं करते, तब तक चरित्र-निर्माण की आशा नहीं कर सकते। यदि हमारी अभिलाषा है कि

हमारे विद्यार्थी उत्तम चरित्र के और अच्छी आदतोंवाले बनें तो हमको चाहिए कि जिस प्रकार हम उनको अंग्रेजी बोलने के लिए अवसर प्रदान करते हैं, ठीक उसी तरह से उनको ऐसे मौक़े दें, जब कि वे सीखी हुई बातों पर अमल और उनका अभ्यास कर सकें। इसके अतिरिक्त यह कार्य आत्म-संचालित, आत्म-आदेशित तथा आत्म-स्वीकृत होना चाहिए। यदि प्रधान अध्यापक और अध्यापक-वर्ग बिना किसी परेशानी के अपने विद्यार्थियों के ऊपर अपनी इच्छाएँ लाद सकते हैं और उनसे अपने आदेशों का तत्काल पालन करवा सकते है, तो बहुधा यह कहा जाता है कि पाठशाला का अनुशासन अच्छा है। तो भी वास्तव में अनुशासन इसको नहीं कहना चाहिए, यह तो दासता का एक रूप है—मन और इच्छा की दासता। आत्म-अनुशासन के बिना सच्चा अनुशासन किसी प्रकार नही हो सकता।

इन दिनों, जब कि दुनिया के तमाम देश प्रजातांत्रिक ढंग की शासन-प्रणाली को पसंद करते हैं, जब प्रजातंत्रवाद की परीक्षा की जा रही है और कुछ जगहों में वह कुछ विशेष सफल होते हुए नहीं दिखाई दे रही है, हमारी पाठशालाओं को विद्यार्थियों के लिए ऐसे व्यावहारिक सुअवसर प्रदान करने चाहिए जिनके ज़रिये वे यह सीख सकें कि अपने-आप अपना शासन किस प्रकार किया जाय, अपने-आप किसी चीज़ का आरम्भ कैसे किया जाय, अपने-आप निर्णय और आलोचना कैसे की जाय, अच्छे और बुरे का विचार करके निर्णय किस प्रकार किया जाय, और क़ानूनों तथा नियमों का सम्मान कैसे हो। पाठशाला में स्वायत्त शासन एक ऐसा प्रयास है, जिसके जरिये विद्यार्थियों को यह सब करने के योग्य बनाया जा सकता है और उनको ऐसे सुअवसर प्रदान किये जा सकते हैं कि वे उस वास्तविक अनुशासन को सीख सकें, जिसको सीखना अन्य प्रकार से दुर्लभ है।

स्वायत्त शासन की विभिन्न प्रणालियां हैं, जिनकी स्थापना की जा सकती है। यहां पर मैं केवल एक प्रणाली का वर्णन करूँगी, जिसको पर्याप्त मात्रा में सफलता प्राप्त हो चुकी है और यह दिखाई पड़ जायगा कि वे सिद्धान्त कौन से हैं, जो इस प्रकार की सभी पद्धतियों में निहित हैं।

प्रत्येक कक्षा में एक समिति होती है। प्रत्येक समिति में चार सदस्य होते हैं। पाठशाला में चार भवन होते हैं, जो लम्बाकार बँटे रहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक कक्षा में चारों भवनों के सदस्य होते हैं। समिति में प्रत्येक भवन का एक प्रतिनिधि होता है।

उसका विर्वाचन कक्षा में होनेवाले भवन के सस्दयों द्वारा होता है। समस्त कक्षाओं की समितियों पर होनेवाले भवन-विशेष के सदस्यों को मिलाकर भवन-समिति बनती है और सीनियर कक्षा-समिति का सदस्य, जो उस भवन का भी सदस्य होता है, भवन का कप्तान कहलाता है।

समस्त भवनों की समितियों को एक साथ मिलाकर सामान्य समिति का निर्माण होता है। इस सामान्य समिति में कई एक पदाधिकारी होते हैं, जो कार्यकारिणी बनाते हैं। सभापति और उपसभापति का निर्वाचन पूरी पाठशाला के वोट से होता है। सामान्य समिति की बैठकें नियमित रूप से होती रहती हैं। महीने में एक बार नियमित रूप से पूरी पाठशाला के लिए भी बैठकें होती रहती हैं। पाठशाला की ओर से संविधान तैयार करके छपवा लिया जाता है और इसी सविधान के अनुसार सब काम किया जाता है।

प्रत्येक कक्षा-समिति में एक सभापति होता है, जो कक्षा के कार्य का पूरा भार संभालता है। एक साहित्यिक सदस्य, जो कक्षा-पत्रिका का सम्पादक होता है, और जिसको अन्य किसी ऐसी साहित्यिक योजना का, जिसकी जिम्मेदारी कक्षा की ओर से ली गई है—जैसे एक नाटक करवाना—पूरा भार अपने ऊपर लेना पड़ता है। खेल का सदस्य, जो खेल-कूद के सभी मामलो का जिम्मेदार होता है। स्वच्छता-सदस्य, जो कक्षा तथा कक्षा के सदस्यों की सफ़ाई मे सम्बन्धित सभी मामलों की देख-रेख करता है। ये कक्षा-समितियां कक्षा के सदस्यो की अनुशासन-सम्बन्धी बातो का भी प्रबन्ध करती है। कक्षा के वे सदस्य, जो किसी प्रकार का अपराध करते हैं, समिति के सामने पेश किये जाते हैं। समिति मामले का फ़ैसला करती और दंड देती है। यदि शारीरिक दंड-जैसा कठोर दड देना होता है, तो उस दंड को देने के लिए प्रधान अध्यापक के पास सिफ़ारिश भेज दी जाती है। हाँ, यदि प्रधान अध्यापक चाहे तो वह अपनी विवेक-बुद्धि का प्रयोग कर सकता है और अपने सुझावों सहित उस मामले को समिति के पास वापस भेज सकता है। अपराधी सदैव सामान्य समिति के पास अपनी अपील भेजता है; पर गभीर मामलो में यह अपील समस्त पाठशाला की बैठक के सम्मुख पेश की जाती है। ऐसे मामले, जिनमें अपील इतनी दूर तक की जाय, कम ही होते है। यदि अध्यापक को यह लगता है कि अनुशासन-सम्बन्धी कारंरवाई करनी ज़रूरी है, तो वह दोष (charge) तथा कारणों सहित मामले को समिति के सामने रख

देता है। तब समिति मामले की जांच-पड़ताल करती है। कभी-कभी तो अपराधी बड़े सस्ते मे ही छूट जाते हैं। अवसर कठोरता (दंड) के सम्बन्ध में समिति के निर्णय ग़लत ठहरते हैं।

ऐसे मामलों में, जहां विद्यार्थी के अत्यधिक पतन के कारण परिस्थिति बड़ी भयंकर हो उठती है और मनोवैज्ञानिक ज्ञान तथा चिकित्सा आवश्यक हो जाती है, अपराधियों से निबटने का अधिकार प्रधान अध्यापक के लिए छोड़ दिया जाता है। ऐसे मामले समितियों के सामने नहीं रखे जाते और न ही वे समितियां उनके सम्बन्ध में जांच-पड़ताल करना ही चाहती हैं।

प्रत्येक कक्षा-समिति अपनी कार्यवाही का ब्योरा रखती है। सामान्य समिति तथा कार्यकारिणी-समिति को भी इसी प्रकार अपनी कार्यवाही का ब्योरा रखना पड़ता है। जो संविधान बनाया जाता है, उसके अन्तर्गत विभिन्न समितियों के अधिकारों की व्याख्या कर दी जाती है। समितियों को अधिक-से-अधिक जितनी ज़िम्मेदारी देना सम्भव हो सकता है, उतनी दे दी जाती है और प्रणाली के सक्रिय संचालन मे अधिक-से-अधिक जितने विद्यार्थी लग सकते है, लगा दिये जाते है। प्रणाली के सचालन मे अधिक-से-अधिक जितने विद्यार्थियों को कुछ-न-कुछ काम सौंप दिया जाता है, प्रणाली की सफलता की आशा उतनी ही अधिक बढ़ जाती है और वह उतनी ही अधिक लाभदायक हो जाती है।

यह नहीं सोचना चाहिए कि इस प्रकार की प्रणाली निर्विघ्न रूप मे चलती रहेगी और अनुशासन-सम्बन्धी सारी कठिनाइयां जादू से दूर हो जायेंगी। अनुशासन स्थापित करने के लिए अपनाई जानेवाली इस विधि को चलाना उस पुरानी चाल के तरीक़े से कहीं ज्यादा मुश्किल है, जिसके अन्तर्गत लगातार कई एक नियम तथा आदेश जारी करके सत्ता ऊपर से लाद दी जाती है। पर यह कठिन भले ही हो, तब भी विद्यालय में वास्तविक अनुशासन स्थापित करने के लिए किसी ऐसी ही विधि का, जो ऊपर बताई हुई विधि की तरह हो, प्रयोग करना ज़रूरी है। वे कतिपय कठिनाइयां, जो सामने आयेंगी नीचे बताई जाती हैं:—

(१) अध्यापकों तथा प्रधान अध्यापकों को भी यह काम बड़ा कठिन जान पड़ता है कि समितियों के हाथ में सत्ता दे दी जाय। उनको ऐसा लगता है कि विद्यार्थियों द्वारा किये गये निर्णयों के अनुसार कार्य करने और आनेवाले मामलों का फ़ैसला अपने-आप

कर लेने के बजाय उन मामलों को समितियों के पास भेज देने से उनकी इज्ज़त घट जाने का डर है। इस विषय पर जूनियर अध्यापक विशेषरूप से चिढ़ जाते हैं, क्योंकि वे ऐसा समझते हैं कि उनकी स्थिति सीनियर अध्यापकों की अपेक्षा अधिक डावाँडोल है। विद्यार्थीगण भी स्थिति को कुछ सरल नहीं बना देते, विशेषरूप से आरम्भ में। जब इस प्रकार की पद्धति का श्रीगणेश होता है, तब विद्यार्थीगण, जैसा स्वाभाविक ही है, इस प्रकार की हुकूमत के आदी न होने के कारण ऐसे ढंगों से उसको सत्ता दिखाने की चेष्टा करते हैं कि अध्यापकों को क्लेश होता है और कभी-कभी परेशानी पैदा हो जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि आरम्भ में सचमुच इस प्रकार की कठिनाई होती है, पर साथ-ही-साथ इसमें भी सन्देह नहीं कि जैसे-जैसे समय बीतता जाता है और पाठशाला इस प्रणाली का प्रयोग करने की आदी हो जाती है, वैसे-वैसे यह कठिनाई क़रीब-क़रीब दूर हो जाती है। अध्यापकगण तथा विद्यार्थी, दोनों ही आनेवाले मामलों का नये ढग से मुक़ाबला करने के आदी हो जाते हैं और दोनों के बीच में किसी प्रकार की तनातनी नहीं रह जाती।

दूसरी तमाम बातों की ही तरह, यहां पर भी कठिनाई की मात्रा आरम्भ तक में बहुत-कुछ इस बात पर निर्भर रहती है कि अध्यापक तथा विद्यार्थी के पारस्परिक सम्बन्ध कैसे हैं। यदि यह सम्बन्ध अच्छा है और दोनों के बीच मित्रता और सह-योगिता है तो कठिनाई की मात्रा बहुत कम होगी। यदि अध्यापक भय दिखाकर काम लेने का आदी रहा है, तब तो इस परिवर्तन के समय में अध्यापक और प्रधान अध्यापक, दोनों को निश्चय ही पर्याप्त कौशल से काम लेना पड़ेगा। फिर भी यह काम सफलता-पूर्वक किया जा सकता है, बशर्ते कि ऐसा करने के लिए सचाई के साथ प्रयत्न किया जाय। जैसा पहले कहा जा चुका है, इस सम्बन्ध में मुख्य कठिनाई जूनियर अध्यापकों के साथ होती है। प्रधान अध्यापक को उनके तथा उनके साथ विद्यार्थियों के बीच होनेवाले पारस्परिक सम्बन्ध को सावधानी के साथ देखते और पर्याप्त मात्रा में सहायता देते रहना चाहिए। कभी-कभी अध्यापक सक्रिय रूप में स्वायत्त शासन का विरोध करते हैं। यदि ऐसा मामला हो और यदि समस्त अध्यापक-मंडल यह समझता हो कि प्रयोग किया जाना चाहिए, तो उन लोगों के लिए, जो इसके विरुद्ध हैं, यह ज़रूरी है कि वे भक्तिपूर्वक इसमें सहयोग दें और अपनी सामर्थ्य भर उसको सफल बनाने की चेष्टा करें और नहीं तो समुदाय में रहना उनके लिए कठिन हो जायगा।

(२) जैसा पहले बताया जा चुका है, समितियां प्रायः अपने दंडों की कठोरता के सम्बन्ध में ग़लतियां करेंगी। जब पहले-पहल योजना कार्यान्वित की जाती है, तब यह चीज़ ज़्यादा दिखाई देती है। जब विद्यार्थी अपने काम के आदी हो जाते हैं और सारी चीज़ें एक स्तर-विशेष पर आ जाती हैं, तब यह ख़तरा इतना ज़्यादा नहीं रहता; पर कुछ-न-कुछ रहता तो हमेशा ही है। ऐसे मामलों में प्रधान अध्यापक सम्बन्धित समिति के पास अपने सुझावों सहित मामले को फिर से वापस भेज सकता है। ऐसा बहुत कम होता है कि समिति अपने निर्णय को बदलने से इनकार कर दे।

(३) साथ-ही-साथ उन सभी लोगों के लिए, जो इस प्रकार की पद्धति से सम्बन्ध रखते हों, यह बहुत ज़रूरी है कि वे इस बात के लिए बहुत सतर्क रहें कि उनसे कोई काम ऐसा न हो जाय, जिससे विद्यार्थियों के मन में यह विचार उठे कि वे यथार्थ नहीं हैं, वे लोग जो कुछ करते हैं वह सिर्फ़ रस्मी तौर पर करते हैं और उनके पास वास्तविक शक्ति बिलकुल नहीं है। इस प्रकार किसी भी पद्धति की सफलता समस्त प्रबन्धों को करने की वास्तविकता पर निर्भर रहती है। ऐसी प्रणाली का आरम्भ करने से कोई लाभ नहीं, जिसमें दिखाव में तो विद्यार्थियों को अपने मामलों का प्रबन्ध करने का अधिकार और स्वतंत्रता दोनों ही हों, पर मौक़ा पड़ने पर न तो उन्हें निर्णय करने की आज्ञा मिले और न ही वे अपने किये हुए निर्णयों को कार्यरूप में परिणत कर सकें। विद्यार्थियों के प्रतिनिधियों को वास्तविक अधिकार देने के लिए प्रधान अध्यापक तथा शिक्षक-वर्ग को तैयार रहना चाहिए और जो-कुछ किया जाता है उसमें उनको कम-से-कम हस्तक्षेप करना चाहिए। कभी-कभी, जैसा पहले कहा जा चुका है, मामलों को समिति के पास वापस भेज देना ज़रूरी होगा, लेकिन ऐसा बहुत कम करना चाहिए। लगातार हस्तक्षेप करते रहने की अपेक्षा यह ज़्यादा अच्छा है कि ऐसा काम होने दिया जाय, जो कदाचित् बहुत विवेकपूर्ण न हो। विद्यार्थीगण अपनी ग़लतियों से ही सीखेंगे। स्वायत्त शासन की किसी भी योजना को चलाने में प्रायः यह चीज़ सबसे ज़्यादा मुश्किल होती है; परन्तु सफलता प्राप्त करने के लिए विश्वास और सच्चा उत्तरदायित्व देना बहुत आवश्यक है। इस प्रकार की योजनाओं के सम्बन्ध में जिस प्रकार और बहुत-सी कठिनाइयां होती हैं, उसी प्रकार यह कठिनाई भी शुरू में सबसे ज़्यादा होती है। जैसे-जैसे समय बीतता जायगा, यह कठिनाई भी घटती जायगी।

(४) यदि सावधानी के साथ स्वायत्त शासन प्रणाली के ऊपर नज़र नहीं रखी जाती, तो जो सबसे बड़ा भय है, वह यह कि वह केवल दंड देने की एजेंसी न बन जाय और संकुचित अर्थ में अनुशासन की स्थापना न करने लग जाय। निश्चय ही यह चीज बड़ी बुरी है और इसीलिए पक्की तौर से यह मालूम कर लेना बहुत जरूरी है कि दंड देना समितियों की अनेक क्रियाओं में से केवल एक क्रिया है। दूसरी ओर स्वच्छता, विद्यालय के मैदान को, कक्षा-भवनों को एवं छात्रावास को सुन्दर बनाना तथा सामान्य रूप से उनकी रक्षा करना समिति के कार्य की एक ऐसी शाखा है जिसके ऊपर बहुत जोर देना चाहिए। इन चीज़ों के प्रबन्ध उन्हीं के हाथ में रहना चाहिए। प्रतिदिन नियमित रूप से खेले जानेवाले खेलों, आन्तरिक दंगल (house tournament), कक्षाओं के बीच होनेवाले मैचों और खेल के सामान की देख-भाल का काम समितियों के हाथ में होना चाहिए। जैसा पहले बताया जा चुका है, किसी प्रकार की भी साहित्यिक योजना का भार समितियों के ऊपर ही होना चाहिए। समितियों के कार्य में जितनी ही अधिक विभिन्नता होगी, योजना की वास्तविक सफलता एवं स्वयं विद्यार्थियों के लिए उतना ही ज़्यादा अच्छा होगा। चाहे जैसे भी हों, इस विचार को दूर ही रखना चाहिए कि यह अध्यापकों के लिए केवल दंड देने के प्रति होनेवाली अरुचि से बचने और उस बोझ को विद्यार्थियों के सिर डाल देने का मार्ग है।

(५) कभी-कभी सीनियर विद्यार्थी इस बात का उलाहना देते हैं कि इस प्रकार की योजना को चलाने का मतलब यह है कि वे तमाम फालतू काम करें। कभी-कभी वे इसी कारण पद को स्वीकार करना नहीं चाहते। मैट्रिकुलेशन कक्षा में यह बात विशेषरूप से दिखाई पड़ती है। इसमें संदेह नहीं कि इस प्रकार की योजनाओं को चलाने में विद्यार्थियों को अपना समय और शक्ति दोनों ही लगाने पड़ते है जिनकी मामूली तौर से आवश्यकता नहीं पड़ा करती। उनको यह बताया जा सकता है कि पाठशाला में मिलनेवाला प्रशिक्षण केवलमात्र उन पाठों तक सीमित नहीं, जो उन्हें पढ़ाये जाते है, और इस कार्य में उन्हें जो शिक्षा मिलेगी, वह प्रायः पाठशाला छोड़कर जाने के बादवाले जीवन में उन तमाम कामों की अपेक्षा, जो उन्हें परीक्षा पास करने के लिए करने हैं, कहीं अधिक लाभदायक सिद्ध होगी। साथ-ही-साथ ऐसे प्रबन्ध करने चाहिए तथा संविधान इस प्रकार का बनना चाहिए कि काम अधिक-से-अधिक

विद्यार्थियों में बँट जाय, ताकि सारा बोझ एक या दो के कंधों पर न पड़ने पावे। उस योजना की, जिसकी रूप-रेखा ऊपर दी जा चुकी है, विशेषरूप से सामान्य समिति के सम्बन्ध में यह आलोचना की जाती है कि वह बहुत भारी है। यह तो स्वीकार किया जा सकता है, परन्तु यह योजना यद्यपि कुछ हद तक भारी भरकम ज़रूर है, तथापि इसका उद्देश्य है—योजना को चलाने के लिए अधिक-से-अधिक विद्यार्थियों को लगाना और इस प्रकार कार्य का अधिक-से-अधिक विभाजन करना। स्वायत्त शासन के किसी भी अंग के सम्बन्ध मे जितने अधिक विद्यार्थी सक्रिय रूप से कार्य करेंगे, योजना के लिए उतना ही ज़्यादा अच्छा होगा और पाठशाला तथा विद्यार्थियों को उतना ही अधिक लाभ होगा।

(६) दूसरी कठिनाई, जिसकी सम्भावना हो सकती है और जो एक वास्तविक कठिनाई है, यह है कि जो पदाधिकारी चुने जाते है, विशेषरूप से वह विद्यार्थी जो सभापति के पद पर चुना जाता है और पाठशाला का मुखिया होता है, वास्तव मे अपने पद के लिए उपयुक्त न हो। यह बहुधा होता है। तब प्रधान अध्यापक के सामने यह समस्या पैदा होती है कि वह क्या करे—चुनाव को रद कर दे, या अयोग्य पदाधिकारियों से सम्भवतः जितना अच्छा-से-अच्छा काम करवा सके, करवाने की चेष्टा करे। मामूली तौर से सर्वोत्तम योजना यही है कि बुरे को अच्छे-से-अच्छा बनाया जाय। पाठशाला अनुभव से सीखेगी, और यदि सभापति वास्तव मे अपने पद के लिए ठीक नही है तो यह बात सभी को स्पष्टरूप से दिखाई पड़ जायगी। अगली बार वे चुनाव के समय अधिक सावधान हो जायंगे। इस कठिनाई को कम करने के लिए एक उपाय यह हो सकता है कि चुनाव वर्ष मे एक बार करने के स्थान पर हर छः महीने मे या सम्भव हो तो तिमाही मे एक बार कर दिया जाय। उस हालत मे यदि ऐसे लोग, जो अपने पद के लिए उपयुक्त नही है, चुन भी लिये जाते है तो वे अपने पद पर केवल थोड़े ही समय तक रह सकेंगे और ज़्यादा नुक़सान न हो पायेगा। चुनाव को रद करने में सबसे बड़ा खतरा इस बात का है कि विद्यार्थियों को पूरी व्यवस्था के प्रति अविश्वास पैदा हो जायगा और यदि ऐसा किया जाता है तो उनकी सारी रुचि चली जायगी। सच बात तो यह है कि ऐसे प्रतिनिधियों को चुनना, जो अपने पद के लिए उपयुक्त नहीं हैं, एक ऐसी स्थिति है जो किसी भी प्रजातांत्रिक पद्धति के भीतर पैदा हो सकती है और पैदा होती है, और जो विद्यार्थियों के लिए

स्वमेव एक अच्छी शिक्षा है। संसार के विस्तृत जीवन में क्या होता है, इस बात का उन्हें यथार्थ अनुभव प्राप्त होता है और उन्हें एक ऐसी शिक्षा मिलती है, जिससे उन्हें बाद में लाभ हो सकता है।

(७) दूसरी कठिनाई यह है कि विभिन्न कक्षाओं की विभिन्न समितियां अपने उत्तरदायित्व नहीं समझतीं। वे हर बात को यों ही टालने की कोशिश करती है। यह स्वाभाविक भी है, विशेषरूप से आरम्भ में जब कि एक ऐसी प्रणाली के स्थान पर, जिसके अन्तर्गत संगठन-सम्बन्धी समस्त अनुशासन तथा आरम्भिक शक्ति एवं प्रबन्ध विद्यालय के अधिकारी-वर्ग के हाथ में थे, एक ऐसी पद्धति की स्थापना की जा रही हो, जहां इनमें से अधिकांश अधिकार विद्यार्थियों को सौंप दिये गये हों। साथ-ही-साथ कुछ समितियों द्वारा दिखाई जानेवाली इस प्रकार की ढिलाई एक वास्तविक कठिनाई है, और लगातार इस चीज़ का अनुभव किया जा रहा है। यह भय उसी हालत मे दूर किया जा सकता है जब कक्षाओं तथा भवनों के अध्यक्ष-अध्यापक बराबर इस बात की निगरानी करते रहें कि समितियां अपना कार्य कर रही है और नियमित रूप से उनके साथ सलाह-मशविरा करती रहती हैं। समितियों के कार्य का निरीक्षण होना चाहिए। आरम्भ में तो उनकी हरएक बात का निरीक्षण होना चाहिए; पर धीरे-धीरे उसमें कुछ कमी की जा सकती है, यद्यपि उसकी आवश्यकता सदैव ही रहेगी, विशेषरूप से छोटी कक्षाओं मे।

ये है कुछ कठिनाइयां, जो शायद सामूहिक रूप मे एक भीषण रूप धारण कर लेती है। परन्तु ये सारी ही कठिनाइयां ऐसी है जो आवश्यक कौशल, धैर्य तथा दीर्घ प्रयास के साथ-साथ सम्यक् प्रवृति के द्वारा दूर की जा सकती हैं। यद्यपि कठिनाइयां बहुत है, और ऐसी है जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, पर दूसरी ओर लाभ भी बहुत अधिक है। इसी प्रकार की किसी प्रणाली के ज़रिये ही सच्चे अनुशासन का प्रतिपादन किया जा सकता है और वास्तविक चरित्र का निर्माण हो सकता है। उत्तर-दायित्वों को ग्रहण करने तथा संभालने की क्षमता का विकास उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर रहकर यथार्थरूप में अभ्यास करने से ही होता है। हमारे नवयुवकों को स्वायत्त-शासन की पद्धति से मिलनेवाली शिक्षाओं की जितनी अधिक आवश्यकता है, उतनी शायद हमारी पाठशालाओं में मिलनेवाली किसी भी चीज़ की नहीं।

उत्तरदायित्व मिल जाने से विद्यार्थीगण अपने लिए विचार करना, वे क्या

कर रहे हैं इस बात को समझना, निर्णय करने के पूर्ण प्रमाण का मूल्य आँक लेना, निश्चय करना और अपने निश्चयों को कार्यरूप में परिणत करना, कार्य-भार लेना और उसको पूरा करना, पहले से योजना बनाना और प्रबन्ध करना, व्यवस्था करना तथा आकस्मिक घटनाओं का सामना करना सीख जाते हैं। इस प्रकार वे निर्भर रहने के योग्य तथा विश्वसनीय बन जाते हैं।

इस प्रकार की योजना से विद्यार्थियों में इस बात की सामर्थ्य पैदा हो जाती है कि वे नियमों के औचित्य को देख सकें और अच्छी तरह से यह समझ सकें कि वे किस लिए हैं और क्यों बनाये गये हैं। वे विद्यार्थियों के अपने नियम हैं, जिनको उन्होंने स्वयं आवश्यक समझा था। इस तरह से उनमें उत्तदायित्व की मात्रा कहीं अधिक बढ़ जाती है और वे यह अनुभव करने लगते हैं कि पाठशाला में उनका वास्तविक भाग है और वे यथार्थ में उसके कल्याण के लिए उत्तरदायी हैं। यदि इस प्रकार की पद्धति से काम लिया जा रहा हो तो प्रधान अध्यापक के लिए सहयोग की प्रवृत्ति में, जो पाठशाला में प्रधान अध्यापक तथा विद्यार्थियों के बीच होनी जरूरी है, वृद्धि करना कहीं अधिक सरल हो जायगा।

स्वायत्त शासन-प्रणाली के अन्तर्गत अनुशासन आत्म-अनुशासन बन जाता है। उसका आरम्भ स्वयं विद्यार्थियों द्वारा किया जाता है और वह आत्म-प्रभावित होता है। वह बाहर से, या ऊपर से उनके ऊपर लादा नहीं जाता। इसी कारण इस प्रकार की पद्धति के अन्तर्गत प्राप्त होनेवाला अनुशासन उस अनुशासन की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा है जो साधारणतया प्राप्त किया जाता है।

यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इस प्रकार की स्वायत्त शासन-प्रणाली, जिसका वर्णन हम करते आये हैं, हर प्रकार के अध्यापकों अथवा हर एक प्रधान अध्यापक द्वारा कार्यान्वित नहीं हो सकती, इसलिए तो ऐसे गुणों का होना आवश्यक है, जो हम सबमें नहीं होते।

कुछ लोगों को इस प्रकार की प्रणाली का प्रयोग करने पर भी अपनी पाठशाला में किसी प्रकार की उन्नति होती हुई नहीं दिखाई देती। प्रायः एक अध्यापक के लिए, जो यह समझता है कि वह इस प्रणाली को उस तरह से चलाने में असमर्थ है जिस तरह से वह चलाई जानी चाहिए, ज्यादा अच्छा यही है कि वह उसको बिलकुल छोड़ दे, हालाँकि किसी काम को सिर्फ़ इसलिए न करना कि वह कठिन है, उचित नहीं।

साधारण रूप मे हमारी यह प्रवृत्ति होती है कि हम कठिन कार्यो को करने के लिए प्रयास न करने के बहाने ढूंढ़ निकालें। इस प्रकार की किसी-न-किसी प्रणाली को चलाने के लिए चेष्टा करनी चाहिए, परन्तु जहां यह मालूम पड़े कि प्रधान अध्यापक या अध्यापकगण यथार्थ मे स्वभाव से ही उसको सफल बनाने में असमर्थ हैं, वहां तो निश्चय ही इसके लिए आग्रह न करना चाहिए। हरएक के पास आवश्यक गुण (पद्धति के लिए) नही होते और वे दूसरे उपायों से अपना योगदान (contribution) दे सकते है, परन्तु जैसा मैं कहता हूँ, किसी कठिन योजना से बचने के लिए इस विचार को बहाना नही बनना चाहिए। मेरे विचार से तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि पाठशाला इस प्रकार की योजना को अपनाये बिना आदर्श के जितना समीप पहुंच सकती है, उससे कहीं अधिक समीप वह उस दशा मे पहुँच जायगी जब कि वह योजना को अपनी सहचरी बना चुकी हो।

परम्परा और अनुशासन

पाठशाला मे परम्परा के बन जाने से अनुशासन को बड़ी सहायता मिलती है। निश्चय ही यह काम न तो एक दिन मे हो सकता है और न ही बिना सोचे-विचारे भाग्य के सहारे छोड़ देने से ही सकता है। प्रधान अध्यापक और अध्यापक-मंडल के पास उचित परम्परा का निर्णय और अनुचित परम्पराओं का, जो विद्यालय में घुस आई हो, नाश करने के लिए निश्चित रूप से आयोजित कार्यक्रम होना आवश्यक है। ऐसा करने की सर्वोत्तम विधि, बल्कि सच तो यह है कि एकमात्र विधि, है—उदाहरण और विद्यार्थियों के ऊपर उस उदाहरण का शनैः-शनैः प्रभाव। कुछ चुने हुए विद्यार्थी प्रधान अध्यापक तथा अध्यापक-मंडल के विश्वास में लिये जा सकते हैं और परम्परा की स्थापना मे उनसे बड़ी सहायता मिल सकती है। यदि पाठशाला के लगाव में छात्रावास हो तो वह एक ऐसा स्थान होगा, जहां इस मामले में ध्यान देना चाहिए। यह तो स्वाभाविक ही है कि यहां पर आचरण के आदर्श सिखाने के लिए अधिक अवसर मिलेगा। उचित प्रकार की परम्परा से जो एक बड़ी सहायता मिल सकती है, वह है—सार्वजनिक मत की शक्ति को क्रमबद्ध बनाना। यदि यह ठीक से निर्देशित हो तो उचित प्रकार का अनुशासन स्थापित करने में बड़ी सहायता

मिल सकती है। स्वायत्त शासन-प्रणाली के अन्तर्गत यह ज्यादा आसानी से हो सकता है।

प्रधान अध्यापकवाले अध्याय में हम देख चुके हैं कि प्रधान अध्यापक के लिए अपने विद्यार्थियों का व्यक्तिगत रूप से ज्ञान होना आवश्यक है। यह विशेषरूप से उन मामलों में ज़रूरी है जहां अनुशासन का अतिक्रमण उग्र रूप से किया गया हो।

प्रधान अध्यापक को आधुनिक मनोविज्ञान का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए, पर साथ-ही-साथ रोग-निदान-सम्बन्धी (pathological) मनोविज्ञान का भी कुछ ज्ञान होना आवश्यक है। प्रायः अनुशासन का उग्र रूप में अतिक्रमण रोग-निदान से सम्बन्धित होता है, और उसका उपचार बड़ी सावधानी के साथ करने की आवश्यकता होती है। यदि प्रधान अध्यापक स्वयं मामले को संभालने में असमर्थ हो तो उसको किसी ऐसी सहायता के लिए प्रार्थना करने में कोई लज्जा न होनी चाहिए जो उसे (मौके पर) मदद दे सके, चाहे वह सहायता अपने सहायक अध्यापकों में से किसी से मिले और चाहे किसी बाहरी आदमी से। इस प्रकार के प्रत्येक मामले का इलाज व्यक्तिगत रूप से होगा। उपचार के सम्बन्ध में किसी प्रकार की कठोरता न होनी चाहिए। ये ऐसे मामले हैं जिनमें मामूली विद्यार्थियों के लिए बनाये जानेवाले नियम लागू नहीं होते और ऐसे मामलों में प्रधान अध्यापक को भी अपने को इन नियमों से बद्ध न समझना चाहिए।

सम्बन्धित विद्यार्थी के परिवार तथा व्यक्तिगत इतिहास की सावधानी के साथ जांच-पड़ताल कर लेने के बाद अच्छी-बुरी जो कुछ बातें मालूम हों, उन्हीं के आधार पर व्यवहार करना चाहिए, और यदि सम्भव हो, तो किसी प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिक से परामर्श ले लेना चाहिए।

अध्याय ४

पाठशाला का संसृष्ट जीवन
(The Corporate Life of the School)

जैसे-जैसे बच्चा पाठशाला में बढ़ता है, वैसे-वैसे उसे यह सीखते रहना चाहिए कि समाज की सदस्यता के क्या अर्थ हैं; और उसकी मांगें तथा सुविधाएँ क्या हैं। यह कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो निर्धारित पाठों के द्वारा सिखाई जा सके। यह तो एक ऐसी वस्तु है, जिसको वह समाज में जन्म लेकर और उस समाज का एक सदस्य बनकर रहने से सीखता है। बच्चा इस पाठ को, जो उसके भावी जीवन के लिए इतना अधिक महत्त्वपूर्ण है, पाठशाला के संसृष्ट जीवन में प्रवेश करते ही सीख लेता है। जैसे-जैसे वह इस बात का अनुभव करता जाता है कि वह एक ऐसे समाज का अंग है, जिसकी अपनी निश्चित परम्पराएँ हैं, अपने आदर्श हैं, अपनी प्रतिष्ठा है, अपनी एक ऐसी प्रवृत्ति भी है जो उन सबके ऊपर एक छाप लगा देती है, जो उस पाठशाला से होकर गुज़रते हैं, वैसे-वैसे वह उस जीवन में लीन होता जाता है, उसमें भाग लेने लगता है उसके प्रति अपना योगदान करता है और स्वयं उससे लाभ उठाता है। अपने पाठशाला के जीवन में उसे यही काम करना भी चाहिए। वह निश्चय ही ऐसा कर सकता है, पर शर्त यह है कि पाठशाला में संसृष्ट जीवन हो।

जो प्रभाव हम चाहते हैं, वह सब एकदम से नहीं आता। विद्यार्थी पाठशाला के संसृष्ट जीवन में धीरे-धीरे प्रवेश करता है। वह पहले अपनी कक्षा के समाज से उसकी रुचियों सहित अपने भवन के समाज में प्रविष्ट होता है और उसके बाद पाठशाला के विस्तृत समाज में प्रवेश पाता है। और पाठशाला के सामाजिक जीवन में उसका प्रवेश पाना बाहर जाकर विश्व के सम्पूर्ण सामाजिक जीवन में प्रविष्ट होने की तैयारी है।

अपने विद्यार्थियों से हम आशा भी यही करते हैं, परन्तु हम केवल इस बात का निश्चय ही करके कि हम अपनी पाठशाला में सामाजिक प्रवृत्ति अथवा संसृष्ट जीवन का निर्माण करना चाहते हैं अथवा कर चुके हैं, इन दोनों की उत्पत्ति नहीं कर सकते। हम अपने विद्यार्थियों से यह नहीं कह सकते कि "तुम एक समाज हो ; तुम अपने को एक समाज समझना आरम्भ करो और इसी के अनुसार रहा करो।" पाठशाला में संसृष्ट जीवन को विकसित करना एक दीर्घकालीन व्यवहार है और स्थिर रूप से इस बात की चेष्टा करने के लिए कि हमारी पाठशाला एक वास्तविक समाज बन जाय, केवलमात्र ऐसे व्यक्तियों का एक समूह न रहे जो प्रतिदिन कुछ घंटों के लिए एकत्र होते हों, हमको निश्चित उपायों का प्रयोग करना पड़ेगा। यदि संसृष्ट जीवन का निर्माण करना है, तो सावधानी के साथ उसकी देख-रेख एवं रक्षा करनी होगी।

सबसे ज़रूरी चीज़ है—अध्यापक-मंडल के सदस्यों के बीच तथा प्रधान अध्यापक एवं अध्यापक-मडल् के बीच मित्रता और समाज की भावना। यदि उनमें मेल है और वे पारस्परिक निर्भरता, सुविधाओं तथा उत्तरदायित्वों को समझते हुए एकसाथ मिलकर काम करते हैं, तो समझो कि पाठशाला में सच्चे संसृष्ट जीवन की नींव पड़ चुकी। फिर मित्रता की इस भावना तथा सामाजिक रुचि को इस प्रकार विस्तृत बना देना चाहिए कि विद्यार्थी-गण भी उसमें शामिल हो जायँ। सारी सफलता की जड़ यही है, और बिना इसके हम चाहे किसी भी उपाय का प्रयोग क्यों न करें, जिस वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं, उसको कदापि विकसित नहीं कर सकते।

परन्तु मित्रता की यह भावना आवश्यक तो ज़रूर है, तथापि अकेले काफ़ी नहीं है। समाज की भावना को व्यक्त करने के लिए, उसको साकार बनाने के लिए

और उसे फैलाव का मौक़ा देने के लिए विभिन्न प्रकार की सहायता का प्रयोग करना आवश्यक है।

इस प्रकार की सहायता में पहला स्थान है पाठशाला-संसद् का। बहुत-सी पाठशालाओं में यह अल्पकालीन बैठक के रूप में प्रातःकालीन प्रार्थना तथा धार्मिक कृत्यों के लिए होती है। चाहे धार्मिक कामों के लिए हो, और चाहे हाजिरी लेने, या घोषणा सुनाने के लिए पूरी पाठशाला की मामूली बैठक हो, फिर भी दैनिक कार्य के आरम्भ में विद्यार्थियों तथा अध्यापकों सहित पूरी पाठशाला का एक जगह एकत्र होना बड़ा महत्त्व रखता है। यदि धार्मिक अभ्यास न भी सम्भव हो, तब भी कोई-न-कोई संसृष्टि, जैसे गाना गाना, आरम्भ कर लेनी चाहिए। पाठशाला के आरम्भ में होनेवाली बैठक चाहे धार्मिक हो या न हो, पर उसमें शिष्टाचार तथा व्यवस्था का समावेश अवश्य होना चाहिए। इस प्रकार की बैठक से प्रधान अध्यापक को समय-समय पर, जब आवश्यकता हो, पूरी पाठशाला को व्याख्यान देने का अवसर प्राप्त हो जाता है और निश्चय ही उसका प्रयोग आवश्यक घोषणाएँ सुनाने के लिए भी किया जा सकता है। तो भी घोषणाओं की एक-एक प्रति सूचना-पट पर भी चिपका देनी चाहिए।

यदि पाठशाला की इस बैठक का प्रयोग धार्मिक कृत्यों के लिए नहीं किया जाता, और सच तो यह है कि यदि किया जाता है तो भी पाठशाला का गिरजाघर अथवा पूजा-गृह, जो विशेष रूप से पाठशाला के लिए अलग कर दिया गया है, और जहां पूरी पाठशाला एक साथ बैठकर उपासना कर सकती है, पाठशाला के संसृष्ट जीवन का विकास उचित मार्ग पर करने में बहुत अधिक सहायक हो सकता है। जिस पाठशाला के विद्यार्थी तथा अध्यापकगण विभिन्न धर्मों के अनुयायी होते हैं, वहां पर विद्यालय के हॉल में होनेवाली पाठशाला की बैठक का प्रयोग धार्मिक उपासना के लिए करना ही पड़ेगा। इस प्रकार की धार्मिक उपासना द्वारा, जहां तक सम्भव हो सके, सबकी आवश्यकताएं पूरी करने की चेष्टा होनी चाहिए। हमको ऐसी स्तुतियों, पाठों और प्रार्थनाओं आदि का प्रयोग करना चाहिए, जो कम-से-कम उपस्थित जनों में से किसी की भी धार्मिक चेतना को ठेस न पहुंचाये।

सामाजिक भावना को यथार्थ बनाने में सहायता पहुंचाने के लिए विद्यालय का एक विशेष भजन या संगीत, विद्यालय का एक आदर्श वाक्य (motto),

पाठशाला का झंडा, पाठशाला की अपनी विशेष पोशाक जो खास मौकों पर पहनी जा सके, और विशेष रूप से पाठशाला का अपना बिल्ला (badge)—ये सभी मूल्यवान् सहायक सामग्रियां है। इन चीज़ों से सामूहिक रूप में 'अधिकारी' होने की भावना उत्पन्न होती है, जो बहुत ज़रूरी है।

पाठशाला में वास्तविक संसृष्ट जीवन को विकसित करने का सबसे अच्छा मार्ग है—पाठशाला की योजनाएँ; अर्थात् समस्त पाठशाला—अध्यापकगण तथा विद्यार्थियों द्वारा उठाये गये निश्चित कार्य, जिनमें सब लोग भाग ले सकें। उदाहरणार्थ खुली हवा में नाट्यशाला तैयार करना और बनवाना, कमरों के बनाने में मदद करना, खेल के मैदानों को तैयार करना, पूरी पाठशाला की ओर से ग्राम्य पुनर्निर्माण अथवा प्रौढ़-शिक्षा के सम्बन्ध में किसी निश्चित कार्य का आरम्भ करना, किसी रूप में स्वयं विद्यालय की सेवा करना या उस समाज की सेवा करना जिसमें पाठशाला स्थित है, सम्यक् सामाजिक प्रवृत्ति एवं जीवन के विकास में सहायता पहुंचानेवाला अमूल्य साधन होगा। इस सम्बन्ध में हमको एक बात का सदैव स्मरण रखना चाहिए। चाहे काम ज़मीन खोदने का हो अथवा किसी दूसरी तरह का, पर वह सफल उसी दशा में होगा जब कि अध्यापकगण शाब्दिक तथा लाक्षणिक (literally & metaphorically) दोनों रूपों में अपने कोट उतारकर रख देंगे और अपने हिस्से का काम करेंगे। इस प्रकार के उदाहरण से सच्ची सामाजिक प्रवृत्ति की स्थापना करने में जितनी अधिक सहायता मिलेगी उतनी अन्य किसी उपाय से नहीं मिल सकती।

पाठशाला में होनेवाली सामाजिक प्रवृत्ति निश्चय ही सहयोग की प्रवृत्ति होनी चाहिए, इसीलिए हमलोगों को हर प्रकार के सहयोगको प्रोत्साहन देना चाहिए। इस काम को उतनी अच्छी तरह से कोई नहीं भी कर सकता जितनी अच्छी तरह से सुव्यवस्थित ढंग से चलाई जानेवाली स्वायत्त शासन-प्रणाली, जिसकी विवेचना हम पहले ही कर चुके हैं, कर सकती है। (उसके अन्तर्गत) पाठशाला का प्रत्येक सदस्य यह समझता है कि पाठशाला को चलाने में उसका भी कुछ हाथ है। वह सचमुच उसका एक अंग है और उसका भी कुछ महत्त्व है। वह यह समझता है कि उसे अपने हिस्से का काम करना है। इस प्रकार की कोई भी पद्धति पाठशाला में संसृष्ट जीवन का विकास करने में बड़ी सहायक होगी।

उस प्रश्न के दृष्टिकोण से, जिसके ऊपर हम विचार कर रहे हैं, पाठशाला के वे सब जलसे भी, जैसे पारितोषिक वितरण, पितृ-दिवस, विभिन्न प्रकार के पर्व, ऐसे समारोह जिनकी सिफ़ारिश श्री हेवार्ड (Mr. Hayward)* ने की है और जिनमें पाठशाला से सम्बन्ध रखनेवाला हर कोई भाग लेता है, लाभदायक होते हैं।

समय-समय पर समस्त पाठशाला की विशेष बैठकें होनी चाहिए। इनमें भाषण दिये जा सकते हैं, हालांकि ये बहुत जल्दी-जल्दी न होने चाहिए। ऐसा भाषण देना बड़ा कठिन है, जो छोटे-बड़े सभी को पसंद आये। इन भाषाओं की अपेक्षा जल्दी-जल्दी विभिन्न कक्षाओं अथवा भवनों की ओर से इन बैठकों के लिए कार्यक्रम तैयार किये जा सकते हैं। ये कार्यक्रम कार्य-प्रदर्शन के रूप में हो सकते है, विशेष रूप से हाथ की कारीगरी या संग्रह पर। उनके साथ-साथ इस बात की व्याख्या भी होनी चाहिए कि क्या किया गया है और विभिन्न वस्तुओं के क्या अर्थ है। इस प्रदर्शन के अतिरिक्त नाटक-पाठ, कविता-पाठ, सामूहिक वाद-विवाद, वाद-विवाद-प्रतियोगिता, बनावटी मुक़दमा—सच तो यह है कि कोई भी ऐसी चीज़, जिससे मनोरंजन हो और जो सबको रुचिपूर्ण लगे, कार्यक्रम के रूप में प्रस्तुत की जा सकती है।

यदि ऐसे अवसरों का प्रयोग पूरी पाठशाला के लिए एक साथ यह देखने के लिए किया जाता है कि उसके विभिन्न अंग क्या कर रहे हैं और क्या कर सकते हैं, तो हर एक को विद्यालय के सभी अंगों के प्रति अधिक रुचि पैदा हो जाती है और इस प्रकार विभिन्न अंगों के बीच निकटतर सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। अन्य पाठशालाओं के साथ होनेवाले मैच निस्सन्देह पाठशाला में सामाजिक प्रवृत्ति का पोषण करने में सहायक होते हैं। परन्तु उनका प्रबन्ध बड़ी सावधानी के साथ करना चाहिए। बहुधा प्रतिद्वन्द्विता की एक ऐसी विपत्तिजनक प्रवृत्ति पैदा हो जाती है जिसका प्रभाव अन्य दिशाओं में बहुत बुरा पड़ता है। दंगलों के मामले में खास तौर से ऐसा होता है। निश्चय ही मैच पाठशाला की एक योजना की तरह है, पर दोष केवल इतना है कि उसमे हर कोई भाग नहो ले सकता। अतः विद्यालय के संसृष्ट

---

* F. H. Hayward—A First Book of School Celebrations (P. S. King & Son).

जीवन को पुष्ट करने के लिए दंगलों और मैचों का प्रयोग बड़ी सावधानी के साथ करना चाहिए।

अनुशासन के ऊपर विचार करते समय हम देख चुके हैं कि परम्परा से हमको बड़ी सहायता मिल सकती है, पर अपनी परम्पराएँ हमको बनानी आप होंगी, और बनी हुई परम्पराओं को जारी रखना होगा। जो बातें सुझाई जा चुकी हैं, उनमें से कुछ सच्चे सामाजिक जीवन की परम्परा को बनाने में काम आ सकती हैं, परन्तु जैसा मैं पहले बता चुकी हूँ, यह पाठशाला में जितने भी लोग हैं उन सबके बीच होने वाली मित्रता एवं सहयोग की सच्ची प्रवृत्ति के ऊपर आधारित होना चाहिए। जब विद्यार्थी तथा अध्यापकगण एक साथ रहते हैं तो एक-दूसरे के प्रति सामाजिक प्रवृत्ति पैदा होती है। सब लोग सामान्य अनुभवों में जितना अधिक भाग लेंगे और सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति करने की चेष्टा करेंगे, संस्था का संसृष्ट जीवन उतना ही अधिक पनपेगा और विकसित होगा।

अध्याय ५

पाठ्य-क्रम

पाठ्य-क्रम की समस्यायें और उसकी बनावट इस पुस्तक के क्षेत्र से बाहर हैं। व्यवहाररूप में प्रत्येक अध्यायक और प्रत्येक प्रधान अध्यापक का कार्यक्रम निर्धारित रहता है, इसलिए मामला केवल है--जो कुछ दिया गया है उसको लेने और उसका अच्छे-से-अच्छा उपयोग करने का। साथ-ही-साथ अध्यापकों एवं प्रधान अध्यापकों के लिए यह बड़ी अच्छी बात होगी यदि वे अपनी बैठकों में और माता-पिता के संसर्ग से पाठ्य-क्रम से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन करें; क्योंकि पाठ्य-क्रम में सुधार तभी होगे, जब प्रबुद्ध लोकमत की ओर से उनके लिए माँग पेश की जायगी। जो वर्तमान पाठ्य-क्रम की दुर्बलताओं को समझ सकते हैं, उन लोगों का यह काम है कि वे इस प्रबुद्ध-मत का निर्माण करने में सहायता करें।

साथ ही पाठ्य-क्रम से सम्बन्ध रखनेवाले कुछ मामले ऐसे हैं, जो अध्यापकों तथा प्रधान अध्यापकों के कार्य-क्षेत्र के अन्दर आ ही जाते हैं। सर्वप्रथम विकल्पों (alternatives) का प्रश्न आता है। क्या पाठशाला में वैकल्पिक विषय रखने चाहिए, या उसको एक ऐसा निश्चित अध्ययन-क्रम बना लेना चाहिए, जिसमें सबके लिए समान विषय हो? इस प्रश्न का निर्णय सदैव सरलता से नहीं हो पाता।

बहुत-से मामलों में तो इसका उत्तर स्थानीय परिस्थितियों के ऊपर निर्भर रहता है। वैकल्पिक विषयों का आयोजन, जैसे अलग-अलग तीन वर्नाक्यूलर और अलग-अलग तीन शास्त्रीय भाषाएँ, बड़ा मँहगा पड़ता है। कई पाठशालाओं में तो निर्णय का दारोमदार सम्बद्ध व्यय के ऊपर होता है। विशिष्टता के इस युग में छोटी पाठशालाओं में सम्भवतः जितने कम विषय रखे जायँगे, निश्चय ही निपुणता उतनी अधिक होगी। यदि पाठशाला को केवल एक ही वर्ग के विषयों की ओर ध्यान देना है तो उसकी अध्यापन-विधि और उसकी सामान्य शिक्षा-सम्बन्धी दशाओं में निपुणता आने की ज्यादा गुंजाइश है। उन सभी वैकल्पिक विषयों का अध्यापन करने की चेष्टा करने से जो विद्यार्थियों द्वारा लिए जा सकते हैं, शक्ति एवं प्रयास का अकारण अपव्यय होता है और निपुणता में कमी आ जाने का अंदेशा पैदा हो जाता है।

जैसा पहले कहा जा चुका है, बहुत कुछ स्थानीय परिस्थितियों के ऊपर निर्भर रहता है। यदि पास-पड़ोस में एक ही पाठशाला है, तो उस हालत में जब कि वहां पर विश्वविद्यालय में पढ़ाये जानेवाले वैकल्पिक विषयों में से सम्भवतः जितने अधिक-से-अधिक विषय पढ़ाये जा सकते हैं, उनका आयोजन नहीं होता तो कभी-कभी विद्यार्थियों के साथ बड़ी कठोरता हो जाती है। फिर माँग के ऊपर बहुत-कुछ निर्भर होगा। कोई भी पाठशाला उस हालत में वैकल्पिक विषयों को खोलने का प्रबन्ध नहीं कर सकती, जब कि उनको लेनेवाले विद्यार्थियों की संख्या बहुत कम हो, और यदि वैकल्पिक विषय को लेनेवाले विद्यार्थियों की संख्या बहुत कम है, तो पाठशाला में उसको रखना कठिन हो जायगा। यदि पाठशाला एक ऐसे जिले में स्थित है, जहां विभिन्न जातियों के लोग रहते हों तो वहां पर भाषा के वैकल्प्य की माँग उस ज़िले की अपेक्षा अधिक होगी जहां के अधिकांश निवासी एक ही जाति के होंगे। दिये जानेवाले वैकल्पिक विषय उस ज़िले की जातियों की प्रकृति के ऊपर निर्भर होंगे, जहां पाठशाला स्थित है।

जहां पड़ोस में दो या दो से अधिक पाठशालाएँ हों, वहां प्रत्येक पाठशाला विभिन्न वैकल्पिक विषयों में शिक्षा प्रदान करके इस कठिनाई को दूर कर सकती है। एक पाठशाला में उर्दू हो सकती है, दूसरी में हिन्दी और तीसरी में पंजाबी। इसी तरह शास्त्रीय भाषाओं के विभिन्न विकल्प भिन्न-भिन्न पाठशालाओं में पढ़ाये जा

सकते हैं। तब वे विद्यार्थी, जो किसी विकल्प-विशेष को लेने के लिए उत्सुक हैं, उस पाठशाला-विशेष में अध्ययन कर सकते हैं, जहां वह विकल्प पढ़ाया जाता है; या एक ही साथ पास-पास स्थित होनेवाली पाठशालाओं की ओर से यह प्रबन्ध किया जा सकता है कि एक पाठशाला के विद्यार्थी दूसरी पाठशाला में उपस्थित हो सकें! जैसे—एक पाठशाला के विद्यार्थी उर्दू पढने के लिए दूसरी पाठशाला में चले जायँ और दूसरी पाठशाला के विद्यार्थी हिन्दी का अध्ययन करने के लिए पहली पाठशाला में आ जायँ। कभी-कभी छोटी जगह में या उस हालत में जब कि पाठशालाएँ एक-दूसरे के निकट हों इस प्रकार का प्रबन्ध बड़ा सन्तोषजनक होता है। आर्थिक दृष्टिकोण से भले ही इससे बहुत लाभ दिखाई पड़ें, पर यह कठिनाई का लोकप्रिय हल नहीं है। संघर्षमय जीवन व्यतीत करनेवाली दो-तीन पाठशालाओं से, जिनमें से प्रत्येक दो या तीन वैकल्पिक विषयों में शिक्षा देने का प्रबन्ध करने का निष्फल प्रयास कर रही हो, प्रत्यक्ष हानियों के होते हुए भी, पाठशालाओं के बीच होनेवाली प्रतिद्वन्द्विता और इस बात के भय से कि एक संस्था के विद्यार्थियों को प्रतिद्वन्द्वी संस्था की ओर से उचित ध्यान नहीं मिलेगा, इस प्रकार का प्रबन्ध असफल हो जाता है।

फिर भी उन जगहों में, जहां पाठशालाओं के बीच विश्वास की भावना हो, इस उपाय से बहुत-कुछ हो सकता है। सम्बन्धित पाठशालाओं की समय-सारिणी (time table) के बीच अन्योन्य सम्बन्ध स्थापित करना होगा, अर्थात् यदि वर्नाक्यूलर के विकल्पों के सम्बन्ध में सहयोग से कार्य हो रहा है, तो समस्त सम्बन्धित पाठशालाओं को एक ही समय में एक ही कक्षा को वर्नाक्यूलर का अध्यापन करना होगा; तथापि इस प्रकार का प्रबन्ध करना कठिन नहीं। यदि सम्भव हो तो आखिरी घण्टा, चाहे पाठशाला सबेरे की हो या दिन की हो, इस काम के लिए रखना ज्यादा अच्छा है, क्योंकि इस तरह से जाने-आने का समय बच जायगा। निश्चय ही इस योजना के सम्बन्ध में जो एक विरोध है, वह है—समय की बर्बादी का। पाठशालाएं एक-दूसरे से जितनी अधिक दूर होंगी, इस प्रकार की योजना उतनी ही ज्यादा कठिन हो जायगी।

कुछ सूबों में विश्वविद्यालय के नियमों के अनुसार पाठशालाएँ वैकल्पिक विषयों को खोलने के लिए बाध्य होती हैं और इन नियमों से बचना बड़ा कठिन होता है। जहां मैट्रिकुलेशन परीक्षा के लिए विज्ञान और शास्त्रीय भाषाएँ विकल्प होती हैं और

एक या दूसरे विषय को लेने से इस बात का निर्णय किया जाता है कि विश्वविद्यालय जाकर विद्यार्थी को कौन-सा अध्ययन-क्रम (course) अपनाना है, वहां पाठशालाएँ दोनों वैकल्पिक विषयों का आयोजन करने के लिए बाध्य हैं। यहां फिर, वह सब पहलेवाले विचार आ जाते हैं, परन्तु कोई भी पाठशाला, जो अपने को इस नाम से पुकारने का दावा करती है, विज्ञान को अलग नहीं कर सकती, और तब भी शास्त्रीय भाषाओं की आवश्यकता है। ऐसी हालत में पाठशाला दोनों ही विषयों को खोलने के लिए बाध्य है।

ग्रामीण पाठशालाओं में, चाहे ये मिडिल स्कूल हों या हाई स्कूल, स्वभावतः ग्राम्य विषयों की ओर अधिक झुकाव होना चाहिए, और इस प्रकार की पाठशालाओं में कृषि की शिक्षा सदैव दी जानी चाहिए। कुछ स्थानों में उन विद्यार्थियों को, जो मैट्रिकुलेशन परीक्षा के लिए 'कृषि' का विषय लेना चाहते हैं, मातृभाषा छोड़ने को बाध्य होना पड़ता है। वे कृषि और भारतीय भाषा, दोनों एक साथ नहीं ले सकते। यह हर तरह से ख़राब है, पर इसको दूर करने के उपाय हैं। एक तो यह कि विश्वविद्यालय के ऊपर दबाव डाला जाय और दूसरा यह कि स्कूल-लीविंग (school leaving) नाम की एक अन्य परीक्षा का आयोजन किया जाय, जिसमें इस प्रकार के बन्धन हों। ग्राम्य क्षेत्रों के मिडिल स्कूलों में और ग्राम्य क्षेत्रों के हाई स्कूलों के मध्यम विभागों में 'ग्राम्य विज्ञान' के सामान्य विषय के लिए जगह निकालनी चाहिए—जो कि यदि कृषि, विज्ञान, भूगोल, एक भारतीय भाषा और उचित प्रकार की पुस्तकों (readers) का प्रयोग किया जाता है, तो अंग्रेज़ी का अन्योन्य सम्बन्ध स्थापित करनेवाला केन्द्र बन सके। ग्राम्य विज्ञान के अन्तर्गत गांव की आन्तरिक मितव्ययिता, सफ़ाई, स्वास्थ्य, आचरण, गृह-सम्बन्धी मितव्ययिता, कुटीर उद्योग, कृषि, पशु-वर्द्धन, बाग़बानी, सहयोग और इसी तरह की दूसरी चीज़ें हैं। चाहे पाठ्य-क्रम के एक विषय के रूप में इस विषय, ग्राम्य, विज्ञान को पाठशाला के काम के साथ-साथ सप्ताह में चंद घण्टों से अधिक न मिल सकें तो भी यह अन्योन्य सम्बन्ध स्थापित करनेवाली एक अति सुन्दर एजेंसी का काम कर सकता है और इसकी सहायता से समस्त पाठ्य-क्रम ग्राम-पुनर्निर्माण के उद्देश्यों तथा आदर्शों से ओत-प्रोत किया जा सकता है। पाठशाला के घण्टों में ग्राम-पुनर्निर्माण की दशा में बहुत से व्यावहारिक कार्य एवं क्रिया का प्रबन्ध किया जा सकता है।

सकते हैं। तब वे विद्यार्थी, जो किसी विकल्प-विशेष को लेने के लिए उत्सुक हैं, उस पाठशाला-विशेष में अध्ययन कर सकते हैं, जहां वह विकल्प पढ़ाया जाता है; या एक ही साथ पास-पास स्थित होनेवाली पाठशालाओं की ओर से यह प्रबन्ध किया जा सकता है कि एक पाठशाला के विद्यार्थी दूसरी पाठशाला में उपस्थित हो सकें! जैसे—एक पाठशाला के विद्यार्थी उर्दू पढने के लिए दूसरी पाठशाला में चले जायँ और दूसरी पाठशाला के विद्यार्थी हिन्दी का अध्ययन करने के लिए पहली पाठशाला में आ जायँ। कभी-कभी छोटी जगह में या उस हालत में जब कि पाठशालाएँ एक-दूसरे के निकट हों इस प्रकार का प्रबन्ध बड़ा सन्तोषजनक होता है। आर्थिक दृष्टिकोण से भले ही इससे बहुत लाभ दिखाई पड़ें, पर यह कठिनाई का लोकप्रिय हल नही है। संघर्षमय जीवन व्यतीत करनेवाली दो-तीन पाठशालाओं से, जिनमें से प्रत्येक दो या तीन वैकल्पिक विषयों में शिक्षा देने का प्रबन्ध करने का निष्फल प्रयास कर रही हो, प्रत्यक्ष हानियों के होते हुए भी, पाठशालाओं के बीच होनेवाली प्रतिद्वन्द्विता और इस बात के भय से कि एक संस्था के विद्यार्थियों को प्रतिद्वन्द्वी संस्था की ओर से उचित ध्यान नहीं मिलेगा, इस प्रकार का प्रबन्ध असफल हो जाता है।

फिर भी उन जगहों में, जहां पाठशालाओं के बीच विश्वास की भावना हो, इस उपाय से बहुत-कुछ हो सकता है। सम्बन्धित पाठशालाओं की समय-सारिणी (time table) के बीच अन्योन्य सम्बन्ध स्थापित करना होगा, अर्थात् यदि वर्नाक्यूलर के विकल्पों के सम्बन्ध में सहयोग से कार्य हो रहा है, तो समस्त सम्बन्धित पाठशालाओं को एक ही समय में एक ही कक्षा को वर्नाक्यूलर का अध्यापन करना होगा; तथापि इस प्रकार का प्रबन्ध करना कठिन नहीं। यदि सम्भव हो तो आखिरी घण्टा, चाहे पाठशाला सबेरे की हो या दिन की हो, इस काम के लिए रखना ज्यादा अच्छा है, क्योंकि इस तरह से जाने-आने का समय बच जायगा। निश्चय ही इस योजना के सम्बन्ध में जो एक विरोध है, वह है—समय की बर्बादी का। पाठशालाएं एक-दूसरे से जितनी अधिक दूर होंगी, इस प्रकार की योजना उतनी ही ज्यादा कठिन हो जायगी।

कुछ सूबों में विश्वविद्यालय के नियमों के अनुसार पाठशालाएं वैकल्पिक विषयों को खोलने के लिए बाध्य होती हैं और इन नियमों से बचना बड़ा कठिन होता है। जहां मैट्रिकुलेशन परीक्षा के लिए विज्ञान और शास्त्रीय भाषाएँ विकल्प होती हैं और

एक या दूसरे विषय को लेने से इस बात का निर्णय किया जाता है कि विश्वविद्यालय जाकर विद्यार्थी को कौन-सा अध्ययन-क्रम (course) अपनाना है, वहां पाठशालाएँ दोनों वैकल्पिक विषयों का आयोजन करने के लिए बाध्य हैं। यहां फिर, वह सब पहलेवाले विचार आ जाते हैं, परन्तु कोई भी पाठशाला, जो अपने को इस नाम से पुकारने का दावा करती है, विज्ञान को अलग नहीं कर सकती, और तब भी शास्त्रीय भाषाओं की आवश्यकता है। ऐसी हालत में पाठशाला दोनों ही विषयों को खोलने के लिए बाध्य है।

ग्रामीण पाठशालाओं में, चाहे ये मिडिल स्कूल हों या हाई स्कूल, स्वभावतः ग्राम्य विषयों की ओर अधिक झुकाव होना चाहिए, और इस प्रकार की पाठशालाओं में कृषि की शिक्षा सदैव दी जानी चाहिए। कुछ स्थानों में उन विद्यार्थियों को, जो मैट्रिकुलेशन परीक्षा के लिए 'कृषि' का विषय लेना चाहते हैं, मातृभाषा छोड़ने को बाध्य होना पड़ता है। वे कृषि और भारतीय भाषा, दोनों एक साथ नहीं ले सकते। यह हर तरह से ख़राब है, पर इसको दूर करने के उपाय हैं। एक तो यह कि विश्वविद्यालय के ऊपर दबाव डाला जाय और दूसरा यह कि स्कूल-लीविंग (school leaving) नाम की एक अन्य परीक्षा का आयोजन किया जाय, जिसमें इस प्रकार के बन्धन हों। ग्राम्य क्षेत्रों के मिडिल स्कूलों में और ग्राम्य क्षेत्रों के हाई स्कूलों के मध्यम विभागों में 'ग्राम्य विज्ञान' के सामान्य विषय के लिए जगह निकालनी चाहिए—जो कि यदि कृषि, विज्ञान, भूगोल, एक भारतीय भाषा और उचित प्रकार की पुस्तकों (readers) का प्रयोग किया जाता है, तो अंग्रेज़ी का अन्योन्य सम्बन्ध स्थापित करनेवाला केन्द्र बन सके। ग्राम्य विज्ञान के अन्तर्गत गांव की आन्तरिक मितव्ययिता, सफ़ाई, स्वास्थ्य, आचरण, गृह-सम्बन्धी मितव्ययिता, कुटीर उद्योग, कृषि, पशु-वर्द्धन, बाग़बानी, सहयोग और इसी तरह की दूसरी चीज़ें हैं। चाहे पाठ्य-क्रम के एक विषय के रूप में इस विषय, ग्राम्य, विज्ञान को पाठशाला के काम के साथ-साथ सप्ताह में चंद घण्टों से अधिक न मिल सकें तो भी यह अन्योन्य सम्बन्ध स्थापित करनेवाली एक अति सुन्दर एजेंसी का काम कर सकता है और इसकी सहायता से समस्त पाठ्य-क्रम ग्राम-पुनर्निर्माण के उद्देश्यों तथा आदर्शों से ओत-प्रोत किया जा सकता है। पाठशाला के घण्टों में ग्राम-पुनर्निर्माण की दशा में बहुत से व्यावहारिक कार्य एवं क्रिया का प्रबन्ध किया जा सकता है।

दूसरी बात, जो पाठ्य-क्रम के सम्बन्ध में परम आवश्यक है, वह है—पूर्व-हाई स्कूल स्थिति (stage) की कक्षाओं में टेक्निकल विषयों का आरम्भ। यह आवश्यक है कि जहां कहीं राजकीय विभागों द्वारा निर्धारित किये गये पाठ्य-क्रम के अन्तर्गत इसके लिये स्वीकृति दी गई हो, वहां अध्यापकगण तथा प्रधान अध्यापक इस बात की भरसक चेष्टा कर लें कि उनकी पाठशाला के पाठ्य-क्रम में तरह के कुछ विषय शामिल हो जायें। आरम्भ किये जानेवाले विषय पाठशाला के ढंग पर निर्भर होंगे। यह स्वाभाविक ही है कि ग्राम्य पाठशालाओं में ग्राम्य विषय—जैसे कृषि, मुर्ग़ी और बत्तक़ आदि का पालन, पशु-पालन, कपड़ा बुनना, गांव की बढ़ईगिरी, फलों के बाग़ लगाना आदि आरम्भ किये जायें। नगर की पाठशालाओं में अधिक विस्तार के साथ बढ़ईगिरी, दर्ज़ीगिरी, जिल्दसाज़ी, कपड़े की बुनाई, धातु का काम, बिजली का काम आदि आरम्भ किये जा सकते हैं। बालिकाओं की पाठशालाओं में गृह-शास्त्र से सम्बन्धित विषयों के लिए जगह हो सकती है, परन्तु भली प्रकार से संतुलित पाठ्य-क्रम एवं ठोस शिक्षा-प्रणाली की रुचि में यह आवश्यक है कि जब कभी अवसर मिले, इस प्रकार के विषयों की संख्या बढ़ाते जाना चाहिए और प्रत्येक विद्यार्थी को इनमें से कम-से-कम एक विषय लेना चाहिए। हमारी शिक्षा-पद्धति में दस्तकारी को उचित स्थान मिलना चाहिए, पर उस नये यत्र के रूप में नहीं, जो पुराने के प्रति प्रति-द्वन्द्विता रखता हो, वरन् मानसिक अनुशासन की चक्रवत् निर्मित तथा सम्बद्ध उस प्रणाली के एक अंग के रूप में, जिसका उद्देश्य उनको एक-दूसरे के प्रति सहायक बनाना हो।*

इस तरह का टेक्निकल अथवा हाथ का काम, जो पाठशालाओं में किया जाता है, पूर्व व्यावसायिक होना चाहिए, अर्थात् मिडिल अथवा हाई स्कूल का उद्देश्य पूर्णतया प्रशिक्षित शिल्पी या कुशल कारीगर बनाने की चेष्टा न होनी चाहिए। ऐसे विषयों को पाठ्य-क्रम में आरम्भ करने का लक्ष्य यह नहीं कि हमारी समस्त पाठशालाएँ औद्योगिक अथवा व्यावसायिक पाठशालाएँ बन जायँ, परन्तु ऐसे विषय शिक्षा के एक ऐसे आवश्यक अंग की पूर्ति करते हैं, जिसकी भारतवर्ष में उपेक्षा होने की सम्भावना

* अखिल भारतीय शिक्षा-सम्मेलन १९३३ में ख़ानबहादुर एस० डी० कंट्रैक्टर के उद्घाटन-भाषण से।

रहती है। और यदि केवल शिक्षा के ही दृष्टिकोण से देखा जाय, तो उन विद्यार्थियों के लिए भी, जो अन्त में विश्वविद्यालय में पदार्पण करते हैं, वे आवश्यक हैं। उधर दूसरी ओर उनका आरम्भ हो जाने से शिक्षा शुद्ध साहित्यिक ढंग की होने के स्थान पर पाठ्य-क्रम अत्यन्त हितकर बन जायगा। जहां-कहीं सम्भव हो, इस प्रकार के कार्यों की कुछ निश्चित मात्रा का आरम्भ प्राथमिक पाठशालाओं में भी कर लेना चाहिए। अनेक विषय, जैसे कपड़ा बुनना, जिल्दसाज़ी, दर्ज़ीगिरी, लकड़ी का सरल काम, मुर्गी पालन आदि के लिए पर्याप्त सफलता के साथ चेष्टा की जा सकती है।

पाठ्य-क्रम के सम्बन्ध में, यद्यपि मामूली तौर पर अध्यापकों तथा प्रधान अध्यापकों के लिए यह सम्भव नहीं हो पाता कि वे इस बात का निर्णय कर सकें कि कौन-से विषय पढ़ाये जायँ। उनके लिए इस बात का निर्णय करना सम्भव है कि उनकी पाठशाला के किस विषय पर या किस तरह के विषय पर जोर दिया जाय। यहां पर अध्यापक को अपने बच्चों के भविष्य, उनके जीवन और देश के भविष्य तथा जीवन की ओर ध्यान रखना चाहिए। विशेष विषयों तथा सामान्य रूप में शिक्षा की ओर बच्चों का भावी रुख क्या होगा, इसका निर्णय करने में पाठशाला की ओर से दिये जाने-वाले ज़ोर का बहुत असर पड़ेगा। जैसा हम पहले बता चुके हैं, ग्राम्य पाठशालाओं में ग्राम्य विषयों को महत्त्व देना चाहिए। सभी पाठशालाओं में मातृ-भाषा के ऊपर बहुत जोर देना चाहिए और उन सभी चीज़ों को जो मातृभाषा की स्थिति को दृढ़ करने में सहायक होंगी, खूब प्रोत्साहन देना चाहिए। आजकल के दिनों में अध्यापकों का सर्वप्रथम कर्त्तव्य यह है कि वे मातृभाषा को उसका उचित स्थान दिलाने के लिए जो कुछ कर सकते हों करें। विज्ञान के ऊपर भी जोर देना चाहिए; विशेष रूप से सभी विषयों में वैज्ञानिक विधि एवं वैज्ञानिक ढंग से विषय-प्रवेश के ऊपर। उस शिक्षा-दर्शन का, जो योजना-विधि (project method) के नाम से प्रसिद्ध है, पाठ्यक्रम तथा उसके अन्तर्गत चीज़ों के साथ बड़ा महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है। जहां प्रोजेक्ट-विधि को बिना किसी रोक-टोक के व्यवहार में लाया जाता है, वहां पाठ्य-क्रम के अंदर आनेवाले विषयों का निर्णय विधि के द्वारा ही हो जाता है। बहुधा देखा जाता है कि वर्तमान पाठ्य-क्रम का बच्चों की सच्ची आवश्यकताओं तथा उनके वास्तविक जीवन से कोई लगाव नहीं रहता। प्रोजेक्ट-विधि के अनुसार जिस कार्य-विधि का प्रयोग किया जाता है, उसके अन्तर्गत एक ऐसे पाठ्य-क्रम का आयोजन होता

है जिसका बच्चों की आवश्यकताओं से और इसीलिए उनके जीवन के साथ निकटे सम्बन्ध रहता है। इस प्रकार एक ऐसे पाठ्य-क्रम का विकास हो गया है जिसका व्यावहारिक मूल्य वर्तमान समय में प्रचलित पाठ्य-क्रम से कहीं अधिक है।

प्रोजेक्ट-विधि में पहले से कोई निश्चित एवं विस्तृत पाठ्य-क्रम नहीं निर्धारित किया जाता। संक्षेप में प्रोजेक्ट-विधि की कार्य-विधि यह है—ऐसी चीज़ों को लेना, जिनकी आवश्यकता का अनुभव बच्चे स्वयं करे। यों बच्चों को इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रोत्साहन मिलता है, अर्थात् उनके सामने एक लक्ष्य होता है—उस आवश्यकता की पूर्ति करना, जिसका अनुभव उन्होंने अपने-आप किया है, अतः उनकी क्रियाएँ उद्देश्य की पूर्ति करने में सहायता पहुंचाती हैं। यही वह लक्ष्य है जो उस विषय को, जिसका अध्ययन उन्हें करना है, और उस कार्य को, जो उन्हें करना है, निर्धारित करता है। वे उन्हीं विषयों का अध्ययन करते हैं जो उन्हें उनके लक्ष्य की पूर्ति में सहायता पहुंचायेंगे और वही कार्य करते हैं जो उन्हें उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ बना सकेंगे। जब वे इस आवश्यकता को, चाहे वह कैसी ही क्यों न हों, पूर्ति में लगते हैं, तब तुरन्त ही उन्हें इस बात का पता लगता है कि कुछ ऐसा ज्ञान है, जिसकी उन्हें आवश्यकता है और कुछ ऐसा कौशल है, जो उनसे अपेक्षित है। अपने अभिप्राय को पूरा करने की इच्छा उन्हें प्रेरणा प्रदान करती है, और इसीलिए जो कुछ उन्हें करना होता है, उसमें उनको अधिक आनन्द आता है। इसके अतिरिक्त उनका काम जीवन की आवश्यकता से स्वयमेव सम्बन्धित होता है। इस प्रकार योजना के आधार पर व्यवस्थित पाठशाला में पाठ्य-क्रम के विषय तथा उस क्रम का, जिसमें विषयों को लेना हो, निर्णय बच्चों की आवश्यकताओं तथा उनके उद्देश्यों द्वारा होता है।

किसी बच्चे को पढ़ना सीखने में इसलिए नहीं लगाया जाता कि अधिकारी-वर्ग की ओर से, चाहे वे कोई भी हों, यह निश्चय किया गया है कि वह अमुक-अमुक आयु में अमुक-अमुक पुस्तकों को पढ़ना सीखें, वरन् वह अपने-आप पढ़ना सीखने के लिए बैठता है, इसलिए कि अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए अपने को समर्थ बनाने के विचार से वह बहुत-सी बातें जानना चाहता है और वह यह मालूम करना चाहता है कि यदि वह जिस चीज़ को बनाना चाहता है उसको बनाये तो उसके लिए क्या जानना आवश्यक है। वह लिखना सीखता है, क्योंकि वह अपनी योजना को पूर्ण

करने के लिए जो कुछ चाहता है, वह प्राप्त नहीं कर सकता, अर्थात् जब तक वह आवश्यक चीजों को मँगाने के लिए पत्र नहीं लिख सकता, तब तक अपनी आवश्यकता को पूर्ण नहीं कर सकता। वह गणित सीखता है, क्योंकि मूल्य का हिसाब लगाये बिना उसे वस्तुएँ नहीं मिल सकतीं, जिनकी उसे ज़रूरत है।

इस प्रकार न तो पाठ्य-क्रम का विकास तार्किक ढंग से होता है और न ही उसमें तार्किक व्यवस्था होती है। विषय और व्यवस्था, दोनों ही बच्चों की आवश्यकताओं पर निर्भर रहते हैं और पाठ्य-क्रम का इस प्रकार बच्चे के जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण वह अत्यन्त लाभदायक और मूल्यवान् होता है। योजना के आधार पर विकसित पाठ्य-क्रम के अन्तर्गत कदाचित् कुछ ऐसे पुराने विषय, जो मामूली तौर से साधारण पाठ्य-क्रम में पाये जाते हैं, नहीं मिलते; पर दूसरी ओर अन्य कुछ विषय, जो साधारण पाठ्य-क्रम में शामिल नहीं होते, योजना पर आधारित पाठ्य-क्रम में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। मामूली तौर से यह सबसे बड़ा लाभ होता है।

इस प्रकार की कार्य-विधि का मतलब यह है कि अध्यापक अपना पाठ्य-क्रम पहले से नहीं तैयार कर सकता। जब तक उसके बच्चे अपनी योजना नहीं बना लेते, तब तक उसे नहीं मालूम रहता कि उसे क्या पढ़ाना है। एक बार योजना निर्धारित हो जाने के बाद फिर तो अध्यापक उस समय तक के लिए अपना पाठ्य-क्रम बना सकता है, जब तक कि योजना-विशेष पूरी की जा रही हो। वह यह देख सकेगा कि कौन-कौन-से विषय योजना के अन्तर्गत हो सकते हैं और उसी के अनुसार वह अपनी तैयारी कर लेगा।

प्राथमिक पाठशालाओं के लिए ही, जहा-कहीं ऐसा करने की स्वतन्त्रता हो, मेरी सिफ़ारिश यही है कि पाठ्य-क्रम निर्धारित करने के लिए योजना-विधि का प्रयोग किया जाय। हा, यह बात ज़रूर है कि वर्तमान दशाओं के अन्तर्गत इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए, विशेषरूप से ऊँची प्राथमिक कक्षाओं में, कि ज्ञानोपार्जन करते-करते बीच में कुछ चीजें रह न जायँ, जिनके कारण विद्यार्थी को बड़ी पाठशाला में जाने पर किसी प्रकार की बाधा पड़े। हो सकता है कि वह ज्ञान वास्तव में महत्त्वपूर्ण न हो, परन्तु वर्तमान दशाओं के अन्तर्गत, यदि उसको उस ज्ञान के अभाव में किसी प्रकार की हानि होने का भय है, तो उस अभाव की पूर्ति होनी ज़रूरी है।

यह कहना कि बच्चा जैसे-जैसे ऊँची कक्षाओं में जाता है, वैसे-वैसे ये रिक्त स्थान और अधिक स्पष्ट होते जाते हैं, ठीक है, और यहीं पर, ऊँची कक्षाओं में, योजना-विधि का प्रयोग करने के दोष पाये जाते हैं। बहुत-सी ऐसी आवश्यकताएँ हैं जो बच्चे के आगामी जीवन में आयेंगी, जिनके विषय में वह अभी कुछ भी नही जानता। कुछ चीज़ें ऐसी हैं जो इन आवश्यकताओं का सामना करने की तैयारी के रूप में सीखनी ही पड़ेंगी, अन्यथा बच्चे को अचानक आवश्यकता का सामना करना पड़ेगा और उस हालत में वह उसका सामना करने में असमर्थ हो जायगा। इससे बढ़ कर और भूल क्या होगी कि फ्रेंच भाषा का अध्ययन उस समय तक के लिए टाल रखा जाय, जब तक कि सीखनेवाला फ्रांस न पहुँच जाय और वहां पहुंचकर उसे फ्रेंच भाषा बोलने की आवश्यकता न पड़े। अंग्रेज़ी सीखने के लिए उस समय तक रुके रहने के कोई लाभ नहीं, जब तक कि व्यक्ति-विशेष को किसी पद के लिए आवेदनपत्र लिखने के लिए उसकी आवश्यकता न समझ पड़े। इस प्रकार योजना-विधि से निर्धारित पाठ्य-क्रम के अन्तर्गत रिक्तस्थान रह जाने का अंदेशा है, जिनकी पूर्ति बच्चे के भावी जीवन की उन आवश्यकताओं को, जिनके बारे में उसकी वर्तमान आवश्यकताएँ कुछ भी नहीं बतातीं, ध्यान में रखकर करना ही है। पर प्राथमिक पाठशालाओं में इस विधि (project method) की ज़ोरों के साथ सिफ़ारिश होनी चाहिए, और माध्यमिक पाठशालाओं में इसका प्रयोग विस्तारपूर्वक उस समय तक होना चाहिए, जब तक कि उसकी न्यूनता की पूर्ति होती रहे।

ग्राम विज्ञान के लिए पाठ्य-क्रम

१. ग्राम-सर्वेक्षण.

यह एक प्रादेशिक सर्वेक्षण होता है और उसके अन्तर्गत 'पुनर्निर्माण इकाई' के इतिहास (स्थानीय), भूगोल, तथा आर्थिक, सामाजिक और प्राकृतिक दशाओं की चर्चा आती है। पुनर्निर्माण इकाई से तात्पर्य है कई एक छोटे-छोटे गांव, जिनको एक साथ मिलाकर, व्यावहारिक कार्य के लिए एक इकाई के रूप में प्रयोग किया जा सके। यह सर्वेक्षण बच्चों को अपने-आप करना चाहिए और उन्हीं को सारी सूचनाएँ एकत्र करके उनका वर्गीकरण करना और लिखना चाहिए। अध्यापक की सहायता से स्थायी लेख-प्रमाण (records), जैसे मानचित्र, तैयार किये जाते है और गांव या इकाई

के जीवन के हरएक पहलू का पूर्ण विवरण धीरे-धीरे तैयार किया जाता है। कुछ मौलिक तत्त्वों को आरम्भ में ही ले लेना चाहिए, पर और बाक़ी अध्ययन-क्रम के साथ चलते रहना चाहिए। हर प्रकार की सूचना, जिसका सम्बन्ध ग्राम्य-जीवन के सभी भागों और सभी पहलुओं से हो, जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, मुक़दमेबाज़ी, सहयोग और इसी तरह की दूसरी चीज़ें, इस सर्वेक्षण की सीमा के अन्तर्गत आ जाती हैं। इस सर्वेक्षण का उद्देश्य है—विद्यार्थियों को अपने ग्राम का अन्वेषक बनाना, और उनको इस योग्य बनाना कि वे उस गाँव के बारे में जो कुछ पता लग सके, लगा लें।

२. व्यक्तिगत स्वास्थ्य-रक्षा.

शरीर, दाँतों, आँखों, कपड़ों, सारे सामान और आदतों की सफ़ाई। नियमित व्यक्तिगत आदतें।

३. ग्राम्य स्वास्थ्य-रक्षा.

गाँव की सफाई। सफ़ाई, धुलाई। गड्ढे, पाखाने, सेप्टिक टैंक (septic tanks) और उनके प्रकार तथा गाँव में उनका इस्तेमाल। स्वच्छ वायु और सूर्य की रोशनी तथा उनकी आवश्यकता।

४. रोग और उससे किस प्रकार निबटा जाय.

चेचक और टीका। प्लेग, चूहे और प्लेग का टीका। हैज़ा, मक्खी और हैज़े का टीका। मलेरिया, मच्छर, मच्छरदानी का प्रयोग, मच्छरों को नष्ट करने की विधियाँ। आँखों की खराबी, कारण और बचाव। गुप्त अंगों की बीमारी (venereal disease)। सामान्य प्राथमिक सहायता और रोगी का उपचार, भोजन।

५. ऋण की समस्या.

ऋण लेने के कारण और उनको दूर करने के उपाय। मितव्ययिता की विधियाँ और आदतें। सेविंग्स बैंक (savings banks)। बीमा। आत्म-निर्भरता तथा कुटीर उद्योग।

६. सहयोग.

सहयोग का सिद्धान्त एवं अभ्यास तथा सहकारी समितियां। मितव्ययिता-समितियां और उनका कार्य-सचालन। पारस्परिक सहायता का सिद्धान्त।

७. मुक़दमेबाजी.

मुक़दमेबाज़ी के दोष, कारण तथा उनको दूर करने के उपाय। सहकारी पंचायती समितियां और उनका कार्य-संचालन।

८. दृढ़ीकरण.

बँटाई पर उठी हुई जमीन की समस्या और उसका समाधान।

९. घर.

आदर्श गृह, आदर्श गृहों के नक़श, वायु के आवागमन के सिद्धान्त। घर और गांव को सजाना। बगीचे। घर के अन्दर का भाईचारा।

१०. जानवरों का इलाज.

गायों, बैलों, भैंसों, गधों, भेड़ों और बकरियों को खिलाना और उनका इलाज करना। पशु-पालन और उसमें सुधार। दूध के रजिस्टर और उनका प्रयोग। जानवरों की बीमारियां, उनके कारण और दूर करने के उपाय। मुर्ग़ी और बत्तक़ पालना। गांव के कुत्तों की समस्या।

११. गांव की सरकार.

पंचायत और उसके काम। गांव से सम्बन्धित अफसर। जिला-बोर्ड और उसके कार्य।

१२. मन-बहलाव.

गांव के खेल और उनकी व्यवस्था। पुस्तकालय, वाचनालय, नाट्यशाला।

१३. गांववालों के शत्रु और उनके साथ कैसा व्यवहार किया जाय.

टिड्डी, चूहे, कूत्र आदि।

१४. शिक्षा.

शिक्षा के कारण। स्त्री-शिक्षा और उसका महत्त्व। रात्रि-पाठशालाएँ और वे कैसे चलाई जाती हैं।

१५. जंगल लगाने का कार्य.

१६. कृषि.

विभागों द्वारा निर्धारित किया हुआ नियमित अध्ययन-क्रम।

१७. विज्ञान.

विभागों द्वारा निर्धारित नियमित अध्ययन-क्रम, जिसका झुकाव गांव-सम्बन्धी चीज़ों की ओर हो और जिसमें प्रारम्भिक शरीर-विज्ञान भी शामिल हो। अपनाई जानेवाली विधि को केन्द्र मानकर उसी के अनुसार पाठ्य-क्रम की व्यवस्था करना चाहिए। पाठशाला और गांव दोनों में इस बात पर ज़ोर दिया जाना चाहिए कि व्यावहारिक कार्य यथासम्भव अधिक-से-अधिक किया जाय। ऐसी क्रियाएँ, जैसे सहकारी समितियां, सहकारी दूकानें, पशुओं का उपचार, खेल, स्वास्थ्य-रक्षा, कृषि का प्रबन्ध तो स्कूल में ही किया जा सकता है और इन क्रियाओं तथा अन्य क्रियाओं का प्रबन्ध गांव की पुनर्निर्माण इकाई में भी किया जा सकता है। पूरे पाठ्य-क्रम भर में व्यावहारिक कार्य के ऊपर खास ज़ोर देना चाहिए।

प्रोजेक्ट पाठ्य-क्रम का एक नमूना

प्रोजेक्ट 'मुर्ग़ी-पालन' कक्षा ४ के लिए

१. पढ़ाई.

पाठ्य-पुस्तकों और प्राप्य पत्रिकाओं में मुर्ग़ी, बत्तख़ आदि का पालन, उनकी

आदतें, उनका भोजन, बीमारियां और उनका उपचार किस प्रकार किया जाय आदि विषयों पर लेख। चूज़ों (chickens) के उपचार के विषय में भी पढ़ना।

२. **लिखाई.**

मुर्ग़ी का बाड़ा और मुर्ग़ी को ढकने की टोकरियां बनाने के लिए आवश्यक चीज़ों के आदेश लिखना। फिर अंडों को व्यवस्थित ढंग से रखने के लिए भी आदेश लिखना। प्रोजेक्ट-पुस्तिका में पढ़ने से प्राप्त होनेवाले वृत्तान्त को लिखना।

३. **हाथ का काम.**

बाड़े का आँगन और मुर्ग़ी को ढकनेवाली टोकरियां बनाना। घर बनाने में मदद करना।

४. **गणित.**

आंगन और इमारत के लिए आवश्यक वस्तुओं का अन्दाज़ लगाना और उनके दामों को आँकना। खाने पर ख़र्च का और अंडों की बिक्री से मिलनेवाले रुपये का हिसाब रखना।

५. **चित्र-विद्या (Drawing).**

आंगन, मुर्ग़ी ढकने की टोकरियों और मुर्ग़ी के बाड़े का नक्शा खींचना। मुर्ग़ियों और चूजों के चित्र बनाना आदि।

६. **स्वास्थ्य-रक्षा.**

आंगन और बाड़े को साफ़ करना और इस प्रकार सफ़ाई की ज़रूरत को समझना।

७. **भूगोल.**

विभिन्न प्रकार के मुर्ग़े-मुर्ग़ियों के बारे में ज्ञान प्राप्त करना और इस बात की

जानकारी प्राप्त करना कि वे कहाँ से आती हैं। विभिन्न देशों की विभिन्न नस्लों के नाम।

८. आचार.

पशुओं के प्रति दया। शुद्ध अन्तःकरण से कर्तव्यों का पालन।

अध्याय ६

समय-चक्र-विभाग (Time Table)

बहुत-सी बातें ऐसी हैं जिनका समय-चक्र-विभाग बनाते समय मन में ध्यान रखना चाहिए। पहली बात है—थकावट। ऐसे विषय, जिनको पढ़ने से अन्य विषयों की अपेक्षा थकावट जल्दी आ जाती है और जिनके लिए अधिक मानसिक प्रयास की आवश्यकता होती है, दिन के ऐसे समय में पढ़ाये जाने चाहिए जब कि बच्चा अपनी सर्वोत्कृष्ट मानसिक दशा में हो। प्रातःकाल का प्रत्येक भाग तीसरे पहर के अनुरूप भाग से अच्छा होता है, अर्थात् प्रातःकाल का मध्य भाग तीसरे पहर के मध्य भाग से अच्छा होता है, हालांकि तीसरे पहर का मध्य भाग मामूली तौर से प्रातःकाल के अन्तिम भाग से अच्छा होगा; पर साथ-ही-साथ प्रातःकाल का अन्तिम भाग तीसरे पहर के अन्तिम भाग से अच्छा होगा। यह आशा की जा सकती है कि प्रातःकाल जब दिन का आरम्भ होता है, उस समय मन जितना अधिक स्वस्थ और सावधान रहता है उतना (चौबीस घटे में) अन्य किसी समय में भी नहीं रहता। पर ऐसा नहीं है। ये दोनों चीज़ें धीरे-धीरे बढ़ती रहती हैं और प्रातःकाल के मध्य में जाकर कहीं उच्चतम परिमाण तक पहुंचती हैं। इसी तरह दिन के मध्य में मिलनेवाले अवकाश (recess) के पश्चात् मन की ताज़गी अवकाश के तुरन्त

बाद ज्यादा नहीं होती, बल्कि तीसरे पहर के मध्य में ज्यादा होती है। अत: मानसिक थकावट पैदा करनेवाले विषयों के लिए सबसे अच्छे घंटे (periods) हैं—सबेरे के दूसरे और तीसरे घंटे, और तीसरे पहर का दूसरा घंटा। साथ ही सबसे ख़राब घंटा है—तीसरे पहर का आखिरी घंटा।

यही सिद्धान्त सप्ताह के दिनों के विषय में लागू होता है। स्वस्थता और मानसिक शक्ति के दृष्टिकोण से मंगलवार और बुधवार सबसे अच्छे दिन हैं। हम सब लोग 'सोमवार के प्रातःकाल की भावना' से परिचित हैं। सप्ताह का अन्त दिन के अन्त की तरह है—ऐसा समय जब कि थकावट सबसे ज्यादा होती है। समय-चक्र-विभाग एवं कार्य-वितरण के सम्बन्ध में निर्णय करते समय इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए।

थकावट में होनेवाले दैनिक परिवर्तन के ग्राफ़ का खाका नीचे दिया जाता है।

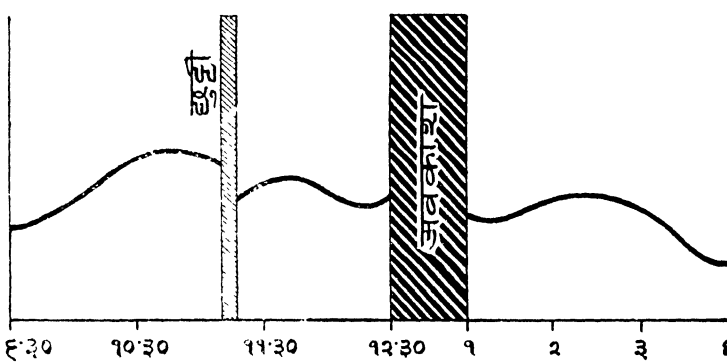

थकावट के ख़्याल से प्रातःकाल के मध्य के कुछ बाद ड्रिल और खेलों के लिए एक छोटे-से घंटे (period) का आयोजन कर लेना ज्यादा अच्छा है। इस तरह से पूरी पाठशाला को बीच में जरा देर की छुट्टी मिल जायगी। यदि एक ऐसे ड्रिल-मास्टर की नियुक्ति की जाती है जो सारी कक्षाओं की शारीरिक क़वायद और खेल लेता है और इसीलिए उसे अलग-अलग कक्षाएं अलग-अलग समय पर लेनी पड़ती है, तो उस हालत में निश्चय ही ऐसा करना असम्भव है। हर कक्षा को या एक साथ दो-दो कक्षाओं को अलग-अलग लेना पड़ेगा, परन्तु यदि एक ऐसी प्रणाली का

प्रयोग किया जाय, जिसमें कई एक अध्यापक ड्रिल-समुदायों का निरीक्षण करने के लिए प्रशिक्षित हों, तो एक ही समय में पूरी पाठशाला को ज़रा देर के लिए छुट्टी मिल सकती है।

कुछ विषय अन्य विषयों की अपेक्षा अधिक थकावट पैदा करनेवाले होते हैं। थकावट पैदा करनेवाली शक्ति के अनुसार विषयों का क्रम इस प्रकार है—गणित-शास्त्र, अंगरेज़ी, भारतीय भाषाएँ, विज्ञान, प्रकृति-अध्ययन, इतिहास, भूगोल, लिखाई और चित्र-विद्या। ऐसे विषय, जिनमें हाथ से काम करना पड़ता है, जैसे लकड़ी का काम, सूची में काफ़ी नीचे आते हैं। अतः समय-चक्र-विभाग बनाते समय थकावट के दृष्टिकोण से सर्वोत्तम घण्टे गणित-शास्त्र तथा अंगरेज़ी के लिए रखने चाहिए।

समय-चक्र-विभाग बनाते समय दूसरी बात जो ध्यान में रखनी चाहिए, वह है—विभिन्नता का सिद्धान्त। यह विद्यार्थियों और अध्यापकों के लिए समान रूप से लागू है। बच्चों को लगातार बहुत समय तक एक ही विषय, या एक ही तरह के कई विषय, या ऐसे विषय जो बड़ी जल्दी थकान पैदा कर देते हैं, पढ़ाते रहना बहुत हानिकारक है। ज्यादा अच्छा यह है कि जब कभी सम्भव हो एक ही विषय लगातार दो घंटों में न पढ़ाया जाय यदि उसके लिए कुछ विशेष कारण न हों—जैसे विज्ञान के मामले में है।

अध्यापकों के लिए भी प्रबन्ध होना चाहिए, ताकि सरल और कठिन पाठ बारी-बारी से आयें। जहाँ विशेषज्ञ-अध्यापक-प्रणाली का प्रयोग किया जाता है, वहाँ ऐसा करना सदैव सरल अथवा सम्भव नहीं होता। परन्तु जहाँ तक सम्भव हो सके, इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कोई भी अध्यापक, उदाहरणार्थ अंगरेज़ी का अध्यापक, लगातार एक के बाद दूसरा मौखिक पाठ ही न लेता रहे, वरन् लिखाई और निबन्ध के पाठ भी मौखिक पाठों के साथ बारी-बारी से लेता जाय। विशेषज्ञ अध्यापक तो अपने लिए इस प्रकार का प्रबन्ध स्वयं ही कर लेगा, फिर भी प्रधान अध्यापक को यह देख लेना चाहिए कि अध्यापक ने इस ओर ध्यान दिया है या नहीं; क्योंकि कभी-कभी उन विभिन्न कक्षाओं के पाठों में, जिनको वह पढ़ाता है, थोड़ा-सा हेर-फेर कर देने से अध्यापक तथा कक्षा दोनों को काफ़ी आराम मिल जाता है। जहाँ कक्षा-अध्यापक कक्षाओं को व्यावहारिक रूप में सभी विषय पढ़ाते हैं, वहाँ विभिन्नता के लिए प्रबन्ध करना कोई कठिन काम नहीं। जब कक्षा-अध्यापक-

प्रणाली का प्रयोग किया जाता है तब हर एक दृष्टिकोण से समय-चक्र-विभाग बनाने में कहीं अधिक सरलता होती है।

छोटी पाठशालाओं में जहां एक ही कमरे में दो कक्षाएँ लगती हैं, वहां समय-चक्र-विभाग बनाते समय इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि एक ही समय में किस ढंग से पाठ पढ़ाये जायँगे। एक ही कमरे में और एक ही समय में पढ़ाई का पाठ और पहाड़े का पाठ मुश्किल से ही चल सकता है। जिस समय एक कक्षा में पढ़ने का काम हो रहा हो, उस समय दूसरी कक्षा को लिखने का काम या इसी तरह का कुछ और काम करते रहना चाहिए।

पाठों के क्रम की विभिन्नता के विषय में जो कुछ कहा जा चुका है उसको विज्ञान तथा कृषि जैसे विषयों के सम्बन्ध में बदलना पड़ेगा। जब विज्ञान में व्यावहारिक कार्य करना होता है तब एक समय में विषय के लिए लगातार दो घंटे देना ज़रूरी है। कृषि में व्यावहारिक कार्य करने के लिए भी ऐसा करना ज़रूरी है। सच तो यह है कि इस विषय में जहां पाठशाला के लगाव में एक खेत हो, वहां के लिए बुद्धिमानी की बात तो यही होगी कि विषय को सप्ताह में चार या पांच, जितने भी घंटे मिलते हों, उनको एक के बाद एक लेकर कक्षा को खेती में पूरे सप्ताह का काम एक ही दिन में कर लेने दिया जाय। इस प्रकार व्यावहारिक कार्य के लिए लगातार समय मिल जायगा।

विज्ञान के मामले में, जिसमें कभी-कभी ऐसा होता है कि हाई स्कूलों में उसके बजाय विद्यार्थी कोई दूसरा विषय—जैसे फ़ारसी या अरबी या संस्कृत—ले लेते हैं, वहां पर आधी कक्षा विज्ञान का अध्ययन करती है और बाक़ी आधी कक्षा के विद्यार्थी कोई शास्त्रीय भाषा पढ़ते है। इसका अर्थ यह हुआ कि कक्षा के आधे विद्यार्थियों को भी, जो शास्त्रीय भाषा पढ़ रहे हैं, लगातार दो घंटे मिलेंगे, जिसकी न तो कोई ज़रूरत है और न उचित ही हैं। ऐसी परिस्थिति में शास्त्रीय-भाषा-अध्यापक के लिए सिर्फ़ एक चीज़ ऐसी है जो वह कर सकता है—अपने पाठों को जहां तक सम्भव हो सके बदलते रहना, एक घंटे में पाठ्य-पुस्तकों को लेना, या मौन पाठ कराना और दूसरे में निबन्ध तथा व्याकरण लेना, या इसी प्रकार का कोई प्रबन्ध करना।

समय-चक्र विभाग के सम्बन्ध में दूसरा प्रश्न, जिसका निर्णय करना ही है, घंटों की अवधि है। आदर्शरूप में प्रायः यह ज्यादा अच्छा होगा कि अलग-अलग

विषयों के लिए घंटों की अवधि अलग-अलग हो। ऐसे विषयों के लिए, जिनसे थकान ज्यादा होती है, घंटों की संख्या अधिक होनी चाहिए और घंटों की अवधि कम होनी चाहिए; दूसरी ओर ऐसे विषयों के लिए, जिनसे थकान कम होती है, घंटे ज्यादा लम्बे हो सकते हैं। मामूली तौर से इस प्रकार का प्रबन्ध करना असम्भव है। यदि आधे घंटों (half periods) की प्रणाली का प्रयोग किया जाय तो कुछ हो सकता है; पर इसके सम्बन्ध में आपत्ति यह की जाती है कि आधा घंटा आम तौर से बहुत ही छोटा होता है। यथार्थ रूप में व्यवहार करने के लिए सबसे अच्छा उपाय यह है कि समय का समुचित औसत निकाल लिया जाय और घंटों की लम्बाई एक ही समान बना दी जाय। चालीस मिनट का एक घंटा रखना अच्छी औसत है। पैंतीस मिनट कई विषयों के लिए कम जान पड़ते हैं। कठिन विषयों के लिए एक घंटा बहुत ज्यादा है। प्रायः यह देखा जाता है कि चालीस से पैंतालिस मिनट तक के घंटे हर तरह से सबसे अधिक सन्तोषजनक होते हैं। घंटे बहुत लम्बे न होने चाहिए, पर साथ-ही-साथ उनको बहुत छोटा बना देना भी बड़ी नासमझी का काम है, खास तौर से बड़े विद्यार्थियों के लिए। हाँ प्राथमिक और माध्यमिक पाठशालाओं में छोटे घंटों से भले ही लाभ हो। जलवायु का भी ध्यान रखना पड़ेगा। घंटों की लम्बाई में लचीलापन होना चाहिए, ताकि गर्मी के मौसम में उन्हें छोटा और जाड़े के मौसम में फिर से बड़ा बनाया जा सके। ऊपर दिये हुए समय ठंडे मौसम के लिए है।

दूसरा विचार जिसका समय-चक्र-विभाग बनाते समय मन में ध्यान रखना आवश्यक है, वह है—सब अध्यापकों के लिए कुछ खाली घटों की आवश्यकता और इन खाली घंटों को यथास्थान रखना। अध्यापकों को कुछ खाली घंटे मिलना चाहिए, परन्तु किसी अध्यापक को सप्ताह भर के सब खाली घंटे एक ही दिन में दे देने से कोई लाभ नहीं। जहां तक सम्भव हो, वे पूरे सप्ताह भर में बँटे होने चाहिए। खाली घंटों की संख्या पाठशाला के अध्यापकों की संख्या के ऊपर निर्भर होगी; किन्तु प्रत्येक अध्यापक को सप्ताह में कम-से-कम चार और यदि सम्भव हो तो पांच खाली घँटे मिलने चाहिए। उन अध्यापकों का, जैसे अंग्रेजी के अध्यापक, जिनके पास कापियाँ जाँचने का काम ज्यादा रहता है, इस मामले में खास तौर से लिहाज़ रखना चाहिए। विज्ञान के अध्यापकों को भी प्रयोग करने का यंत्र (apparatus) तैयार करने के लिए कुछ ज्यादा खाली घंटे मिलने चाहिए,

यद्यपि यह काम विद्यार्थीगण स्वयं जितना अधिक करते हैं, उतना ही ज्यादा अच्छा रहता है।

एक सामान्य समय-चक्र-विभाग होना चाहिए जो दो तरह से बनाया जाय। कक्षा के हिसाब से और अध्यापक के हिसाब से। ये दोनों ही ज़रूरी हैं। दोनों की अलग-अलग दो-दो प्रतियां होनी चाहिए। अध्यापक के हिसाब से बनाये जानेवाले समय-चक्र-विभाग की एक प्रति अध्यापकों के कमरे (staff-room) में और एक प्रति प्रधान अध्यापक के कार्यालय में होनी चाहिए। कक्षा के हिसाब से बने हुए समय-चक्र-विभाग की एक प्रति मुख्य सूचना-पट (notice board) के निकट एक दूसरे पट पर होनी चाहिए, जहां सब लोग उसको देख सकें और एक प्रति कार्यालय में होनी चाहिए। इन समय-चक्र-विभागों के अतिरिक्त कक्षा-अध्यापक-प्रणाली के अन्तर्गत हर कमरे में उस कक्षा-विशेष के कार्य का समय-चक्र-विभाग होगा, जो उस कमरे का प्रयोग करती हो। यदि विषय-अध्यापक-प्रणाली का प्रयोग किया जाता है, तो अध्यापक अपने कमरे की दीवार पर सप्ताह भर का अपना समय-चक्र-विभाग टाँग लेगा। विशेषज्ञ-अध्यापक-प्रणाली के साथ भी अच्छा यही होगा कि कक्षा का समय-चक्र-विभाग तैयार कर लिया जाय और उस कमरे की दीवार पर टाँग दिया जाय जो कक्षा को उसके कक्ष-विशेष के रूप में दे दिया गया हो।

प्राथमिक पाठशालाओं में जहा एक अध्यापक के पास एक से अधिक कक्षाएं हों, यह बहुत जरूरी है कि समय-चक्र-विभाग साफ़-साफ लिखा जाय और दीवार पर लटका दिया जाय, ताकि बच्चे अपने आप यह देख सकें कि किस समय उन्हें क्या करना है। इससे अध्यापक को भी बड़ी सहायता मिलेगी।

विशेषज्ञ-प्रणाली के अन्तर्गत, जिसमें अलग-अलग विषयों के अपने-अपने कमरे हों, यह भी ज़रूरी है कि अलग-अलग कक्षाओं के हिसाब से एक कक्ष-समय-चक्र-विभाग बना लिया जाय और कक्षा के हिसाब से बने हुए समय-चक्र-विभाग के साथ-साथ उसको भी टाँग दिया जाय। कमरों के नम्बर डाले जा सकते हैं—जैसे गणित अ, गणित ब, अंग्रेज़ी अ, अंग्रेज़ी ब, अंग्रेजी स आदि। इस समय-चक्र-विभाग से एक ही झलक में कक्षाएं यह देख सकती हैं कि उन्हें कहाँ जाना है। इस तरह से यदि कोई कक्षा का पता लगाना चाहता है, तो उसके लिए भी बड़ी आसानी होती है। यह एक अच्छी चीज़ है, हालांकि ज़रूरी नहीं है कि प्रत्येक कक्षा के लिए भी इसी प्रकार का

एक समय-चक्र-विभाग तैयार कर लिया जाय और कक्षा-कार्य के समय-चक्र-विभाग के साथ-साथ उस कमरे में लगा दिया जाय जो कक्षा को मिला हो।

खेलों के लिए एक समय-चक्र-विभाग होना चाहिए, चाहे वह कक्षा के हिसाब से बने हुए समय-चक्र-विभाग में शामिल हो, अथवा अलग ही हो। यदि खेलों की व्यवस्था कक्षाओं के अनुसार होती है तो इस खेल के समय-चक्र-विभाग को कक्षा समय-चक्र-विभाग के साथ जोड़ा जा सकता है। यदि पाठशाला को क़द अथवा खेलने की योग्यता के अनुसार समुदायों में बाँट दिया जाता है, जो कि ज़्यादा अच्छा प्रबन्ध है, तो उस हालत में एक अलग समय-चक्र-विभाग बनाना चाहिए। इससे दिन-विशेष पर समुदाय-विशेष द्वारा खेले जानेवाले खेल की तथा उस मैदान की, जहां वह खेल खेलना है, सूचना मिल जायगी। प्राप्य मैदानों में नम्बर डाल देना चाहिए और समय-चक्र-विभाग की सहायता से उन्हें विभिन्न समुदायों के लिए निर्दिष्ट (assign) कर देना चाहिए। यहाँ पर अध्यापकों के हिसाब से अलग समय-चक्र-विभाग बनाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि खेल-सम्बन्धी सूचना मामूली समय-चक्र-विभाग में जोड़ी जा सकती है।

सामनेवाले पृष्ठ पर दिया हुआ चक्र खेल के समय-चक्र-विभाग का एक उदाहरण है।

ऐसी व्यवस्था-प्रणाली के समय-चक्र-विभाग में, जैसी कि डॉल्टन-प्लॉन (Dalton plan) के अंतर्गत होती है, इस बात की ओर संकेत कर देना चाहिए। डॉल्टन-प्लॉन या इसी से मिलती-जुलती व्यक्तिगत-कार्य की अन्य प्रणालियों के लिए विषय-अध्यापकों का होना ज़रूरी है। अध्यापक अपने कक्ष में उपस्थित रहता है और कितनी भी कक्षाओं के विद्यार्थी, जिन (कक्षाओं) के लिए प्रबन्ध विशेष चल रहा है, उसके कमरे में किसी समय भी आ सकते हैं। दिन के उस भाग में, जबकि प्रणाली का प्रयोग किया जा रहा हो, घंटे (periods) नहीं बजाये जाते और विद्यार्थी एक कमरे में रुककर एक ही विषय पर जितनी देर भी चाहे काम कर सकता है। आम-तौर से इस बात पर ज़ोर दिया जाता है कि एक विषय पर काम करने के लिए कम-से-कम समय दिया जाय, ताकि बहुत ज्यादा गड़बड़ी न हो। पर इस निग्रह (reservation) के साथ ही विद्यार्थियों को अपनी इच्छा के अनुसार एक विषय से दूसरे विषय के लिए जाने की स्वतन्त्रता है और विभिन्न विषयों के लिए समय

खेल का समय-चक्र-विभाग

समुदाय	सोमवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार
१	हॉकी A	रगर टच E	फ़ुटबॉल A	बास्केटबॉल G	हॉकी A	वॉलीबॉल J
२	हॉकी B	फ़ुटबॉल A	रगर टच E	फ़ुटबॉल A	बास्केटबॉल G	वॉलीबॉल J
३	रगर टच E	हॉकी B	वॉलीबॉल J	फ़ुटबॉल B	बास्केटबॉल H	
४	वॉलीबॉल J	बॉस्केटबॉल G	हॉकी B	रगर टच E	फ़ुटबॉल B	
५	हॉकी C	रगर टच F	फ़ुटबॉल C	बास्केटबॉल H	छोटे खेल C	
६	रगर टच F	हॉकी C	बॉस्केटबॉल G	फ़ुटबॉल C	छोटे खेल D	
७	फ़ुटबॉल D	बॉस्केटबॉल H	हॉकी D	रगर टच F	छोटे खेल E	
८	बास्केटबॉल H	फ़ुटबॉल D	रगर टच F	हॉकी D	छोटे खेल F	
८A	बाग़बानी	बाग़बानी	बाग़बानी	बाग़बानी	बाग़बानी	

A, B आदि अक्षर मैदानों की ओर संकेत करते हैं। प्रत्येक समुदाय उस मैदान का प्रयोग करता है जो दिन विशेष पर उसके लिए निर्दिष्ट है। ८ A समुदाय में ऐसे विद्यार्थी होते हैं, जो खेलों की जगह पर बाग़बानी लेते है। शनिवार का दिन दो समुदायों के अलावा पूरा ख़ाली छोड़ दिया गया है, क्योंकि उस दिन आधे दिन की छुट्टी होती है। जो संध्या समय खेलना चाहते हैं, वे लोग उस खेल में शामिल हो सकते हैं, जिसका प्रबन्ध शाम के लिए किया जाता है।

की कोई नियत अवधि भी नहीं रखी जाती, जैसा कि साधारण समय-चक्र-विभाग के अन्तर्गत होता है। विद्यार्थियों को इस बात की स्वतन्त्रता दे दी जाती है कि वह अपनी आवश्यकताओं तथा रुचियों के अनुसार जिस प्रकार चाहें, अपना समय-चक्र-विभाग बनायें।

निश्चय ही इस प्रकार के प्रबन्ध का मतलब यह है कि उन विषयों से सम्बन्धित अध्यापक, जिनका अध्ययन इस ढंग से किया जा रहा है, सब-के-सब एक समय में अपने-अपने कमरों में ज़रूर मौजूद रहें। इस प्रकार यदि इतिहास, भूगोल, विज्ञान, उर्दू व्याकरण और निबन्ध, अंग्रेज़ी व्याकरण और लेख इस विधि से उतने समय तक पढ़े जाते है जितना कि मामूली समय-चक्र-विभाग के अनुसार चार घंटों (periods) में लगता है, तो उतने समय तक उन विषयों के अध्यापकों को अपने विषय-कक्षों में ज़रूर रहना चाहिए, क्योंकि उन चार घंटों (periods) में योजना के अनुसार कार्य करनेवाली किसी भी कक्षा के विद्यार्थी, किसी भी समय उनके विषय में आ सकते हैं। यदि पूरी पाठशाला की व्यवस्था इस योजना के अनुसार की जाती है तो निश्चय ही समय-चक्र-विभाग एक बड़ी सरल वस्तु बन जाता है। यदि पाठशाला का केवल एक अंग तथा केवल थोड़े से विषय इस योजना के अनुसार व्यवहृत होते है तो समय-चक्र-विभाग के बनाने में अधिक कठिनाई होती है; परन्तु यह कल्पना कर लेने से कि व्यक्तिगत कार्य के लिए दिये गये समय में प्रत्येक कक्षा एक विषय के लिए उतना ही समय देगी, जितना कि वह साधारण समय-चक्र-विभाग के अन्तर्गत देती है, तो यह प्रश्न हल हो सकता है। चार घटे (periods) या इससे कम-ज्यादा जितने भी घंटे व्यक्तिगत-कार्य में लगाये जाते हैं, उनको केवल व्यक्तिगत-कार्य के घंटों के रूप में दिखा दिया जायगा। समय-चक्र-विभाग में इस बात का प्रबन्ध होना चाहिए कि सप्ताह में एक दिन विभिन्न विषयों में विभिन्न कक्षाओं के सम्मेलन हों, जबकि विषय-अध्यापक के पास हर कक्षा के पूरे-पूरे विद्यार्थी उस विषय में, जो सप्ताह के बाक़ी दिनों में व्यक्तिगत-कार्य-विधियों के अनसार व्यवहृत रहा हो, एक घंटे (period) के लिए रह सकें।

इस पृष्ठ के सामने एक ऐसे समय-चक्र-विभाग का उदाहरण दिया जाता है, जिसके अन्तर्गत कुछ विषय व्यक्तिगत-कार्य-विधियों के अनुसार पढ़ाये जाते हैं।

नवीं तथा दसवीं कक्षा का समय-चक्र-विभाग

व्यक्तिगत-कार्य-प्रणाली के अनुसार व्यवहृत कतिपय विषयों सहित

		१	२		३	४		५	६	७	
कक्षा १०	अमेरिकी	सो. मं. बु. मातृभाषा वृ. शु. श. अंग्रेज़ी	सो. म. बु. अंग्रेजी व. शु. श. गणित-शास्त्र	छुट्टी	सो. मं. बु. वृ. शु. व्यक्तिगत कार्य श. अंग्रेजी का सम्मेलन	सो. म. बु. वृ. शु. व्यक्तिगत कार्य श. गणित-शास्त्र-सम्मेलन	अवकाश	सो. मं. बु. वृ. शु. व्यक्तिगत कार्य श. इति.-भूगोल सम्मेलन	सो. म. बु. वृ. शु. व्यक्तिगत कार्य	सो. मं. बु. मातृभाषा वृ. श. विज्ञान	छुट्टी
कक्षा ९	धार्मिक शिक्षा	सो. मं. बु. अंग्रेजी वृ. शु. श. गणित-शास्त्र	सो. मं. बु. वृ. मातृभाषा शु. श. अंग्रेज़ी	छुट्टी	सो. मं. बु. वृ. शु. व्यक्तिगत कार्य श. गणित-शास्त्र-सम्मेलन	सो. म. बु. वृ. शु. व्यक्तिगत कार्य श. इति.-भूगोल सम्मेलन	अवकाश	सो. मं. बु. वृ. शु. व्यक्तिगत कार्य श. अंग्रेज़ी-सम्मेलन	सो. मं. बु. वृ. शु. व्यक्तिगत कार्य	सो. म. विज्ञान बु. अंग्रेजी वृ. शु. मातृभाषा	छुट्टी

अंग्रेज़ी, व्याकरण, इतिहास, भूगोल, विज्ञान और गणित-शास्त्र यहां पर व्यक्तिगत-कार्य-प्रणाली के अनसार व्यवहृत हो रहे हैं। प्रतिदिन उतना ही समय, जितना कि चार घंटों (periods) में लगता है, उन चार विषयों में से किसी के ऊपर व्यक्तिगत कार्य करने के लिए दिया जाता है। शनिवार के दिन सम्मेलन होते हैं। गणित-शास्त्र तथा विज्ञान में कक्षा-कार्य के लिए फ़ालतू घंटे (periods) भी होते हैं।

प्रोजेक्ट-विधि के अन्तर्गत समय-चक्र-विभाग में लचीलापन होना चाहिए। विभिन्न विषयों के लिए निर्धारित घंटों का पालन कठोरता के साथ करने की आवश्यकता नहीं। पर जिस ढंग से प्रोजेक्ट का विकास हो रहा है उसके अनुसार यदि आवश्यक अथवा उचित समझा जाय, तो उस विषय के लिए, जिसका अध्ययन प्रोजेक्ट को चलाने के लिए कक्षा द्वारा किया जा रहा है, कुछ अधिक समय लिया जा सकता है। विभिन्न विषयों में लग जाना और किसी चरण-विशेष पर उसके ऊपर खर्च होनेवाले समय की अवधि का निर्णय करना प्रोजेक्ट के विकास पर निर्भर होगा। कदाचित् कार्य के किसी पहलू पर आधा दिन खर्च हो जायगा, पर वह इतना थोड़ा होगा कि उसमें सम्भवतः केवल एक ही दो विषय शामिल हो सकेंगे। बाद को उन विषयों की बारी आयेगी, जो अभी तक छूटे हुए थे। समय-चक्र-विभाग उसी तरह से समझा देना चाहिए जिस प्रकार मामूली विधियों तथा व्यवस्था का समय-चक्र-विभाग समझा दिया जाता है, परन्तु इसकी ज़रूरत नहीं कि उसका अनुसरण कठोरता के साथ किया जाय। अध्यापक को प्रोजेक्ट के विकास द्वारा निर्देशित होना चाहिए। समय-चक्र-विभागों की रचना करते समय जिन सिद्धान्तों द्वारा हमको निर्देशित होना चाहिए, और जिनकी विवेचना हम यहां पर कर चुके हैं, उन सिद्धान्तों का पालन यथासम्भव होना चाहिए। फिर भी यह देखा जाता है कि जब वास्तव में समय-चक्र-विभाग बनाने का समय आता है, तो तमाम चीज़ें ऐसी आ जाती हैं, जिनके कारण हम इन सिद्धान्तों का पालन, जिस तरह से हम चाहते हैं, सदैव नहीं कर पाते। अध्यापकों को उनकी योग्यता के अनुरूप कार्य देने की आवश्यकता, अध्यापकों की कमी, जो अधिकांश पाठशालाओं में पाई जाती है, तथा अन्य स्थानीय परिस्थितियों के कारण समय-चक्र-विभाग को निर्दोष बनाना प्रायः बड़ा कठिन काम बन जाता है। पर जहां तक सम्भव हो, हमको इन सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए और चाहे कितनी ही विषम परिस्थितियां क्यों न आयें, हमें इस दिशा में भरसक चेष्टा करनी चाहिए। समय-चक्र-विभाग का बनाना कोई आसान काम नहीं, और न ही यह काम जल्दी में किया जा सकता है—बशर्ते कि हम उसको यथासम्भव दोषरहित बनाना चाहें। कठिनाइयां चाहे कितनी ही बड़ी क्यों न हों, हमें उनसे इस हद तक पराभूत न हो जाना चाहिए कि हम सम्यक् सिद्धान्तों का अनुसरण करने का प्रयास छोड़ बैठें और सरल-से-सरल उपाय जो सम्भव हो, उससे समय-चक्र-विभाग का

निर्माण कर डालें। चाहे स्थानीय परिस्थितियां कितनी ही कठिन क्यों न हों, पर सम्यक् सिद्धान्तों का अनुसरण करने के लिए कुछ प्रयास तो सदा किया ही जा सकता है।

अध्याय ७

आन्तरिक व्यवस्था

रजिस्टरों में दर्ज करना

पाठशाला में निम्नलिखित रजिस्टर रखे जाने चाहिए। पाठशाला में रखे जानेवाले विभिन्न रजिस्टरों के क्या खास नमूने होने चाहिए, इस बात का निश्चय आम तार से विभागों द्वारा होता है।

१. उपस्थिति-रजिस्टर.

जहां तक सम्भव हो, एक अध्यापक के पास एक ही उपस्थिति-रजिस्टर होना चाहिए। जब कक्षाएँ छोटी हों तो दूसरी बात है। उस अध्यापक को, जो कक्षा-अध्यापक हो, अथवा विशेषज्ञ-प्रणाली के मामले में उस अध्यापक को, जिसके लिए एक कक्षा निर्दिष्ट कर दी गई हो, अपनी कक्षा का उपस्थिति-रजिस्टर रखना चाहिए। यह देखने के लिए कि उपस्थिति हाजिरी लेते ही समय ठीक से भरी जाती है या नहीं, अच्छी तरह से देखभाल करते रहना चाहिए। पेंसिल से निशान बना देने और पीछे से हाजिरी भर देने के लिए अनुमति न दी जानी चाहिए। शुल्क से सम्बन्ध रखनेवाले समस्त विवरण तथा इसी तरह की अन्य चीजें जो उपस्थिति-रजिस्टर में

भरनी होती हैं, सावधानी के साथ भर दी जानी चाहिए। रुपया या तो बैंक में जमा कर देना चाहिए या पाठशाला के खजांची को तुरन्त सौंप देना चाहिए। जोड़, जो महीने के अन्त में भरने को रहते हैं, महीने के अन्तिम दिन ज़रूर भर लिए जाने चाहिए और अगले महीने के पहले दिन प्रधान अध्यापक को रजिस्टर की जांच करके उसके ऊपर अपने हस्ताक्षर कर देने चाहिए। छुट्टियाँ हमेशा उपस्थिति-रजिस्टर में दिखाई जानी चाहिए और यह भी लिख देना चाहिए कि किस बात की छुट्टी थी, जैसे इतवार, शनिवार की आधी छुट्टी, ईस्टर की छट्टियां और इसी तरह की जो भी छुट्टी हो।

छुट्टी की अर्ज़ियों पर सदैव विद्यार्थी के अभिभावक या पिता के हस्ताक्षर होने चाहिए; या यदि ऐसा असम्भव हो तो किसी उत्तरदायी व्यक्ति के द्वारा आवेदनपत्र में अनुपस्थिति का कारण सदैव स्पष्ट रूप से बता दिया जाना चाहिए। इस प्रकार के अस्पष्ट कारण जैसे "घर पर ज़रूरी काम के लिए" स्वीकार न करना चाहिए। छात्रावास में रहनेवाले विद्यार्थी की बीमारी के मामले में अर्ज़ी के ऊपर पाठशाला की नर्स या डाक्टर के हस्ताक्षर होना चाहिए। छुट्टी की सब अर्ज़ियां कक्षा-अध्यापक या घर में पढ़ानेवाले मास्टर के द्वारा प्रधान अध्यापक के पास आना चाहिए। जिसके पास यह काम हो, वह यदि अर्ज़ियों की जाँच खबरदारी के साथ करता रहे और जब तक उसे खुद इस बात का भरोसा न हो जाय कि छुट्टी की ज़रूरत है, तब तक वह उनके लिए सिफ़ारिश न करे, तो प्रधान अध्यापक का बहुत-सा समय बच जायगा। बीमारी या किसी अन्य आवश्यक कारण को छोड़कर छुट्टी की वे सब अर्ज़ियां जो छुट्टी लेने के पहले पेश नहीं की जातीं, आप-से-आप रद कर दी जानी चाहिए। परीक्षा के दिनों में छुट्टी की स्वीकृति उसी दशा में मिलनी चाहिए, जब कि डाक्टरी सार्टी-फ़िकेट प्रस्तुत किया जाय, अथवा प्रधान अध्यापक को स्वयं इस बात का विश्वास हो जाय कि विद्यार्थी सख्त बीमार है।

उपस्थिति-रजिस्टर में भरे जानेवाले शुल्क उन तारीखों के पहले दे दिये जाने चाहिए, जो विभागों के द्वारा निर्धारित की जाती हैं। फ़ीस इकट्ठा करनेवाले अध्यापकों को सदैव इस बात के लिए बहुत सावधान रहना चाहिए कि वे विद्यार्थियों को रसीदें दे दें और यदि वे रुपयों को आप सीधे बैंक नहीं ले जाते तो उस रक़म की रसीद लें, जिसको वे पाठशाला के खजांची अथवा प्रधान अध्यापक को सौंप देते हैं। फ़ीस

जमा करनेवाले प्रत्येक अध्यापक के पास फ़ीस लेने के लिए एक निश्चित समय होना चाहिए। अध्यापन के घंटों में यह काम कभी न होना चाहिए। रजिस्टरों में भी जमा की रक़म सावधानी के साथ भर दी जानी चाहिए।

२. अध्यापकों का उपस्थिति-रजिस्टर.

इस रजिस्टर में प्रतिदिन अध्यापकों के पाठशाला में आने और पाठशाला से घर जाने का समय दिखाया जाना चाहिए। नित्य प्रातःकाल और तीसरे पहर सब अध्यापकों को नियमित रूप से इस रजिस्टर को भरना चाहिए और उसमें अपने हस्ताक्षर करने चाहिए। यह रजिस्टर अध्यापकों के कमरे में रखा जाना चाहिए। इसमें छुट्टियां और वे किस बात की है, इस ओर भी संकेत होगा। उसमें ली जानेवाली छुट्टियां (अध्यापकों द्वारा) और वे छुट्टियां किस प्रकार की हैं, यह दिखाया जायगा और छुट्टी की सारी अर्ज़ियां पाठशाला के कार्यालय में नत्थी करके रख ली जायँगी। अनुपस्थिति की छुट्टी प्रधान अध्यापक की सिफ़ारिश पर प्रबन्धक द्वारा मंज़ूर की जायगी। प्रबन्धक के पास अर्ज़ियां प्रधान अध्यापक के ज़रिये से आयेंगी। उन मामलों में, जहां प्रबन्धक होता ही नहीं, निश्चय ही विभागीय नियमों का अनुसरण किया जायगा। बीमारी की छुट्टी बढ़ाने के लिए डाक्टरी सार्टीफ़िकेट मांगा जाना चाहिए। महीने भर में समय-समय पर ली जानेवाली छुट्टियां (casual leave), या बीमारी की छुट्टियां जितने भी दिन के लिए ली गई हों, वह सब महीने के अन्त में (रजिस्टर में) भर दिया जाना चाहिए।

३. प्रवेश तथा वापसी (Withdrawal) रजिस्टर.

यह रजिस्टर उन सब विद्यार्थियों का लेख-प्रमाण (record) है जो पाठशाला में प्रवेश पाते हैं। इस रजिस्टर में प्रवेश पाने की तिथि, विद्यार्थी की क्रम-संख्या, विद्यार्थी की आयु और नाम, पिता का नाम, जाति, पेशा और पता तथा वह कक्षा, जिसमें विद्यार्थी प्रवेश पाता है, भरे जाते हैं। इसमें नाम कटाने की तिथि तथा उस कक्षा के लिए भी खाने होते हैं, जिससे विद्यार्थी का नाम कटाया जाता है। यह रजिस्टर सबसे महत्त्वपूर्ण होता है और इस काम को बड़ी सावधानी के साथ करना चाहिए। इस बात की ख़ास निगरानी रखनी चाहिए कि जब विद्यार्थी पाठशाला में भर्ती किया

जाय, उस समय उसकी जन्म-तिथि भरने में किसी प्रकार की ग़लती न हो जाय। ठीक जन्म-तिथि देखने के लिए प्रायः इस रजिस्टर की आवश्यकता पड़ती है, इसी-लिए इस दिशा में सावधान रहने की आवश्यकता है। जब विद्यार्थी पाठशाला मे एक विभाग से दूसरे विभाग में जाता है, जैसे मध्यम विभाग से उच्च विभाग में, तो सब बातें फिर से भरनी पड़ती हैं। आम तौर से प्रत्येक विभाग के लिए अलग-अलग रजिस्टर रखे जाते हैं। नक़ल करने में ग़लतियां हो जाने का डर रहता है, इसलिए इस प्रकार का काम और उसकी जांच सावधानी के साथ की जानी चाहिए।

४. तनख़्वाह का रजिस्टर.

तनख़्वाह का एक रजिस्टर अवश्य रखना चाहिए, जिसके अन्दर अध्यापकों और नौकरों का वेतन, महीने भर में अध्यापक ने कितने दिन काम किया, प्रॉविडेंट फ़ंड के लिए काटी जानेवाली रकमें और किसी दूसरी चीज़ के लिए काटा जानेवाला धन अध्यापक के हस्ताक्षर तथा तारीख़ सहित दिखाया जाय। यह कहना व्यर्थ भले ही जान पड़े कि किसी भी अध्यापक को वेतन प्राप्त कर लिए बिना तनख़्वाह के रजिस्टर में हस्ताक्षर न करना चाहिए, पर यह एक ऐसी बात है, जिसके ऊपर ज़ोर देना ज़रूरी है।

५. कन्टिन्जेंसीज़ रजिस्टर.

यह एक ऐसा रजिस्टर होता है, जिसके अन्दर सारे सामान का ख़र्च, इमारत की मरम्मत, इमारत का किराया, लिखने-पढ़ने का सामान, पुस्तकालय के लिए ख़रीदी जानेवाली पुस्तकें, डाक का ख़र्च, छोटे-मोटे ख़र्च आदि दर्ज किये जाते हैं। चूंकि कैश-बुक में हरएक मद (item) लिखी जाती है, इसलिए कन्टिन्जेंसीज़ रजिस्टर में भी वह ठीक खाने में दर्ज कर दी जाती है और रसीद फाइल में लगा दी जाती है। कन्टिन्जेंसीज़ रजिस्टर में दिखाई जानेवाली हरएक मद की रसीद ज़रूर होनी चाहिए। डाक-ख़र्च की मद में पत्र-व्यवहार का रजिस्टर रसीद का काम देता है। जब कभी इस बात की दुविधा पैदा हो कि एक मद को दर्ज करने के लिए कौन-सा खाना ठीक है, जैसा कि कभी-कभी होता है, तब आय-व्यय-परीक्षक (auditor) से सहायता ली जा सकती है।

६. पत्र-व्यवहार रजिस्टर.

पत्र-व्यवहार के लिए दो रजिस्टर रखने चाहिए; एक प्राप्त होनेवाले पत्रों के लिए और दूसरा भेजे जानेवाले पत्रों के लिए। पत्रों को पाने या भेजने की तिथि नोट कर ली जानी चाहिए, अत्यन्त संक्षिप्त रूप में पत्र के विषय का सार लिख लिया जाना चाहिए, उस व्यक्ति का पता, जिसके नाम पत्र भेजा गया हो या जिसके पास से पत्र आया हो, दर्ज कर लेना चाहिए और भेजी जानेवाली चिट्ठियो के मामले में डाक का खर्च चढ़ा देना चाहिए। उसमे पत्र-संख्या के लिए भी एक खाना होगा।

७. सम्पत्ति-रजिस्टर.

यह पाठशाला के पास इधर से उधर हटाई जानेवाली जितनी भी सम्पत्ति हो उसका रजिस्टर है। जब कभी कोई सामान या फ़र्नीचर, जो एक तरह से स्थायी ढंग का हो, खरीदा जाता है और पाठशाला में रखा जाता है तो सम्पत्ति-रजिस्टर में उसका उचित रीति से लिख देना चाहिए। वस्तु के नाम के साथ-साथ पाठशाला में उस वस्तु के आने की तिथि, उसके दाम और किसके अधिकार से वह खरीदी गई आदि बातें लिखी जानी चाहिए। रजिस्टर में यह भी नोट किया जा सकता है कि वह चीज़ किस कमरे में रखी गई। संरक्षक-अधिकारी की स्वीकृति के बिना सम्पत्ति-रजिस्टर से कोई चीज काटी नहीं जा सकती और हरएक मामले में (काटने का) अधिकार देनेवाले पदाधिकारी के हस्ताक्षर रजिस्टर में होने चाहिए। यदि पुरानी और बेकार चीजो से कुछ पैसा मिलने की उम्मीद हो तो उन्हे बेच लेना चाहिए या नीलाम कर देना चाहिए, और जो कुछ धन मिले वह पाठशाला के रिज़र्व फ़ंड (reserve fund) में जमा कर देना चाहिए।

प्रधान अध्यापक को नियमित रूप से सम्पत्ति-रजिस्टर की जाँच करनी चाहिए। कम-से-कम हर तिमाही में एक बार यह होना ज़रूरी है। यदि कमरों के हिसाब से सम्पत्ति-सूचियाँ रखा जायं तो जांच का काम बड़ा ही सरल हो जाता है। प्रत्येक कमरे की सम्पत्ति-सूची की एक प्रतिलिपि हर कमरे की दीवार पर टाँगी जा सकती है और जब चीज़ें कमरे में रखी जायँ तो मदें (items) उसमें जोड़ी जा सकती हैं या चीज़ें अगर कमरे से हटाई जायँ तो उसमें से काटी जा सकती हैं। ऐसी दशा में उन अध्यापकों को, जिनके ऊपर कमरों की ज़िम्मेदारी हो, सम्पत्ति के ऊपर

अवरोध (check) रखने का ज्यादा अच्छा मौक़ा मिल जाता है और जाँच करना कहीं अधिक सरल होता है।

८. रोज़नामचा (Logbook).

आम तौर से इसकी आवश्यकता विभागों को निरीक्षकों द्वारा किये गये निरीक्षण (visit) की रिपोर्ट और पाठशाला की दशा के ऊपर उनके विवरण (remarks) लिखने के लिए पड़ती है। इसके अन्दर वे आँकड़े भी दर्ज कर लिये जाते हैं, जिनकी आवश्यकता निरीक्षक को वार्षिक-निरीक्षण के अवसर पर पड़ती है।

९. दर्शकों की पुस्तक.

किसी भी ऐसे व्यक्ति के लिए जो पाठशाला के दर्शनार्थ तो आता है पर रोज़नामचे (logbook) में अपने विवरण लिखने का अधिकारी नहीं होता, यह पुस्तक होनी चाहिए।

१०. आँकड़ों का रजिस्टर (Statistical Register).

यह रजिस्टर पाठशाला की आय-व्यय से सम्बन्ध रखनेवाली संख्याएँ, विद्यार्थियों की संख्या, कक्षाओं में विद्यार्थियों की गिनती, औसत उपस्थिति आदि-आदि दिखाने के लिए होता है। जिस शिक्षा-विभाग के नीचे पाठशाला कार्य कर रही है, उसी के द्वारा निर्धारित किये हुए तरीक़ों से यह रजिस्टर रखा जायगा।

११. निजी शिक्षण-रजिस्टर.

इसमें पाठशाला में काम करनेवाले अध्यापक के निजी शिक्षण-कार्य (private tuition) का, यदि वह कोई करता है, विस्तृत विवरण लिखा जाता है। इस तरह का काम प्रधान अध्यापक या प्रबन्धक की स्वीकृति लेकर ही आरम्भ करना चाहिए तथा निजी शिक्षण-रजिस्टर में हमेशा दर्ज होना चाहिए। इसके दो कारण हैं—एक कारण तो यह है कि यदि प्रधान अध्यापक यह जानता है कि इस मामले में क्या हो रहा है तो वह अध्यापकों को फ़ीस वग़ैरह के सम्बन्ध में होनेवाली कठिनाई के समय ज्यादा अच्छी तरह से मदद कर सकता है। ऐसे मामले अक्सर हुआ ही करते हैं।

दूसरी बात यह है कि प्रधान अध्यापक इस बात का निर्णय कर सकता है कि कहीं अध्यापक इतना अधिक बाहरी काम करने की चेष्टा तो नहीं कर रहा है कि उसके अध्यापन-कार्य एवं पाठशाला के अन्य कार्यों को हानि पहुँचने की सम्भावना हो। यह एक ऐसी बात है जिसके ऊपर प्रधान अध्यापक को निजी शिक्षणकार्य के लिए अध्यापक को छुट्टी देते समय हमेशा गौर कर लेना चाहिए। रजिस्टर में उस विद्यार्थी का नाम जिसको शिक्षण मिलता है, विद्यार्थी के पिता का नाम और पता, शिक्षण के लिए दिये जानेवाले समय की अवधि, फ़ीस जो तय की गई हो तथा अध्यापक एवं प्रधान अध्यापक के हस्ताक्षरों के साथ-साथ विद्यार्थी के पिता एवं अभिभावक के हस्ताक्षर होने चाहिए।

१२. आचरण-रजिस्टर.

यह वह रजिस्टर है, जिसमें सब लड़कों के सामान्य आचरण का लेखा लिखा जाता है। यदि उन्नति-विवरण नियमित रूप से तैयार करके फ़ाइल में लगा दिये जाते हैं तो इस प्रकार के रजिस्टर की वास्तव में कोई आवश्यकता नहीं।

१३. दंड-रजिस्टर.

इस रजिस्टर में उन विद्यार्थियों का लेखा लिखा जाता है जो प्रधान अध्यापक द्वारा दंडित होते हैं, विशेषरूप से शारीरिक दंड पानेवाले। यह रजिस्टर तो सिर्फ़ ऐसे मौके के लिए है, जब कि अनुशासन भयंकर रूप से भंग किया जाता है। तिथि, विद्यार्थी का नाम और कक्षा, अनुशासन किस रूप में भंग किया गया, दंड का स्वरूप क्या रहा तथा प्रधान अध्यापक के हस्ताक्षर आदि, सभी बातें इस रजिस्टर में आ जानी चाहिए। इस तरह के सब मामलों की ख़बर, जो इस रजिस्टर में दर्ज किये जायँ, सम्बन्धित अपराधियों के माता-पिता को दे देनी चाहिए और जिस तिथि को माता-पिता के पास रिपोर्ट भेजी जाय, वह रजिस्टर में लिख दी जानी चाहिए। एक खाना और जोड़ा जा सकता है, जिसमें प्रधानाध्यापक यह लिख सकता है कि विद्यार्थी के ऊपर दिये हुए दंड का क्या प्रभाव पड़ा—अच्छा, बुरा या उदासीन।

१४. कैश बुक.

इसके अन्दर पाठशाला में रुपये-पैसे के जितने भी मामले होते हैं, वे दर्ज कर

दिये जाते है। वित्त-सहायता, अनुदान, चंदे, शुल्क, लड़को के फ़ंड की फ़ीस, वजीफ़े का रुपया आदि जितनी भी रकमे प्राप्त होती है, वे सब तो आमदनी की तरफ़ दिखा दी जाती हैं और दूसरी ओर यह दिखाने के लिए कि ये सब रक़मे किस प्रकार खर्च की गई, उन्ही के अनुरूप खानापूरी कर दी जाती है। यदि रुपया बैंक में रखा जाता है तो खर्च की मद में जो कुछ लिखा जाता है वह निश्चय ही बैंक-पुस्तकों में की गई खानापूरी के अनुरूप होगा। जब रूपये की ज़रूरत होगी, तब बैंक से रुपया निकाल लिया जायगा और आमदनी की मद में दिखा दिया जायगा, फिर जैसे-जैसे वह चुकाया जायगा, वैसे-वैसे उसे खर्च की मद में दिखाते जायंगे। हर महीने के अन्त में कैश बुक का संतुलन कर लेना चाहिए और उसमें जो कुछ चढ़ाना हो, वह रोज़ का रोज़ चढ़ा दिया जाना चाहिए। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि फ़ीस का रुपया और विद्यार्थियों के फ़ंड का रुपया अध्यापकों या प्रधान अध्यापक के पास नहीं रहना चाहिए, बल्कि उसको बैंक में जमा कर देना चाहिए। पाठशाला के धन पर किसी प्रकार की सच्ची रोक का प्रतिपादन केवल उसी दशा में किया जा सकता है जब कि कैश बुक सावधानी से रखी जाय और सारे फ़ंडों के लिए बैंकों का हिसाब-किताब रखा जाय।

१५. वाचनालय-रजिस्टर.

वाचनालय के दो रजिस्टर रखे जाने चाहिए। एक रजिस्टर तो वह होगा, जिसमें वाचनालय की समस्त पुस्तकों के नाम और साथ-साथ उनका विस्तृत विवरण होगा। इसमें लेखक का नाम, पुस्तक प्राप्त करने की तिथि, मूल्य, क्रमसंख्या लिखी जायगी और कन्टिन्जेंसीज़ रजिस्टर में दर्ज की हुई इन सारी चीजों के साथ मिलान भी होता जायगा। अध्यापकों के वाचनालय के सम्बन्ध में यह एक अच्छा उपाय है कि पुस्तकों की एक दूसरी सूची तैयार कर ली जाय, जिसमें लेखकों के नाम हों और पुस्तकों का वर्गीकरण विषय के अनुसार किया गया हो, जैसे उपन्यास, इतिहास, शिक्षा-सिद्धान्त, शिक्षा-सम्बन्धी विधियां आदि-आदि। उस सूची की एक प्रतिलिपि, जिसमें इस प्रकार वर्गीकरण किया गया हो, अध्यापकों के कमरे में या वाचनालय के दरवाज़े पर चिपका देनी चाहिए। वाचनालय में रखा जानेवाला दूसरा रजिस्टर पुस्तकों की वापसी का रजिस्टर होगा, जिसमें ली हुई पुस्तक का नाम, उसकी

संख्या, तिथि और उस पुस्तक को लेनेवाले व्यक्ति के हस्ताक्षर, लौटाने की तिथि तथा पुस्तकालय के अध्यक्ष के हस्ताक्षर दिखाये जायंग।

यदि कक्षा-वाचनालय-प्रणाली व्यवहार में लाई जाती है तो प्रत्येक कक्षा-वाचनालय के लिए भी इन दो रजिस्टरों की आवश्यकता होगी। यदि विषय-वाचनालय हैं तो प्रत्येक विषय-वाचनालय को इन्हीं दोनों रजिस्टरों की आवश्यकता होगी। यदि सम्पूर्ण पाठशाला के लिए एक ही वाचनालय का प्रयोग किया जाता है तो यह और भी अच्छा उपाय है कि पुस्तकों को ऐसे समूहों में बांट दिया जाय जो विभिन्न कक्षाओं के लिए उपयुक्त हों, और प्रत्येक खंड के अलग-अलग रजिस्टर बना लिये जायं। चाहे कोई भी प्रणाली प्रयोग में क्यों न लाई जाती हो, परन्तु अध्यापकों के काम आनेवाली पुस्तकों एवं विद्यार्थियों के काम में आनेवाली पुस्तकों के अलग-अलग वाचनालय और उनके अपने-अपने अलग रजिस्टर होने चाहिए। इस तरह से अध्यापकों को विद्यार्थियों के पुस्तकालय और विद्यार्थियों को अध्यापकों के वाचनालय से यदि मौक़ा पड़े तो पुस्तकें लेने की कोई मनाही न होनी चाहिए। जैसे पहले लिखा जा चुका है, अध्यापकों के पुस्तकालय के मामले में, पुस्तकालय के रजिस्टरों में जो कुछ लिखा जाय, वह कन्टिन्जेंसीज़ रजिस्टर और कैश बुक में दर्ज की हुई चीजों के, और वाचनालय फ़ंड से विद्यार्थियों के लिए ख़रीदी जानेवाली पुस्तकों के मामले में, वाचनालय के रजिस्टरों में दर्ज की जानेवाली बातों को वाचनालय-फ़ंड के हिसाब तथा कैश बुक में लिखी जानेवाली बातों के अनुरूप (correspond) होना चाहिए।

विद्यार्थियों के फ़ंड

विद्यार्थियों के सभी फ़ंडों का हिसाब अलग रखना चाहिए और बैंक में भी उनका हिसाब अलग खोल देना चाहिए। शुल्क ज्यों ही मांगे जायं, त्यों ही प्रधान अध्यापक अथवा उस अध्यापक को जो फ़ंड-विशेष का अध्यक्ष हो, दे दिये जाने चाहिए। इसके पश्चात् रक़मों को सामान्य कैश बुक तथा सम्बन्धित फ़ंड, दोनों के हिसाब में लिखकर बैंक में जमा किया जा सकता है। साधारणतः इस प्रकार के सारे फ़ंड प्रधान अध्यापक अथवा प्रबन्धक के नियंत्रण के अन्तर्गत रहेंगे, पर अध्यापकों से हिसाब-किताब रखने और सामान की देखभाल करने के लिए कहा जा सकता है।

इस बात की बड़ी निगरानी रखनी चाहिए कि विद्यार्थियों के फ़ंडों का रुपया केवल उन्हीं विषयों पर व्यय किया जाय जो विद्यार्थियों के लिए वास्तव में लाभ-दायक हों और जिनका सम्बन्ध वास्तव में उस लक्ष्य के साथ हो, जिसके लिए फ़ंड क़ायम किया गया है। उदाहरणस्वरूप अध्यापक-मंडल तथा प्रधान अध्यापक के पढ़ने के लिए अंगरेज़ी के दैनिक समाचारपत्र के ऊपर विद्यार्थियों के वाचनालय-फ़ंड से आवश्यकता से अधिक धन ख़र्च कर देना कोई न्यायसंगत बात नहीं। सम्भवतः बड़े विद्यार्थियों में से कुछ विद्यार्थियों को अंगरेज़ी के दैनिक समाचारपत्र से कुछ लाभ भले ही हो जाय, पर उनमें से अधिकांश को, जिन्होंने फ़ंड के लिए धन दिया है, उससे किसी तरह का भी लाभ न होगा, इसलिए यह ख़र्च न्यायसंगत नहीं। अध्यापक-मंडल के सदस्यों को अपना समाचारपत्र स्वयं ख़रीदना चाहिए और इसके लिए तथा अध्यापक-मंडल की क्रियाओं से सम्बन्धित अन्य ख़र्चों के लिए अध्यापकों का एक फ़ंड क़ायम कर लेना चाहिए, जिसके लिए मंडल के सभी सदस्य नियमित रूप से थोड़ा-सा चंदा देते रहें।

खेल-कूद के फ़ंड से होनेवाले ख़र्च की जाँच भी सावधानी के साथ करने की आवश्यकता होती है। दंगल में या दूसरी पाठशालाओं के साथ मैच खेलने के लिए यात्रा करनेवाली पाठशाला की टीम के ऊपर खेल के फ़ंड से ख़र्च की जानेवाली रक़म बड़ी कड़ाई के साथ नियत कर दी जानी चाहिए। इसके ऊपर थोड़ा-सा ख़र्च न्यायसंगत भले ही हो, पर कुछ विद्यार्थियों के आनन्द के लिए सारे विद्यार्थियों का धन व्यय करना तो उचित नहीं, चाहे वे (थोड़े से विद्यार्थी) पाठशाला के प्रति-निधि ही क्यों न हों। इसी तरह दर्शनार्थ आनेवाली टीमों के मनोरंजन के ऊपर खेल के फ़ंड से ख़र्च की जानेवाली रक़म भी कड़ाई के साथ नियत कर दी जानी चाहिए। वह सिद्धान्त जिसके अनुसार विद्यार्थियों के इस प्रकार के सब फ़ंडों का प्रशासन होना चाहिए, बिलकुल सरल है। ये फ़ंड एक प्रकार की धरोहर हैं, जो किसी निश्चित उद्देश्य से जमा किये जाते हैं। इनका प्रयोग उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए होना चाहिए और किसी काम के लिए नहीं, और हरएक आदमी, जो फ़ंड के लिए चंदा देता है, इससे लाभ उठाने का अधिकारी है।

गृह-कार्य

पाठशाला में दिये गये गृह-कार्य को नियमित बनाने के लिए किसी विधि का

प्रयोग होना चाहिए। सबसे पहले प्रधान अध्यापक तथा अध्यापक-मंडल को आपस में यह तय कर लेना चाहिए कि प्रत्येक कक्षा से गृह-कार्य के ऊपर कितना समय ख़र्च करने की आशा की जाय और विभिन्न विषयों के बीच वह समय किस प्रकार विभाजित किया जाय, या उन विषयों के ऊपर जो नित्य पढ़ाये जाते हैं, कितना समय लगाया जाय। एक ख़तरा, जिससे बचने की ज़रूरत है और जो उस हालत में और भी अधिक हो जाता है जब कि विशेषज्ञ-अध्यापक-प्रणाली का प्रयोग किया जाता है, यह है कि विशेषज्ञ अध्यापक अपने विषय के प्रति होनेवाले जोश में आकर अत्यधिक गृह-कार्य दे दे, जैसा कि वह मामूली तौर से उस हालत में करता है जब कि उसके ऊपर कोई रोक-टोक नहीं होती, और वह यह भूल जाता है कि दूसरे विषय भी हैं, जिनके लिए तैयारी करनी है। परिणाम यह होता है कि गृह-कार्य बहुत ही ज़्यादा बढ़ जाता है। इस ख़तरे का सामना करने का एक उपाय यह है कि प्रत्येक कक्षा का मॉनिटर या प्रत्येक कक्षा की कक्षा-समिति का साहित्यिक सदस्य अपने पास एक नोटबुक रखे, जिसमें यह लिखा रहे कि गृह-कार्य के लिए कुल कितना समय देना है और सामने यह लिखा रहे कि प्रत्येक विषय के लिए कितना समय निर्धारित है। इसमें प्रत्येक अध्यापक प्रतिदिन यह लिख देता है कि वह कितना गृह-कार्य दे रहा है। इस प्रकार अध्यापकों के सम्मुख एक ही झलक में वह कार्य आ जाता है जो दूसरे विषयों में दिया गया है, और जो अध्यापक सबसे पहले (पढ़ाने के लिए) आता है उसको भी इस बात की याद आ जाती है कि उसके बाद दूसरे लोग भी आने को हैं और उसके पास केवल थोड़ा-सा ही समय ऐसा है, जिसके अन्दर वह गृह-कार्य करवा सकता है।

निश्चय ही सारे विद्यार्थी एक रफ़्तार से काम नहीं करते, पर अध्यापक स्वभावतः एक ऐसे विद्यार्थी को लेगा जो औसत चाल से काम करता है और एक निश्चित समय में करने के लिए दिये जानेवाले गृह-कार्य की मात्रा को उस कार्य की मात्रा पर आधारित करेगा जो कि इस प्रकार के विद्यार्थी द्वारा की जा सकती है।

मॉनिटर की नोट-बुक पर किस तरह से लिखा जायगा, यह सामने के पृष्ठ पर दिया जाता है।

कक्षा १०

विषय	निर्दिष्ट समय	दिया हुआ कार्य	अध्यापक के हस्ताक्षर
अंग्रेज़ी	१ घंटा	पाठ्य पुस्तक के दो पृष्ठ तैयार करो। दिये गये निबन्ध के ऊपर आध घंटे का काम।	ए. जी. ए. जी.
इतिहास	½ घंटा	निर्दिष्ट कार्य करना।	डब्ल्यू. पी. एम.
भूगोल	½ घंटा	निर्दिष्ट कार्य करना।	डब्ल्यू. पी. एम.
उर्दू	½ घंटा	पाठ्य पुस्तक के तीन पृष्ठ तैयार करो।	एफ़. एच.
फ़ारसी	½ घंटा	व्याकरण के ऊपर निर्देशित कार्य।	एफ़. एच.
विज्ञान	½ घंटा	निर्दिष्ट कार्य करना। पाठशाला में किये गये प्रयोग को लिखो।	टी. एस.
गणित-शास्त्र	½ घंटा	प्रस्तावना नं० ७ (Proposition No. 7) सीखो। अभ्यास नं० २ को हल करो।	डब्ल्यू. आर.

इस निर्देशन (allotment) में इतिहास और भूगोल हर तीसरे दिन पड़ते है और फ़ारसी तथा विज्ञान इसी तरह बारी-बारी से तीसरे दिन आते हैं। गृह-कार्य के ऊपर कुल ३ घण्टे का समय खर्च किया जाता है। कक्षा मैट्रिकुलेशन परीक्षा की तैयारी कर रही है।

रोक (Detention)

उन विद्यार्थियों से निपटने के लिए जो गृह-कार्य लापरवाही के साथ करके लाते हैं या गृह-कार्य के रूप में निर्धारित किये हुए कार्य को करने की परवाह ही नहीं करते, रोक एक मूल्यवान् साधन हो सकता है। अपराध का स्वाभाविक दंड यही है, क्योंकि ऐसा करने से यह बात पक्की हो जाती है कि जो काम नहीं किया गया है, वह कर लिया जायगा; और इस बात की ओर संकेत कर दिया जाता है कि यदि लापरवाही

के कारण अच्छी तरह से काम न किया जायगा तो परिणाम अरुचिकर होना अनिवार्य है। कारण, इस बात को तो प्रायः सभी लोग मान लेंगे कि रोक का नियम विद्यार्थियों और अध्यापकों--दोनों के लिए अरुचिकर है, पर विद्यार्थियों के लिए तो विशेषरूप से है। बुरे आचरण के लिए विद्यार्थियों को रोककर नहीं रखना चाहिए। सच तो यह है कि ऊपर बताये हुए दो कारणों को छोड़कर अन्य किसी भी कारण के लिए यह दंड न मिलना चाहिए। इन दो दोषों के लिए यह दंड न्यायोचित है और इसको इस रूप में स्वीकार किया जा सकता है। यदि इसका प्रयोग बुरे आचरण के दंड के रूप में किया जाता है तो पहली बात तो यह है कि अपराध और दंड के बीच कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है और दूसरी बात यह है कि पाठशाला के कार्य का प्रयोग दंड के रूप में किया जाता है (क्योंकि रोक के लिए हमेशा काम देना ज़रूरी है), जो एक ख़तरनाक चीज़ है। साथ ही साथ इस बात का भी भय है कि कहीं बालक के मन में इस तरह से दिये हुए कार्य के साथ एक अवांछनीय सम्बन्ध न स्थापित हो जाय। 'रोक' का प्रयोग केवल उस स्थान पर करना चाहिए, जहां न किये हुए काम को पूरा कराना हो।

यह आवश्यक नहीं कि 'रोक' की अवधि बड़ी लम्बी हो। समय तो स्थानीय परिस्थितियों के ऊपर निर्भर होगा। प्रायः पौन घंटे के लगभग सबसे अधिक उचित है। निश्चय ही किसी दशा में भी समय आध घंटे से कम न होना चाहिए। यह नित्य होना चाहिए, या कम-से-कम सप्ताह के पांच दिन तो अवश्य ही। एक अध्यापक को इस कार्य का भार दे देना चाहिए और एक ऐसा सूचीपत्र तैयार कर लेना चाहिए, जिसमें बारी-बारी से काम करनेवाले अध्यापकों के नाम लिखे हुए हों, ताकि अध्यापकों को बारी बारी से इस कार्य का उत्तरदायित्व मिले। यदि वे चाहें तो इस समय का प्रयोग कापियां जाँचने के लिए कर सकते हैं। हाँ, इतना निश्चय है कि उचित निरीक्षण होना आवश्यक है।

एक रजिस्टर रखना चाहिए, जिसमें दिन भर में प्रत्येक अध्यापक, जो अपने विद्यार्थियों को 'रोक' की सज़ा देना चाहता है, विद्यार्थियों के नाम कक्षा और वह काम जो वह उनको 'रोक' के समय के लिए देता है, दर्ज कर दे। दर्ज करने के बाद वह अपने हस्ताक्षर भी कर देगा। जो अध्यापक रोक का अध्यक्ष होगा, वह सबकी हाज़िरी लेगा और यदि कोई अनुपस्थित होगा तो उसकी रिपोर्ट प्रधान

अध्यापक के पास करेगा। जहाँ तक सम्भव हो, रोक में काम करने के लिए लिखित कार्य दिया जाना चाहिए। इसका निरीक्षण करना कहीं अधिक सरल है और जो कुछ कर लिया गया है, उसकी जाँच करना भी कहीं अधिक सरल है। हरएक लड़के को अवरोध-कक्ष छोड़ने के पूर्व अपने किये हुए काम पर, उस अध्यापक के हस्ताक्षर करवा लेना चाहिए, जो उस समय अध्यक्ष हो।

साप्ताहिक विवरण

प्रधान अध्यापक के लिए इस बात का ठीक अन्दाज़ लगाना बड़ा कठिन है कि विभिन्न कक्षाओं में कमजोर विद्यार्थियों के ऊपर कितना ध्यान दिया जा रहा है और साथ-साथ विद्यार्थी स्वयं कितना प्रयास कर रहे हैं। [illegible] प्रकार के विद्यार्थियों को तथा अध्यापकों को भी प्रोत्साहन देने के लिए और [illegible]द्यार्थी सारे विषयों में क्या करता रहा है या क्या नहीं करता रहा है, इस ब[illegible] की [illegible]र से एक झलक पाने के साधन के रूप में साप्ताहिक विवरण का बड़ा मूल्य है। अगल पृष्ठ पर दिखाया गया है कि साप्ताहिक विवरण का क्या रूप होना चाहिए।

यह उन विद्यार्थियों को दिया जाता है जो कमजोर हों या जो अपने आप मेहनत न करते हों। अध्यापकों की सिफ़ारिशों, स्वयं अपने निरीक्षण और पहली तिमाही के परीक्षाफलों के आधार पर प्रधान अध्यापक इस बात का निर्णय करता है कि प्रत्येक कक्षा में किन-किन विद्यार्थियों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इसके बाद इन विद्यार्थियों को साप्ताहिक विवरण की सूची में रख लिया जाता है प्रत्येक सप्ताह के अन्त में उन्हें पाठशाला कार्यालय से एक खाली (blank) विवरण-फ़ॉर्म (report form) मिलता है और सप्ताह के अन्तिम दिन अध्यापकगण उसको भरकर अपने हस्ताक्षर सहित दे देते हैं। प्रत्येक विद्यार्थी को अपने विवरण पर उन अध्यापकों में से, जिनके साथ वह काम करता है, हरएक अध्यापक के हस्ताक्षर अवश्य ले लेना चाहिए। इसके बाद सोमवार को प्रातःकाल को हाजिरी के समय ये विवरण वापस कर दिये जाते हैं और प्रधान अध्यापक अपने खाली समय में उनको देख डालता है। जहाँ कहीं उसे लगता है कि काम खराब हो रहा है या कुछ काम हो ही नहीं रहा है, वहाँ वह जो कुछ और ठीक समझे, कर सकता है।

साप्ताहिक विवरण

यह उन विद्यार्थियों को दिया जाता है, जिनका काम असन्तोषजनक है या जो ठीक से काम नही करते, और सब कुछ भर देने के बाद यह प्रति सप्ताह सोमवार को प्रातःकाल प्रधान अध्यापक को दे दिया जाता है।

नाम..... घर.....

उपस्थिति: { कुल उपस्थितियाँ..... कक्षा..... / सम्भावित उपस्थितियाँ.....

विषय	लिखित कार्य के लिए अंक १	२	३	कक्षा में मौखिक कार्य	अध्यापक की सिफ़ारिशें और सामान्य निरूपण (remark)
अंग्रेजी { अ / ब					
गणित-शास्त्र					
उर्दू					
फ़ारसी					
विज्ञान					
कृषि					
इतिहास					
भूगोल					
ड्राइंग					
ग्राम्य विज्ञान					
दस्तकारी { दर्जीगीरी, बढ़ईगीरी, कपड़ा बुनाई					

गृह-शिक्षक के निरूपण.....

कक्षा-समिति की सिफ़ारिशें.....

.....

फलस्वरूप साप्ताहिक विवरण किसी निश्चित अवधि के लिए न देना चाहिए, हालांकि कुछ खास मामलों को छोड़कर यह अवधि कम से कम चार सप्ताह होगी। परन्तु विद्यार्थियों को यह बात समझ लेनी चाहिए कि ज्योंही वे उन्नति करना आरम्भ कर देंगे और काम ठीक से करने लगेंगे, त्योंही विवरण बंद हो जायँगे। हर मामले में इस बात का निर्णय प्रधान अध्यापक ही करेगा कि विवरण कब बन्द किये जायँ। अध्यापकों के मन में, विशेष रूप से जूनियर अध्यापकों के मन में यह बात अच्छी तरह से बिठा देनी चाहिए कि उन्हें अपना सच्चा एवं न्यायपूर्ण मत देना है, और यह चीज़ विद्यार्थी की वास्तविक भलाई के लिए है। यदि विद्यार्थी ठीक से काम नहीं कर रहा है तो उस दशा में केवल इस विचार से कि वह साप्ताहिक विवरण प्राप्त करने से बच जाय, अच्छी रिपोर्ट दे देने से उसको कोई वास्तविक लाभ नहीं हो पाता।

उन्नति-विवरण

उन्नति-विवरण स्थायी ढंग के विवरण होते है, जो पाठशाला में रखे जाते हैं और यदि विद्यार्थी दूसरी पाठशाला को जाता है तो उसके साथ भेज दिये जाते हैं या विद्यार्थी को उस समय दे दिये जाते हैं जब वह निश्चित रूप से पाठशाला का त्याग करता है। वे एक किताब की शकल में होते हैं, जिसके अन्दर विद्यार्थी की पाठशाला-जीवनवृत्ति (school career) के प्रति वर्ष की हर तिमाही के लिए पृष्ठ होते हैं। इसके अन्दर तिमाही परीक्षा में प्राप्त होनेवाले अंक, यदि अंक दिये गये हैं तो, या इसी तरह के कोई और संकेत, जिनका प्रयोग विभिन्न विषयों में होनेवाली उन्नति को दिखाने के लिए किया जाता है, लिखे जाते हैं। परीक्षाफलों के साथ-साथ तौल में वृद्धि, छाती की नाप और इसी तरह की दूसरी चीज़ों से सम्बन्ध रखनेवाले तमाम विस्तृत विवरण, जो मूल्यवान् समझे जाते हैं, हर तिमाही में लिख दिये जाते हैं। हर तिमाही में कक्षा-अध्यापक या गृह-शिक्षक, पृष्ठ के अन्तिम भाग पर विद्यार्थी के सामान्य चरित्र तथा विकास के सम्बन्ध में जो भी निरूपण करना चाहे, कर देता है, और उसके ऊपर प्रधान अध्यापक द्वारा किये जानेवाले निरूपण के लिए भी जगह होती है। पुस्तक के ऊपर हर तिमाही में अध्यापक, छात्रावास-निरीक्षक (यदि विद्यार्थी छात्रावास में रहता है) और प्रधान अध्यापक के हस्ताक्षर होने चाहिए। प्रधान अध्यापक जो कोई निरूपण करना चाहे, वह भी कर सकता है। इस प्रकार से उन्नति-

साप्ताहिक विवरण

यह उन विद्यार्थियों को दिया जाता है, जिनका काम असन्तोषजनक है या जो ठीक से काम नहीं करते, और सब कुछ भर देने के बाद यह प्रति सप्ताह सोमवार को प्रातःकाल प्रधान अध्यापक को दे दिया जाता है।

नाम ..... घर .....

उपस्थिति: { कुल उपस्थितियाँ ..... कक्षा .....
सम्भावित उपस्थितियाँ .....

विषय	लिखित कार्य के लिए अंक १	२	३	कक्षा में मौखिक कार्य	अध्यापक की सिफ़ारिशें और सामान्य निरूपण (remark)
अंग्रेज़ी { अ					
अंग्रेज़ी { ब					
गणित-शास्त्र					
उर्दू					
फ़ारसी					
विज्ञान					
कृषि					
इतिहास					
भूगोल					
ड्राइंग					
ग्राम्य विज्ञान					
दस्तकारी { दर्जीगीरी, बढ़ईगीरी, कपड़ा बुनाई					

गृह-शिक्षक के निरूपण .....

कक्षा-समिति की सिफ़ारिशें .....

फलस्वरूप साप्ताहिक विवरण किसी निश्चित अवधि के लिए न देना चाहिए, हालांकि कुछ खास मामलों को छोड़कर यह अवधि कम से कम चार सप्ताह होगी। परन्तु विद्यार्थियों को यह बात समझ लेनी चाहिए कि ज्योंही वे उन्नति करना आरम्भ कर देंगे और काम ठीक से करने लगेंगे, त्योंही विवरण बंद हो जायँगे। हर मामले में इस बात का निर्णय प्रधान अध्यापक ही करेगा कि विवरण कब बन्द किये जायँ। अध्यापकों के मन में, विशेष रूप से जूनियर अध्यापकों के मन में यह बात अच्छी तरह से बिठा देनी चाहिए कि उन्हें अपना सच्चा एवं न्यायपूर्ण मत देना है, और यह चीज़ विद्यार्थी की वास्तविक भलाई के लिए है। यदि विद्यार्थी ठीक से काम नहीं कर रहा है तो उस दशा में केवल इस विचार से कि वह साप्ताहिक विवरण प्राप्त करने से बच जाय, अच्छी रिपोर्ट दे देने से उसको कोई वास्तविक लाभ नहीं हो पाता।

उन्नति-विवरण

उन्नति-विवरण स्थायी ढंग के विवरण होते हैं, जो पाठशाला में रखे जाते हैं और यदि विद्यार्थी दूसरी पाठशाला को जाता है तो उसके साथ भेज दिये जाते हैं या विद्यार्थी को उस समय दे दिये जाते हैं जब वह निश्चित रूप से पाठशाला का त्याग करता है। वे एक किताब की शकल में होते हैं, जिसके अन्दर विद्यार्थी की पाठशाला-जीवनवृत्ति (school career) के प्रति वर्ष की हर तिमाही के लिए पृष्ठ होते हैं। इसके अन्दर तिमाही परीक्षा में प्राप्त होनेवाले अंक, यदि अंक दिये गये हैं तो, या इसी तरह के कोई और संकेत, जिनका प्रयोग विभिन्न विषयों में होनेवाली उन्नति को दिखाने के लिए किया जाता है, लिखे जाते हैं। परीक्षाफलों के साथ-साथ तौल में वृद्धि, छाती की नाप और इसी तरह की दूसरी चीज़ों से सम्बन्ध रखनेवाले तमाम विस्तृत विवरण, जो मूल्यवान् समझे जाते हैं, हर तिमाही में लिख दिये जाते हैं। हर तिमाही में कक्षा-अध्यापक या गृह-शिक्षक, पृष्ठ के अन्तिम भाग पर विद्यार्थी के सामान्य चरित्र तथा विकास के सम्बन्ध में जो भी निरूपण करना चाहे, कर देता है, और उसके ऊपर प्रधान अध्यापक द्वारा किये जानेवाले निरूपण के लिए भी जगह होती है। पुस्तक के ऊपर हर तिमाही में अध्यापक, छात्रावास-निरीक्षक (यदि विद्यार्थी छात्रावास में रहता है) और प्रधान अध्यापक के हस्ताक्षर होने चाहिए। प्रधान अध्यापक जो कोई निरूपण करना चाहे, वह भी कर सकता है। इस प्रकार से उन्नति-

विवरण एक ऐसी पुस्तक है, जिसमें विद्यार्थी के पाठशाला-जीवन की हर तिमाही का लेख-प्रमाण (record) एक-एक पृष्ठ पर दिया होता है। जब विद्यार्थी अपनी पाठशाला बदलता, या जब वह पाठशाला छोड़ रहा हो और प्रधान अध्यापक से अपने लिए एक सिफ़ारिश लिखवाना चाहता हो, उस समय यह उन्नत्ति-विवरण बहुत काम आता है। विवरण स्वयं भी एक प्रकार की सिफ़ारिश है और आगे चलकर जो लोग विद्यार्थी को नौकरी देते हैं, उनको इसकी सहायता से उसके चरित्र एवं योग्यता का कुछ अन्दाज़ लग जाता है।

भवन-प्रणाली

पाठशाला भवनों में विभाजित होनी चाहिए। यहाँ पर इससे कोई मतलब नहीं कि पाठशाला में छात्रावास है या वह दैनिक पाठशाला है या उसमें दोनों ही बातों की मिलावट है। मामूली तौर से दो या चार या कोई यौगिक-संख्यक भवनों का होना ज्यादा अच्छा है। यदि भवन यौगिक संख्या में हैं तो विभिन्न प्रकार की स्पर्द्धाओं का प्रबन्ध करने में रूढ़ि-संख्यक भवनों की अपेक्षा कहीं अधिक सरलता होगी। भवनों की संख्या पाठशाला के विद्यार्थियों की संख्या के ऊपर निर्भर होगी, पर भवन के विद्यार्थियों की संख्या साठ या सत्तर से अधिक न होनी चाहिए। भवनों का विभाजन लम्बरूप होगा, अर्थात् प्रत्येक भवन में एक ही कक्षा के बालक होंगे। प्रत्येक भवन के अध्यक्ष के रूप में कम से कम दो अध्यापक होने चाहिए, जो भवन-शिक्षक होंगे और जिनका कर्तव्य होगा—अपने-अपने भवन के सदस्यों के साथ व्यक्तिगत रूप से यथासम्भव निकटतम सम्बन्ध स्थापित करना। वे निर्देशक एवं सहायक के रूप में कार्य करेंगे।

प्रत्येक भवन का अपना संगठन होना चाहिए, जिसके अन्तर्गत एक भवन-समिति और एक सभापति, मंत्री तथा इसी प्रकार के अन्य इच्छित पदाधिकारी हों, और सबका निर्वाचन भवन द्वारा किया जाय। शिक्षकों को चाहिए कि वे भवन के सदस्यों को उनके अपने मामलों का प्रबन्ध करने के लिए यथासम्भव जितनी स्वतंत्रता दे सकें, दे दें। भवनों की बैठकें नियमित रूप से होती रहना चाहिए। पूरे दिन के या आधे दिन के स्कूल में ये बैठकें दस या पंद्रह मिनट की की जा सकती हैं। यह थोड़ा-सा समय सप्ताह में एक या दो बार, दिन में जिस समय भी सुविधा हो, मामूली काम से अवकाश के रूप में निर्दिष्ट किया जा सकता है, और शनिवार को, जब आधे दिन की छुट्टी होती है, स्कूल के अन्त में इन बैठकों के लिए ज्यादा लम्बा समय दिया

जा सकता है। इस समय का उपयोग किसी भी ऐसी चीज़ के लिए किया जा सकता है जो भवन के कल्याण, संगठन तथा क्रियाओं से सम्बन्धित हो। लम्बी बैठकों का प्रयोग किसी साहित्यिक कार्यक्रम, वादविवाद-प्रतियोगिता, पत्र-पाठ, नाटक आदि के लिए किया जा सकता है। समय-समय पर बाहरवालों को किसी ऐसे विषय पर भाषण देने के लिए बुलाया जा सकता है, जिसमें भवन की रुचि हो।

खेल के अध्याय में (अध्याय १० देखो) जैसा सुझाया जायगा, खेलों की स्पर्द्धाओं के सम्बन्ध में भवन व्यवस्था का प्रयोग बड़े लाभदायक ढंग से किया जा सकता है। खेलों के सम्बन्ध में भी विद्यार्थियों को अपने लिए नहीं, वरन् अपने भवन के लिए, स्पर्द्धा करने की प्रशिक्षा देने के लिए, यह बहुत उपयोगी है। खेल-दिवस पर बिन्दु उस भवन को प्रदान किये जाते हैं, जिसकी ओर से दौड़ में भाग लेनेवाले दौड़ते हैं। और इस तरह से स्पर्द्धा व्यक्तियों के बीच की स्पर्द्धा न रहकर भवनों के बीच होनेवाली स्पर्द्धा बन जाती है। भवन-व्यवस्था का प्रयोग पाठशाला-कार्य में कक्षाओं तथा पूरी पाठशाला, दोनों में होनेवाली स्पर्द्धा के लिए भी किया जा सकता है।

कई तरह से भवन-व्यवस्था कक्षा-व्यवस्था को ढक लेगी। प्रत्येक कक्षा में सभी भवनों के सदस्य होंगे, और इसीलिए वहां पर कक्षा की एकता को भंग करने की प्रवृत्ति होगी। यदि एक ओर कक्षा-व्यवस्था कई तरह से लाभदायक है, विशेष रूप से छोटी कक्षाओं में, तो दूसरी ओर भवन-व्यवस्था से उससे भी अधिक लाभ हैं, और वह उससे अधिक लाभदायक है। जैसा पद्रहवें अध्याय में सुझाया गया है, प्रत्येक भवन को अपना पितृ-दिवस मनाना चाहिए और किये हुए कार्य की प्रदर्शनी करनी चाहिए।

वाचनालय

पाठशाला में दो अलग-अलग वाचनालय होने चाहिए। एक तो अध्यापकों का वाचनालय, जिसका प्रतिपादन तथा व्यय अध्यापकवर्ग के चंदे एवं पाठशाला की प्रबन्धकारिणी द्वारा दी गई आर्थिक सहायता से होता है; और दूसरा विद्यार्थियों का वाचनालय, जिसका प्रतिपादन एवं व्यय विद्यार्थियों द्वारा चुकाये जानेवाले वाचनालय-शुल्क तथा प्रबन्धकारिणी द्वारा दी गई आर्थिक सहायता से होता है।

प्रधान अध्यापक तथा अध्यापक-मंडल के लिए यह देखना बहुत ज़रूरी है कि अध्यापक-वाचनालय समय के साथ-साथ चल रहा है और उसका उपयोग किया जाता

है। विभिन्न विभागों को अपने विषय-विशेष से सम्बन्धित उन नई-नई किताबों से सम्पर्क बनाये रखना चाहिए, जो आये दिन निकलती रहती हैं, और अध्यापक-मंडल की बैठक के जरिये से वाचनालय के लिए ख़रीदी जानेवाली पुस्तकों की सिफ़ारिश करते रहना चाहिए। प्रधान अध्यापक को इस बात का प्रबन्ध करने के लिए भरसक प्रयत्न करना चाहिए कि वाचनालय में निरन्तर नई पुस्तकें ख़रीदी जाती रहें, चाहे वे सारी की सारी किताबें बहुत उच्चकोटि की न भी हों। उसको यह देखने के लिए भी भरसक चेष्टा करनी चाहिए कि पुस्तकें पढ़ी जाती हैं।

विद्यार्थियों के वाचनालय की व्यवस्था दो में से किसी एक ढंग से की जा सकती है। या तो समस्त कक्षाओं के लिए सारी पुस्तकें एकत्र कर ली जायँ और सब एक ही कमरे में—वाचनालय या पढ़ने के कमरे में—रख दी जायँ; या कक्षा-वाचनालय-प्रणाली का प्रयोग किया जाय, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक कक्षा के पास अपना वाचनालय स्वयं अपनी ही कक्षा में हो। यह भी सम्भव है कि दोनों प्रणालियों को संयुक्त कर दिया जाय।

जहाँ विषय-कक्षों का प्रयोग किया जाता है, वहाँ उस प्रणाली को काम में लाना ज़रा मुश्किल ही होता है, जिसके अनुसार प्रत्येक कक्षा का अपना वाचनालय उसके अपनी ही कक्ष में होता है। जैसा पहले बताया जा चुका है, विभिन्न विषय-कक्षों को विभिन्न कक्षाओं के अपने कक्षा-कक्षों के रूप में निर्दिष्ट कर देने से ऐसा किया जा सकता है। फिर भी यह सम्भव है कि एक ही वाचनालय या पुस्तकालय में सब किताबें रख दी जायँ और अलग-अलग कक्षाओं की पुस्तकें विभिन्न अलमारियों में अलग रखी रहें। इसका मतलब यह हुआ कि पुस्तकें कक्षा-वाचनालयों में विभाजित तो रहती हैं, पर रखी सब एक ही कमरे में जाती हैं। इससे यह लाभ होता है कि जब कोई कक्षा मौन पाठ के लिए कमरे का प्रयोग करती है, तो उन विद्यार्थियों को जो पढ़ने में कमजोर हैं, उस कक्षा के पुस्तकालय की किताबें दी जा सकती हैं जो उनसे नीचे की हों, और उन विद्यार्थियों को जो पढ़ने में विशेषरूप से अच्छे हैं, उस कक्षा के पुस्तकालय की पुस्तकें दी जा सकती हैं जो उनसे आगे की हों। इस तरीक़े से ख़र्च की बचत होती है, क्योंकि प्रत्येक कक्षा के वाचनालय को उतना बड़ा इन्तज़ाम नहीं करना पड़ता, जितना कि उसे उस हालत में करना पड़ेगा, जब कि वह एक अलग इकाई हो। वाचनालय होने से एक लाभ और है—वह यह कि संदर्भ पुस्तकें, पत्रिकाएँ, समाचार-

पत्र तथा नियत अवधि पर निकलनेवाली पत्रिकाएँ सभी को प्राप्त हो सकती हैं। यदि कक्षा-वाचनालयों को अलग रखने की प्रणाली हो, और पढ़ने के लिए कोई कमरा न हो तो ऐसा करना कठिन हो जायगा। यह सम्भव है कि कक्षा के कमरों में अलग-अलग कक्षा-वाचनालय हों, और साथ ही साथ पढ़ने का एक कमरा भी हो। पर यह पद्धति बड़ी ख़र्चीली है और इसको अपनाने का मतलब यह है कि पुस्तकों के ऊपर जितना धन व्यय किया जाता है, उससे कहीं अधिक धन खर्च किया जाय। विद्यार्थियों के लिए एक ऐसे सामान्य पुस्तकालय की सिफ़ारिश न करनी चाहिए, जिसमें कक्षाओं के अनसार पुस्तकों का वर्गीकरण करने के लिए कोई प्रयास न किया जाय।

वाचनालय में पढ़ने का वातावरण पैदा करने के लिए कुछ प्रयत्न करना चाहिए, और उसको किताबों के साथ-साथ चित्रों से भी भरा हुआ होना चाहिए। इस वाचनालय का उपयोग मौक़ा पड़ने पर नाटक वग़ैरह के लिए भी किया जा सकता है।

पाठ्य-क्रम

हर तिमाही के आरम्भ में प्रत्येक अध्यापक को अपनी हरएक कक्षा के लिए, जिसे वह पढ़ाता है, तिमाही भर का पाठ्य-क्रम तैयार कर लेना चाहिए। यह आवश्यक है कि यह पाठ्य-क्रम प्रधान अध्यापक द्वारा स्वीकृत हो और उस कमरे में टाँग दिया जाय, जहाँ अध्यापन-कार्य सम्पन्न होता है। यह पाठ्य-क्रम कुछ विस्तृत रूप में तैयार किया जाना चाहिए। तिमाही भर में जितने पृष्ठ या जितने पाठ पढ़ाने हैं, उनकी एक सूचीमात्र तैयार कर लेना न तो पर्याप्त है और न उससे कोई लाभ ही है। जो काम करना है, उसकी काफ़ी मात्रा में एक निश्चित रूपरेखा देने का कुछ प्रयास तो अवश्य किया जाना चाहिए। अन्यथा अध्यापन-कार्य बिगड़ जाने का भय है।

तिमाही आरम्भ होने के पूर्व प्रत्येक अध्यापक के पास इस बात की एक निश्चित योजना होनी चाहिए कि वह क्या पढ़ाने जा रहा है, और वह योजना है—उसका पाठ्य-क्रम। उदाहरण के लिए अंगरेज़ी की कक्षा में, व्याकरण और निबन्ध के सिल-सिले में, अध्यापक के पास व्याकरण के कुछ निश्चित अंश, कहावतों की एक निश्चित सूची, अभ्यासों की एक निश्चित सूची, निबन्धों के लिए विषयों की एक निश्चित सूची

अथवा परिच्छेद, जिनको पढ़ाने की वह आशा करता है, मौजूद रहेंगे। ये चीजें उसके पाठ्य-क्रम में सावधानी के साथ लिखी जानी चाहिए। विज्ञान-अध्यापक के पास कुछ निश्चित नियम एवं सिद्धान्त, निश्चित प्रयोग तथा व्यावहारिक कार्य होंगे, जिनको लेकर चलने की वह आशा करता है, और इसी तरह से दूसरे अध्यापकों के लिए भी होगा। ये ही सब चीजें पाठ्य-क्रम के अन्तर्गत होती हैं। इसलिए यह ज्यादा अच्छा है कि पाठ्य-क्रम अत्यधिक विस्तृत रूप में हो, बजाय इसके कि वह आवश्यकता से अधिक साधारण हो।

यदि निर्देशन-प्रणाली का प्रयोग किया जाता है तो उन निर्देशनों की फ़ाइल, जिन्हें अध्यापक साधारण विद्यार्थी से तिमाही के भीतर पूरा करवाने की आशा रखता है, पाठ्य-क्रम का काम देगी।

कभी-कभी अध्यापकों को रोज़नामचा रखने से बड़ी सहायता मिलती है। इनमें पहले वर्ष भर का पाठ्य-क्रम लिख लिया जाता है, उसके बाद तिमाही के आरम्भ में हर तिमाही का पाठ्य-क्रम अलग कर लिया जाता है, और रोज़नामचे में चढ़ा लिया जाता है। हर सप्ताह के अन्त में अध्यापक अपने रोज़नामचे में उस कार्य का संक्षिप्त विवरण लिखता है, जिसको उसने सप्ताह भर में पूरा किया है। ऐसे रोज़नामचे कार्य को नियमित बनाने और अध्यापक को इस बात की जाँच करने में समर्थ बनाने के लिए कि वह कितनी उन्नति कर रहा है, सहायक होते हैं। इनकी मदद से प्रधान अध्यापक भी इस बात की जाँच कर सकता है कि क्या हो रहा है।

दूसरा उपाय, जिसका प्रयोग कभी-कभी किया जाता है, यह है कि अध्यापकों को सप्ताह के अन्त मे किये हुए कार्य का संक्षिप्त विवरण लिखने के स्थान पर पाठों का अध्यापन करने के पूर्व, अपने रोज़नामचो में पाठों का संक्षिप्त विवरण--पाठ-लेख लिखने का आदेश दिया जाय। नये और अल्पायु अध्यापकों के मामले में यह विधि लाभप्रद होती। फिर भी इस तरह की किसी योजना में यह देखने के लिए सावधान रहना चाहिए कि अध्यापक के ऊपर काम का अत्यधिक बोझ तो नही है।

परीक्षाएँ*

वाह्य परीक्षाएँ और उनसे लाभ, उनकी आवश्यकता, उनका स्वरूप और

---

* डब्ल्यू० एम० राइबर्न का दि प्रोग्रेसिव स्कूल, अध्याय पंद्रह, (आक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रस) देखो।

उनकी निर्दोषिता, इस पुस्तक के क्षेत्र से बाहर की चीजें हैं। पर हाँ, आन्तरिक परीक्षाएँ तो प्रत्येक पाठशाला के कार्य एवं व्यवस्था का अंग होती हैं, और उनकी आवश्यकता के विषय में कोई प्रश्न उठ ही नहीं सकता। यदि उनका प्रयोग व्यावहारिक ज्ञान के आधार पर किया जाय तो उनसे होनेवाली हानि बहुत कुछ कम की जा सकती है।

परीक्षा देते समय दो मुख्य सिद्धान्तों की सहायता हमें लेनी चाहिए। पहली बात तो यह है कि हमको यह जानने का प्रयत्न करना चाहिए कि विद्यार्थी कितना जानता है, यह जानने का नहीं कि वह कितना नहीं जानता। दूसरी बात यह कि हमको, विद्यार्थी को तथ्यों का कितना ज्ञान है, इस बात की परीक्षा लेने के लिए उतनी अधिक चेष्टा न करनी चाहिए, जितनी कि तथ्यों का प्रयोग करने की उसकी क्षमता की--अर्थात्, अपने लिए कार्य करने और विचारने की उसकी योग्यता की। इस कारण उस ढग की परीक्षा की सिफ़ारिश की जा सकती है, जिसमें विद्यार्थी को परीक्षा के समय कोई भी पुस्तक या दूसरी तरह की सहायता जो वह लेना चाहता है, ले लेने की सर्ववृत्ति मिल जाती है। हाँ, जो पर्चा बनाया जायगा, उसकी शैली मामूली तौर पर बनाये जानेवाले पर्चे से कहीं भिन्न ज़रूर होगी।

पाठशाला मे परीक्षाओं को ऐसे सुयोगों के रूप में देखना चाहिए जब कि पढ़ाई हुई चीजों को दुहराया जा सकता है और इस बात की जाँच की जा सकती है कि कितना काम पूरा हो चुका है। वे छोटी होनी चाहिए और निर्धारित की हुई एक कठिन परीक्षा की तरह भयकर न होकर, जैसा साधारण रूप से पाया जाता है, उन्हें सप्ताह के अन्त या पखवारे के अन्त में होनेवाली परीक्षाओं की तरह सरल होना चाहिए। विभागीय नियमों के अनुसार तिमाही परीक्षाएँ होना आवश्यक हैं, पर इसकी ज़रूरत नहीं कि वे एक दलदल की तरह हों, जैसा कि उनको प्रायः बना दिया जाता है। उन्हें सप्ताह के साधारण कार्य का एक अंग बनाया जा सकता है, और उस हालत में उनकी हानि पहुंचाने की अधिकांश शक्ति का क्षय हो जायगा। यदि ऊपर दिये हुए दोनों सिद्धान्तों का पालन किया जाय तो परीक्षाओं में कोई दोष न रह जायगा।

इन सिद्धान्तों में से पहले सिद्धान्त का आदि से लेकर अन्त तक अनुसरण करने की चेष्टा करते समय मौखिक परीक्षाओं के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा सकता है। सिद्धान्त है--परीक्षा द्वारा यह जानने का प्रयास करना चाहिए कि विद्यार्थी कितना

जानता है, यह जानने का नहीं कि वह कितना नहीं जानता। एक ऐसा लड़का जो अंगरेजी में अपने अधूरे ज्ञान के कारण, इतिहास के प्रश्नपत्र में धर्म-सुधार (reformation) के ऊपर एक लम्बा-सा उत्तर लिख आता है, जब कि प्रश्न में पुनःस्थापन (restoration) के विषय में पूछा गया था, उस हालत में कहीं ज़्यादा अच्छा काम करता जब कि परीक्षा मौखिक होती। ज्ञान के इस प्राथमिक अभाव के कारण निश्चय ही वह प्रश्न के ऊपर मिलनेवाले समस्त अंकों को न खो बैठता। इस तरह के अनेकानेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनमें एक विद्यार्थी लिखित परीक्षा में बहुत ही ख़राब अंक प्राप्त करता है, पर वही परीक्षा जब मौखिक ली जाती है और परीक्षक इस बात को जानने के लिए उद्विग्न रहता है कि परीक्षार्थी वास्तव में कितना जानता है, तब वही विद्यार्थी कहीं अधिक ऊँचे अंक प्राप्त कर लेता है। वाह्य परीक्षाओं में मौखिक परीक्षाएँ देना सम्भव नहीं, परन्तु पाठशाला में हम इसको काफ़ी मात्रा में ले सकते हैं, और अध्यापक तथा विद्यार्थी, दोनों ही के लिए यह कहीं अधिक संतोषजनक है। कम से कम विद्यार्थी यह जानता है कि उसे हर तरह से अवसर मिला। बहुत से विद्यार्थी ऐसे होते हैं, जिनके ऊपर घबराहट के कारण उल्टा असर होता है और इसलिए वे मौखिक परीक्षा से उतना लाभ नहीं उठा पाते, जितना उन्हें उठाना चाहिए। ऐसे मामलों में अध्यापक अपनी विवेक-बुद्धि का प्रयोग करके लिखित कार्य दे सकता है।

इस प्रकार के प्रश्नपत्र का विकास करने के प्रयास किये जा रहे हैं, जिसमें अंकदान मामूली तौर से प्रचलित प्रणाली के अन्तर्गत सम्भवतः जितना न्यायपूर्ण हो सकता है उससे कहीं अधिक न्यायपूर्ण हो जाने की गारंटी हो जायगी। उस अध्यापक को जो इस नये ढंग के परीक्षा-प्रश्नपत्र में रुचि रखता है, डा० बैलार्ड (Ballard) की पुस्तक (दि न्यू इक्ज़ैमिनर*) (The New Examiner) पढ़नी चाहिए। उसमें उसे एक ऐसे प्रश्न के सम्बन्ध में अनेक सुझाव प्राप्त होंगे जो अधिक निश्चित ढंग का होगा और जिसमें अंकदान व्यक्तिगत-निर्णय के तत्त्व का प्रयोग किये बिना ही अधिक निश्चित रूप से किया जा सकेगा।

इस प्रकार के प्रश्नों के तीन मुख्य प्रकार हैं:—

---

* यूनिवर्सिटी ऑफ़ लंदन प्रेस।

१. सच-झूठ की परीक्षा.

बहु संख्यक उक्तियाँ लिख दी जाती हैं, जिनमें से कुछ सच्ची होती हैं और कुछ झूठी। विद्यार्थी से जो सच हों, उनके सामने 'हाँ' और जो झूठ हों, उनके सामने 'नहीं' लिखने के लिए कह दिया जाता है। उदाहरण के लिए इतिहास में हम नीचे दिये हुए ढंग की उक्तियाँ रख सकते हैं:—

बाबर ने इब्राहीम लोदी को पानीपत की दूसरी लड़ाई में हराया। बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया गया था।

वह राना साँगा के हाथों बुरी तरह से परास्त हुआ था।

उसकी मृत्यु होने पर उसके वंश का अन्त कर दिया गया।

अपने समय में वह दया के लिए प्रसिद्ध था।

इस प्रकार के कुछ प्रश्नों के उत्तरों में नम्बर उतने ही निश्चित रूप से दिये जा सकते हैं, जितने कि गणित के सवालों के उत्तर में। जहां अन्दाज़ लगाना हो, वहां विद्यार्थियों से यह कहा जा सकता है कि वे केवल उन्हीं उक्तियों पर विचार करें, जिनके विषय में वे निश्चित हैं। यदि वे अशुद्ध उत्तर लिखेंगे तो उन्हें घटाव में नम्बर (minus mark) मिलेंगे।

इस प्रकार की परीक्षा के साथ-साथ मौखिक परीक्षा भी दे देना अच्छा होता है। यदि ऐसा किया जाता है तो साधारण निबन्ध के ढंग के प्रश्नपत्र से कक्षा का जितना मूल्यांकन हो सकता है, उससे कहीं अधिक यथार्थ मूल्यांकन अवश्य ही प्राप्त हो जायगा।

२. रिक्त स्थानों की पूर्ति.

इस ढंग के प्रश्न में परीक्षार्थी को रिक्त स्थानों की पूर्ति करनी पड़ती है। पूरा किया हुआ परिच्छेद इतिहास, भूगोल या अंग्रेज़ी आदि, जो भी विषय हो उसके छूटे हुए तथ्यों को परीक्षार्थी पूरा करता है।

उदाहरण के लिए हमारे पास इस प्रकार का परिच्छेद हो सकता है, जैसा नीचे दिया गया है:—

क्लाइव भारत·····में लौटा। उसने ·····लड़ाई·····में लड़ी और सिराजुद्दौला को परास्त किया। फलस्वरूप अंग्रेज़ों का·····पर अधिकार हो गया।

३. चुनाव.

इस तरह के प्रश्न देने के कई तरीक़े हैं। एक सूची में बहुत-सी चीज़ें दी जा सकती हैं और दूसरी सूची में उनके विषय में उक्तियां दी जा सकती हैं। इस सूची का क्रम पहली सूची के क्रम के अनुरूप नहीं होता। विद्यार्थी को उक्ति उस वस्तु के साथ जोड़नी पड़ती है, जिसके लिए वह (उक्ति) लागू होती है।

उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी व्याकरण में:—

१. संज्ञा।	५. किसी के विषय में कुछ बताता है।
२. सकर्मक क्रिया।	६. दो वाक्यों को एक साथ जोड़ता है।
३. विशेषण।	७. किसी वस्तु का नाम होता है।
४. संयोजक।	८. इसका प्रयोग कर्मवाच्य में किया जाता है।

उत्तर इस प्रकार होंगे:—१–७, २–८, ३–५, ४–६। चुनाव का दूसरा तरीक़ा यह है कि कई एक विकल्प दे दिये जाते हैं और रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिए या वाक्य को पूरा करने के लिए उनमें से एक छाँट लिया जाता है। परीक्षार्थी से शुद्ध शब्द के नीचे रेखा खींच देने के लिए कह दिया जाता है।

मार्च एक दिन, भोजन, महीने, सप्ताह, वर्ष का नाम है। गंगा अरब, चीन, भारत, श्री लंका में है।

इस ढंग के प्रश्नों तथा परीक्षाओं द्वारा अंकदान में अधिक ईमानदार तथा यथार्थता प्राप्त करने का प्रयास किया जा सकता है। वे बहुत हद तक तथ्यों से ही सम्बन्ध रखते हैं और हमारे द्वितीय सिद्धान्त, अर्थात् विद्यार्थी की स्वयं अपने लिए विचार करने तथा अपने लिए कार्य करने की शक्ति की परीक्षा करने, के दृष्टिकोण से बहुत लाभदायक नहीं हैं। इसको करने का केवलमात्र एक उपाय है—उसको कुछ करने के लिए या हल निकालने के लिए देना तथा प्रश्न बनाना, ताकि रटनेवाले काम का कम से कम मूल्य रह जाय। इस प्रकार की परीक्षाओं में अंकदान करते समय व्यक्तिगत तत्त्व सदैव उपस्थित रहेगा, पर आन्तरिक परीक्षाओं में, जहां

अध्यापक को विद्यार्थी के सम्बन्ध में अपने ज्ञान एवं उसके कार्य तथा योग्यता को ध्यान में रखना चाहिए, यह बात बहुत हानिकारक नहीं होती।

कक्षाओं को वर्गों में विभाजित करना

जब एक कक्षा को दो वर्गों में विभाजित करना आवश्यक हो जाता है, तब कभी-कभी यह प्रश्न उठता है कि एक वर्ग में सारे के सारे अच्छे विद्यार्थी और दूसरे वर्ग में सारे के सारे कमज़ोर विद्यार्थी होने चाहिए, या उनमें अच्छे-बुरे दोनों तरह के विद्यार्थी होने चाहिए?

आम तौर से अध्यापकगण यह नहीं पसन्द करते कि उनको पढ़ाने के लिए एक ऐसा वर्ग दिया जाय, जिसके सारे ही विद्यार्थी पढ़ने में कमज़ोर हों। पर यह प्रश्न उसी हालत में उठेगा जब कि विभाजन करते समय इसी विधि का प्रयोग किया गया हो। उनको यह भय रहता है कि इन्सपेक्टर यह न समझेगा कि विभाजन किस प्रकार किया गया है और इसीलिए उनको इसका फल भुगतना पड़ेगा। प्रायः इस तरह के भय का कारण होता भी है। एक एतराज़ यह किया जाता है कि विद्यार्थियों को इस तरह से विभाजित करने का मतलब है—ब वर्ग के विद्यार्थियों में, जहाँ के विद्यार्थी कमजोर हैं, हीनता की भावना और अ वर्ग के विद्यार्थियों में, जो पढ़ने में तेज़ हैं, उसी के अनुरूप विशिष्टता की भावना पैदा करना। इन आपत्तियों के होते हुए भी यह बात क़रीब-क़रीब हमेशा के लिए ज्यादा अच्छी है कि कक्षा का विभाजन इस तरह से किया जाय कि तेज-तेज लड़के एक वर्ग में रहें, और कमजोर लड़के दूसरे वर्ग में। इस बात को सभी मानते है कि यह विभाजन अध्यापकों के लिए कुछ कड़ा-सा ही है, परन्तु यदि विषय-अध्यापक-प्रणाली का प्रयोग किया जाता है तो अध्यापकों को उन्हें पढ़ाना तो पड़ेगा ही। अध्यापन के ख्याल से तो यह कहीं ज्यादा अच्छा है कि वर्गों में यथासम्भव एकरूपता हो। यदि अध्यापक कमज़ोर विद्यार्थियों को पढ़ाना पसंद नहीं करता तो उस हालत में यदि उसको एक ऐसा वर्ग पढ़ाने के लिए दिया जाता है, जिसमें तेज और कमज़ोर दोनों तरह के बच्चे हैं, तो वह कमज़ोर विद्यार्थियों की उपेक्षा करेगा। यदि विद्यार्थियों के सामने ब वर्ग से अ वर्ग और अ वर्ग से ब वर्ग बदल लेने की सम्भावना रख दी जाती है, तो उन्हें परिश्रम करने की प्रेरणा मिलती

है और यथार्थ रूप में इसको व्यवहार में लाने से हीनता की भावना उससे अधिक नहीं होती, जितनी कि एक ही कक्षा के विद्यार्थियों में व्यक्तिगत रूप से पाई जाती है।

अध्याय ८

छात्रावास

प्रबन्धकर्ता (Superintendent)

कदाचित् छात्रावास से सम्बन्धित कार्य का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है निरीक्षण। प्रधान अध्यापक के कार्य के सम्बन्ध में हम पहले ही इसकी चर्चा कर चुके हैं (२५-२८ पृष्ठ देखिए)। छात्रावास के अनुशासन और प्रबन्ध के लिए अन्तिम उत्तर-दायित्व उसी के कंधों पर रहता है। पर जैसा स्वाभाविक ही है, वह बहुत हद तक छात्रावास के अध्यक्ष के ऊपर निर्भर रहता है। कुछ स्थानों में एक शोचनीय प्रणाली का चलन है, और सरकार की ओर से उसके लिए प्रोत्साहन भी मिलता है। वह प्रणाली है—अध्यापकों को, जो पाठशाला में पूरे समय का काम तो कर ही रहे हैं, छात्रावासों का भी अध्यक्ष बना देना। फिर इस काम के लिए उन्हें अलग से और रुपया भी नहीं दिया जाता। चाहे वे विभाग, जो इस तरह की नीति का अनुसरण करते हैं, अपने अध्यापकों का नैतिक स्तर ऊंचा उठाने की चेष्टा कर रहे हों और चाहे यह कोरी कृपणता हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि शिक्षा तथा संगठन की दृष्टि से यह नीति बहुत बुरी है। जब तक कि छात्रावास बहुत छोटा न हो, या वह कुटीर-प्रणाली के अनुसार, जिसकी विवेचना हम बाद में करेंगे, न चलाया जाता हो, तब तक यदि

उसको अच्छी तरह से व्यवस्थित बनाना और ठीक से चलाना है, तथा उसे एक शिक्षा-संस्था के योग्य बनाना है, तो वहां पर चौबीस घंटे के लिए एक प्रबन्धकर्ता होना चाहिए, जिसका पूरा समय छात्रावास को संगठित बनाने के कार्य में तथा वहां रहनेवाले विद्यार्थियों के साथ व्यक्तिगत रूप से कार्य करने में लग सके।

छात्रावास के प्रबन्धकर्ता का काम बड़ा ही कठिन है। उसके लिए बड़े कौशल, धैर्य तथा वैज्ञानिक ज्ञान और चतुराई की आवश्यकता है। यह यदि ठीक से किया जाय तो निश्चय ही पूरे समय का काम है। तमाम लोग अपने अनुभव के आधार पर यह प्रमाणित कर सकते हैं कि एक अध्यापक से, जिसके पास पाठशाला में पूरे दिन का काम है, उस काम के अलावा एक छात्रावास का, जिसमें सौ के लगभग विद्यार्थी हैं, अध्यक्ष बन जाने के लिए कहना कितनी बड़ी ज्यादती है। इसका मतलब सिर्फ़ यही है कि अध्यापन और छात्रावास, दोनों ही का नुक़सान हो। यह बात तो वहां की है, जहां एक बड़ा छात्रावास एक मनुष्य के नियंत्रण में रहता है। और मामूली तौर से छात्रावास इसी ढंग के होते हैं। इस प्रकार के छात्रावासों में पूरे समय का प्रबन्धकर्ता होना आवश्यक है।

प्रबन्धकर्ता के कर्त्तव्य

१. सामान्य निरीक्षण.

यह स्वाभाविक ही है कि प्रबन्धकर्ता छात्रावास के समस्त प्रबन्धों एवं उसकी सारी क्रियाओं का निरीक्षण अनिवार्यरूप से करता रहे। यह काम नियमित ढंग से तथा एक आयोजित प्रणाली के अनुसार होना चाहिए। उसके लिए इस बात पर नज़र रखना भी ज़रूरी है कि विद्यार्थी अपने खाली समय का उपयोग किस प्रकार से करते हैं। विद्यार्थियों को मानसिक विकास के साथ-साथ अपना नैतिक विकास करने में समर्थ बनाने के लिए उसे जितने भी उपाय सम्भव हो सकें, प्रयोग में लाने चाहिए। साल के तमाम दिनों तक छात्रावास को घर का स्थान लेना पड़ता है, और प्रबन्धकर्ता को माता-पिता की जगह लेने तथा विद्यार्थियों को वह सहायता एवं मार्ग-प्रदर्शन करने के लिए, जो उन्हें मामूली तौर से अपने माता-पिता से ही मिल

सकेगा, भरसक प्रयास करना पड़ता है। उसे यह देखना होता है कि जहां तक सम्भव हो सके, छात्रावास में "संस्था-सम्बन्धी" वातावरण न रह जाय और वह घर का स्थान ले ले। पर हाँ, उसे इस बात का ध्यान ज़रूर रखना चाहिए कि वह वास्तविकता से बहुत दूर न हो जाय। उसे विद्यार्थियों की शरीर-सम्बन्धी क्रियाओं में, उनके शौक़ की चीज़ों में और उनके कार्यों में रुचि लेनी होती है। कोई भी चीज़ जो उसकी अध्यक्षता में रहनेवाले विद्यार्थियों के नैतिक, मानसिक और शारीरिक विकास में सहायक हो सकती है, उसके क्षेत्र से बाहर नहीं है। यदि ऐसी पाठशाला है, जहां धर्म की ओर ध्यान दिया जाता है तो प्रबन्धकर्ता को भी छात्रावास में विद्यार्थियों के धार्मिक जीवन एवं विकास की देखरेख करनी पड़ेगी।

२. छात्रावास में रहने की दशाएँ.

यह देखना प्रबन्धकर्ता के कार्य का एक अंग है कि छात्रावास में रहने की दशाएँ वही हैं जो होनी चाहिए, और विद्यार्थियों को बुरी आदतों में फँसने के लिए प्रोत्साहन न मिलकर, उल्टे उन्हें अच्छी आदतों का विकास करने के लिए सहायता की जा रही है। उसे यह ज़रूर देख लेना चाहिए कि शयनागार काफ़ी हवादार हैं, रात में खिड़कियां और दरवाजे खुले रहते हैं, और खिड़कियां दिन में भी खुली रखी जाती हैं। उसे यह देखना चाहिए कि जहां कहीं सम्भव हो, सप्ताह में कम-से-कम तीन बार बिस्तरे धूप में डाले जाते हैं, और सफाई से बिछाये जाते हैं। उसे कमरों की सफाई और वे किस ढंग से रखे जाते हैं, इस ओर भी ध्यान देना चाहिए। चीज़ों को रखने के ढंग में किसी प्रकार की गन्दगी होने से, तथा अलमारियों की गन्दगी और दुर्व्यवस्था के मामले में उसे बड़ी सख्ती से काम लेना चाहिए। उसे हमेशा अपने विद्यार्थियों को सफाई की आदत डालने में सहायता पहुंचाने के अवसर ढूंढ़ते रहना चाहिए। उसे यह देखना चाहिए कि प्रत्येक विद्यार्थी के पास एक अलमारी है, और उसका उपयोग किया जाता है और ठीक ढंग से किया जाता है। प्रत्येक विद्यार्थी के पास मैले कपड़ों का एक थैला होना चाहिए, और उसका उपयोग किया जाना चाहिए। प्रबन्धकर्ता के लिए यह देखना ज़रूरी है कि छात्रावास में सफ़ाई, धुलाई का ठीक इन्तज़ाम है, पाखाने अच्छी हालत में हैं और वे काम में लाये जाते हैं। उसे नालियों के ऊपर भी

नज़र रखनी चाहिए। यदि उनमें किसी तरह की ख़राबी दिखाई पड़ तो तुरन्त उसकी रिपोर्ट करनी चाहिए। उसे धुलाई की जगहों का नियमित रूप से निरीक्षण करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि वे स्वच्छ रखी जाती हैं। उसे तश्तरियों और खाने के बर्तनों की धुलाई पर ज़रूर नज़र रखनी चाहिए, और यह देखना चाहिए कि यह काम ठीक से किया जाता है। उसे रसोईखाने, खाना पकाने के प्रबन्ध और खाना रखने तथा जिनस रखने की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। छात्रावास के गोदाम का निरीक्षण नियमित रूप से होना चाहिए। उसको नौकरों और उनके काम के साथ-साथ विद्यार्थियों की समिति के ऊपर, यदि कोई है तो, अपना सामान्य निरीक्षण ज़रूर बनाये रखना चाहिए।

३. खाने का निरीक्षण.

प्रबन्धकर्ता के जितने भी मुख्य कर्त्तव्य है, उनमें एक महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है—छात्रावास में रहनेवाले विद्यार्थियों के भोजन की देखभाल। हर हालत में प्रबन्धकर्ता को भोजन के विषय का अध्ययन करना चाहिए और इस बात को मालूम करना चाहिए कि भारत के जिस भाग में पाठशाला स्थित है तथा जो भोज्य पदार्थ प्राप्य हैं, उनके अनुसार उसके विद्यार्थियों के लिए सर्वोत्तम भोजन क्या है। उसे विभिन्न प्रकार के भोजन का क्या मूल्य है, इस पर विचार करना चाहिए—विद्यार्थी जो उसमें भोजन करते हैं उन्हें प्रोटीन, चर्बी, कार्बोहाइड्रेट्स किस मात्रा में मिलती है, भोजन द्वारा प्राप्त होनेवाले तापमान का क्या परिणाम है, और किस चीज़ में कौन-सी विटामिन है और कौन-सी नहीं है। यहां पर भोजन के प्रश्न को विस्तार से लेना सम्भव नहीं। इस सिलसिले में मैं सिर्फ़ एक काम कर सकता हूँ, वह यह है कि मैं प्रत्येक प्रधान अध्यापक और प्रत्येक छात्रावास के प्रबन्धकर्ता से इस बात की सिफ़ारिश करता हूँ कि वे डा० आर० मैकरिसन (Dr. R. Mccarrison) की छोटी-सी पुस्तक (भोजन*) (Food) को अवश्य पढ़ें। यह पुस्तक विशेष रूप से भारत की पाठशालाओं, विद्यालयों, बॉय स्काउट और गर्लगाइड की संस्थाओं आदि में प्रयोग किये जाने के लिए ही लिखी

* राबर्ट मैकरिसन, फूड, पृष्ठ ११३ (मैकमिलन)।

गई है। इसमें पूरी तरह से भारतीय दशाओं और भारतीय भोजन के ही ऊपर लिखा गया है और इसीलिए यह उन सभी लोगों के लिए एक अमूल्य पुस्तक है, जिनका बालकों और बालिकाओं के भोजन के प्रबन्ध में किसी प्रकार का हाथ है। एक आदमी के सुसंतुलित भोजन का जो उदाहरण उन्होंने दिया है, उसको मैं यहां पर दे रहा हूँ। यह आहार उत्तरी भारत में प्रयोग किया जाता है—

आटा	१२ औंस
चावल (घर का कूटा हुआ)	६ ,,
गोश्त (बकरे का)	२ ,,
दूध	२० ,,
वनस्पति घी	१ ,,
घी	१·५ ,,
ज़मीन के अन्दर होनेवाली तरकारियां	८ ,,
बन्द गोभी	८ ,,
आम	४ ,,
दाल	१ ,,

यह दैनिक भोजन है। डा० मैकरिसन की पुस्तक से यह बात मालूम हो जायगी कि जहां ऊपर बताये हुए भोजन में से कोई भी वस्तु प्राप्य नहीं होती, वहां इनकी जगह कौन-से भोजन रखे जा सकते हैं। जो लोग गोश्त नहीं खाते उनके लिए ऊपर बताये हुए आहार में से दो औंस गोश्त काटा जा सकता है और उसके बदले एक औंस दाल और दो या तीन औंस ज़्यादा दूध भी दिया जा सकता है। इस तरह से प्रोटीन की मात्रा तो थोड़ी घट जायगी, पर कार्बोहाइड्रेट्स तथा तापमान की कुल गिनती बढ़ जायगी।

हम यह देख सकते हैं कि इस आहार में दूध की मात्रा और सब चीज़ों की अपेक्षा अधिक है। दूध हर तरह से सर्वोत्तम आहार है, जो दिया जा सकता है। इसके अन्दर प्रोटीन, चर्बी और कार्बोहाइड्रेट्स होते हैं, और प्रति औंस द्वारा १८ * से ३० † तक

---

* गाय का दूध। † भैंस का दूध।

तापमान तथा ए, बी, सी, डी विटामिन शरीर में पहुँचाता है। दूध में सबसे अधिक ए विटामिन होता है। आहार में दूध की मात्रा अधिक होनी चाहिए। ग्राम्य क्षेत्रों में छात्रावास में रहनेवाले विद्यार्थी अपनी-अपनी गाय या कई एक गायें रखकर आसानी से इस बात का प्रबन्ध कर सकते हैं।

इस सम्बन्ध में यह देखना भी छात्रावास के प्रबन्धकर्ता के कर्तव्य का एक अंग है कि पानी ठीक से मिल रहा है और पानी के गंदे होने का कोई भय नहीं है। छात्रावास के प्रयोग में आनेवाले कुएँ नियमित रूप से साफ़ किये जाने चाहिए और रोगाणुओं से बचाने के लिए उनमें दवा आदि डाली जानी चाहिए। छात्रावास के अन्दर पीने के पानी का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए, विशेषरूप से गरमी के मौसम में। वे बर्तन, जिनमें पीने का पानी भरा जाय, ढककर और साफ़ रखने चाहिए।

छात्रावास-संगठन की कुटीर-प्रणाली

मामूली ढंग के छात्रावास के संगठन पर विचार करने के पूर्व हम संक्षेप में उस प्रणाली पर विचार करेंगे जो कुटीर-प्रणाली कहलाती है। यह एक ऐसी पद्धति है जिसकी सिफ़ारिश सभी नये छात्रावासों तथा उन पुराने छात्रावासों के लिए की जाती है जहां परिवर्तन किये जा सकते हैं। वास्तव में तो यह इंगलैंड की सार्वजनिक पाठशालाओं में पाई जानेवाली प्राचीन गृह-प्रणाली का अनुकरण है, परन्तु कई तरह से यह उस प्राचीन पद्धति से कुछ आगे है। कुटीर-प्रणाली के अन्तर्गत छात्रावास में कई एक शयनागार नहीं होते जो सब-के-सब एक ही भवन में हों, वरन् उसमें छोटी-छोटी कई इमारतें बनी रहती हैं, जो एक जगह पर पास-पास होती हैं और सब मिलाकर एक छोटे-से गांव की तरह लगने लगती हैं। प्रत्येक भवन या 'कुटीर' में छात्रावास के आठ से बारह तक विद्यार्थी रहते हैं। यह संख्या स्थानीय दशा के अनुसार घट-बढ़ सकती है, पर गिनती पंद्रह से ज़्यादा न होनी चाहिए। ये बारह या जितने भी विद्यार्थी हों, अपनी कुटीर में रहते हैं। प्रत्येक कुटीर के लगाव में एक अध्यापक का निवासस्थान होता है। प्रत्येक कुटीर का अपना शयनागार होता है, जहां विद्यार्थीगण सोते हैं और एक खाने का कमरा होता है, जिसका प्रयोग अध्ययन तथा मनबहलाव के लिए भी किया जा सकता है। प्रत्येक कुटीर में एक रसोईघर भी होता

है। विद्यार्थी और अध्यापक (और उसकी पत्नी, यदि वह विवाहित है तो) एकसाथ एक बड़े परिवार की तरह से रहते हैं। वास्तव में संगठन-विधि का उद्देश्य है भी यही, अर्थात् छात्रावास में परिवार-सिद्धान्त की स्थापना। इस प्रकार की व्यवस्थापन-विधि द्वारा अध्यापक या अध्यापिका मामूली तौर पर अपने बच्चों के जितने निकट आ सकते हैं, उससे कहीं अधिक निकट सम्पर्क में आ जाते हैं और पारिवारिक जीवन के अनेक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों की, जिनका साधारणतः एक संस्था में अभाव-सा रहता है, पुनरावृत्ति होने की सम्भावना पैदा हो जाती है। संस्था-सम्बन्धी वातावरण इस तरह नष्ट हो जाता है।

स्वभावतः इस प्रकार एक परिवार के रूप में रहते हुए सभी सदस्य कुटीर-गृह के कार्य में उसी प्रकार भाग लेते हैं, जिस प्रकार वे अपने घरों में लेंगे या जिस प्रकार अपने घरों में लेना चाहिए। कुटीर की सफ़ाई करना, कुटीर को सजाना, कुटीर उद्यान की देखभाल करना, भोजन बनाना, सामान खरीदना—ये सब काम कुटीर के सदस्य अध्यापक के मार्ग-प्रदर्शन में कर सकते हैं। यह बात तो बिना किसी कठिनाई के समझ में आ जायगी कि इस प्रकार की पद्धति से शिक्षा-सम्बन्धी लाभ कितने अधिक हैं। जहां चीज़ खरीदने के लिए बच्चों का अपने आप बाज़ार जाना सम्भव न हो, वहां कभी-कभी यह प्रबन्ध करना सम्भव रहता है कि बाज़ार के लोग सप्ताह में एक या दो दिन चीज़ें ले आयें और छात्रावास के मैदान में एक छोटा-सा बाज़ार लग जाय।

इस प्रणाली के अन्तर्गत विभिन्न आयु के बच्चों का एकसाथ रहना सम्भव है। यही चीज़ उस हालत में, जब कि छात्रावास एक बड़े शयनागार के रूप में होता है और जहाँ निरीक्षण ठीक से नहीं होता, कभी-कभी खतरे से भरी बन जाती है। कुटीर में बड़ी आयु के बच्चे छोटी आयुवाले बच्चों में रुचि लेना और उन्हें विभिन्न उपायों से सहायता देना सीखते हैं।

इस प्रकार के कुटीरों की संख्या विद्यार्थियों की संख्या और प्राप्य धन के ऊपर निर्भर होगी। यदि ग्राम्य क्षेत्र में हो तब तो पाठशाला को स्वभावतः झोंपड़ियों के समुदाय के बीच में होना चाहिए, यद्यपि यह आवश्यक नहीं है। यह तो ज़ाहिर है कि इस प्रकार की पद्धति को अपनाने का मतलब होगा, स्थित योजना में कई जगह रद्दो-बदल करना। प्रायः यह सम्भव नहीं हो पाता। परन्तु यदि एक नया छात्रावास

बनाया जा रहा हो और पर्याप्त भूमि प्राप्य हो, तो यदि इस तथ्य को ध्यान में रख लिया गया हो कि योजना के अन्तर्गत अध्यापकों के निवासस्थानों का भी आयोजन है, उस हालत में इस प्रकार के प्रबन्ध के आरम्भ में होनेवाला खर्च मामूली ढंग के छात्रावास का निर्माण कराने में होनेवाले खर्च से बहुत अधिक न बैठेगा। जो लोग नये छात्रावासों का निर्माण कराने की बात सोच रहे हों, उन्हें इस प्रणाली से होनेवाले अनेक लाभों के ऊपर गम्भीरतापूर्वक विचार कर लेना चाहिए। पुराने ढंग के छात्रावासों में भी प्रायः थोड़े से परिवर्तन करके कुटीर-प्रणाली के यदि सब नहीं तो कुछ गुण तो लाये ही जा सकते हैं। इस आदर्श की ओर जितना भी बढ़ा जा सके, उतना ही अच्छा है।

आइये, अब हम लोग साधारण ढंग के छात्रावास के सम्बन्ध में विचार करें।

भवन

जहाँ तक सम्भव हो, छात्रावास एक ऐसा भवन होना चाहिए जो इसी काम के लिए बनाया गया हो। किसी दूसरे काम के लिए बनाई गई किराये की इमारतें शायद ही कभी संतोषजनक हो पाती हों। उनके कमरे काफी बड़े नहीं होते और निरीक्षण करना कठिन होता है। साधारणतः वे पाठशाला से दूर स्थित होती हैं, सफ़ाई का प्रबन्ध आमतौर से सन्तोषजनक नहीं होता और आन्तरिक व्यवस्था आमतौर से कठिन होती है। छात्रावास पाठशाला के मैदान में पर्याप्त दूरी पर होना चाहिए और यथासम्भव खास सड़क से हटकर होना चाहिए। यदि सम्भव हो तो पाठशाला सड़क के सन्निकट हो, छात्रावास उसके पीछे हो और दोनों (पाठशाला और छात्रावास) के बीच में खेल के मैदान या उद्यान हों। भवन का नमूना प्राप्य भूमि, स्थानीय परिस्थितियों तथा प्राप्य धन की मात्रा के ऊपर निर्भर होगा। सर्वोत्कृष्ट ढंग की इमारत एक मंजिल की होती है, जो चारों ओर बनी हो और जिसके बीच में एक आँगन हो। भवन चाहे जिस ढंग का हो, पर वह ऐसा होना चाहिए कि रात के समय या जब कभी जरूरत हो, तब उसको घेरा तथा बन्द किया जा सके। यदि चतुष्कोण आकार का प्रयोग किया जाता है तो यह काम आसानी से किया जा सकता है। इस तरह की इमारत में फाटक के पास एक ओर प्रबन्धकर्ता का

निवासस्थान और कार्यालय और दूसरी ओर एक वाचनालय तथा अध्ययन-कक्ष होना चाहिए। यह चतुर्भज भवन का सामने का भाग होगा, जिसके बीचोबीच में खास फाटक होगा। फिर अन्य तीनों किनारे शयनागारों मे विभाजित कर दिये जायंगे। ये इतने सटे होने चाहिए कि उनमे १२ से २० तक विद्यार्थी रह सकें। निरीक्षण के दृष्टिकोण से ज्यादा अच्छा यही है कि शयनागार में २० से अधिक विद्यार्थी न रहें। प्रति विद्यार्थी ५० से ६० वर्ग फ़ीट जगह होनी चाहिए। शयनागारों की ऊँचाई सोलह या सत्रह फ़ीट होनी चाहिए। उनकी चौड़ाई इतनी काफ़ी होनी चाहिए कि उसमें बिस्तरे दो कतारों में बिछाये जा सकें और कतारों के दोनों सिरों पर एक-एक बिस्तर और लगा दिये जायं जो दीवार से मिले हुए हों। दोनों कतारों के बीच में रास्ता छूटा हो। प्रत्येक विद्यार्थी के लिए एक-एक अलमारी होनी चाहिए। जो अलमारियाँ दीवार में बना दी जाती हैं, वे सबसे सस्ती और अधिक सन्तोषजनक होती हैं। प्रत्येक विद्यार्थी के पास एक कुर्सी और एक मेज़ होनी चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि रोशनी का प्रबन्ध ठीक है, विशेषरूप से अध्ययन-कक्ष और वाचनालय में। विद्यार्थियों को खराब, धुआदार लैम्पों के पास काम न करने देना चाहिए। ज्यादा अच्छा यही है कि विद्यार्थियों को अलग-अलग लैम्प रखने की आज्ञा न दी जाय, यद्यपि कभी-कभी बड़े विद्यार्थियों के मामले में, जो परीक्षा की तैयारी कर रहे हों, इस चीज को रोकना कठिन हो जाता है।

खिड़कियाँ और रोशनदान बहुतायत से होने चाहिए। अगर वे सूरज के ठीक सामने पड़ते हों तो उनमें छाया (shades) होनी चाहिए। भवन में अन्दर की ओर आगन के चारों तरफ़ बरामदे होने चाहिए। फ़र्श ईंट या सीमेण्ट का बना हुआ होना चाहिए।

रसोईघर और खाने का कमरा या कमरे चतुष्कोण के बाहर पिछवाड़े की तरफ़ रखे जा सकते है। यदि सबको पसंद हो तो भवन के पीछे के कमरों में से एक कमरे को खाने का कमरा बना लिया जाय, जिसका द्वार बाहर रसोई की ओर खुलता हो। यह ध्यान रखना चाहिए कि तश्तरियाँ धोने का प्रबन्ध सन्तोषजनक है और नालियाँ ऐसी हैं कि सारा पानी बह जाता है और बहकर बाग में या फल के पेड़ों में चला जाता है। भवन के पिछवाड़े एक सिरे पर धुलाई के कमरे पर्याप्त संख्या में बने होने चाहिए। भवन के पिछवाड़े की तरफ़ उसी सिरे पर, जिधर धुलाई के कमरे

स्थित हों, सेप्टिक टैंकवाले पाख़ाने बनाये जाने चाहिए। अगर सेप्टिक टैंक प्रयोग किया जाता है तो इन पाख़ानों का रास्ता भवन के भीतर से हो सकता है। यदि संडासवाले पाख़ानों का प्रयोग किया जाता है तो निश्चय ही उन्हें छात्रावास से कुछ दूर पर स्थित होना चाहिए। इस मामले में रात को पाख़ानों के लिए कुछ प्रबन्ध तो करना ही पड़ेगा। इनके अलावा भवन के उस भाग में, जिधर रसोईघर हो, नौकरों के निवासस्थान तथा अनाज और ईंधन रखने के कमरे होने चाहिए।

इस बात को हमेशा याद रखना ज़रूरी है कि विद्यार्थी के लिए छात्रावास वर्ष के काफ़ी दिनों तक घर की जगह लिये रहता है और इसीलिए उसको जितना आकर्षक बनाना सम्भव हो, उतना आकर्षक बनाना चाहिए। आँगन की शोभा बढ़ाने के लिए पेड़ और फूलों के पौधे लगाये जा सकते हैं। कमरों को यथासम्भव आनन्दमय बनाने के लिए पूरी-पूरी चेष्टा करनी चाहिए। चित्रों का प्रयोग स्वच्छंदता से करना चाहिए और छात्रावास के विद्यार्थियों को इस बात के लिए प्रोत्साहन मिलना चाहिए कि वे छात्रावास को जितना आरामदेह और घर की तरह बना सकें, अवश्य बनायें।

आन्तरिक संगठन

विद्यार्थियों को उनके शयनागार निर्दिष्ट कर दिये जायँगे और अपने-अपने शयनागार में निश्चित स्थान दे दिये जायँगे। प्रत्येक विद्यार्थी का नाम काग़ज़ के ऊपर साफ़-साफ़ लिखा जाना चाहिए और इसके बाद उसके बिस्तर, अलमारी, मेज़-कुर्सी आदि पर चिपका दिया जाना चाहिए। प्रबन्धकर्ता की आज्ञा के बिना उसे अपनी जगह न बदलने देना चाहिए। शयनागार में रहनेवालों की एक-एक सूची एक छोटे-से सूचना-पट पर चिपका देना चाहिए। यह सूचना-पट शयनागार के बाहर दीवार पर बनाया जा सकता है। यह देखना प्रत्येक विद्यार्थी का उत्तरदायित्व होगा कि नित्य प्रातःकाल उसका बिस्तर सफ़ाई के साथ ठीक से बिछा दिया जाता है। प्रबन्धकर्ता को एक ऐसा तरीक़ा बना देना चाहिए जिससे सब विद्यार्थियों के बिछौनों के कपड़े एक ही तरह से तहाकर और बिछाकर रखे जाया करें। प्रत्येक विद्यार्थी के पास मैले कपड़ों का एक थैला होना चाहिए। अगर मौसम अच्छा रहे तो सप्ताह में कम-से-कम तीन दिन सब बिस्तरे बाहर धूप में डाल देने चाहिए। प्रत्येक शयनागार के विद्यार्थी

पर अपने शयनागार की सफ़ाई की देखभाल करने का उत्तरदायित्व रहना चाहिए। अगर नौकर रखा जाता है तब भी इस बात की ज़िम्मेदारी विद्यार्थियों के ऊपर होनी चाहिए कि वे यह देखें कि काम ठीक से हो रहा है और खिड़कियाँ, दीवारें और फ़र्श साफ़ रखे जाते हैं। शयनागार के अन्दर किसी तरह का भोजन न आने देना चाहिए। पीने के पानी का प्रबन्ध कमरों के बाहर बरामदे में किया जा सकता है।

प्रत्येक शयनागार में एक मॉनिटर चुन लिया जाना चाहिए, जो शयनागार का अध्यक्ष हो। जिस प्रकार स्वायत्त-शासन-योजना पाठशाला के लिए बड़ी कल्याणकर है, उसी तरह वह छात्रावास के लिए भी बड़ी उपयोगी है। व्यवस्था, अनुशासन, खाने-पीने के सामान की ख़रीदारी और छात्रावास में सामान्य प्रबन्ध से सम्बन्धित सभी विषयों से निबटने के लिए छात्रावास के विद्यार्थी एक समिति का निर्वाचन कर सकते हैं। आवश्यकता पड़ने पर वे विषयों की सूचना प्रबन्धकर्ता के पास भेज सकते हैं, पर उन्हें इस बात का प्रोत्साहन मिलना चाहिए कि वे यथासम्भव अपने मामलों का प्रबन्ध स्वयं ही कर लें तो अच्छा है।

जहां तक सम्भव होगा, प्रबन्धकर्ता हर तरह से इस समिति के ज़रिए से और उसी के साथ मिलकर अपना काम करेगा। इस तरह के सारे विषय, जैसे छात्रावास की सफ़ाई और सजावट, शयनागार के मॉनिटरों के काम की जाँच, हिसाब-किताब रखना, विशेष बैठकों के लिए प्रबन्ध करना, ड्रिल और अध्ययन के घंटों में उपस्थिति की जाँच और अनुशासन-सम्बन्धी सामान्य विषय इस समिति के हाथ में सौंपे जा सकते हैं। प्रबन्धकर्ता को निरीक्षण तो अवश्य ही करना पड़ेगा, पर यह काम, जहाँ तक सम्भव हो, बड़े कौशल से समिति के सदस्यों में उत्तरदायित्व की भावना पैदा करने की सच्ची इच्छा के साथ किया जाना चाहिए।

प्रातःकाल शारीरिक व्यायाम के लिए एक छोटा-सा घंटा होना चाहिए, जिससे दैनिक कार्य-क्रम का आरम्भ हो। प्रबन्धकर्ता के निरीक्षण में छात्रावास के विद्यार्थियों को शयनागार के मॉनिटरों अथवा अन्य नेताओं के नेतृत्व में समुदायों में विभाजित किया जा सकता है। जिन संस्थाओं में सम्भव हो, प्रबन्धकर्ता दैनिक प्रार्थनाएँ करायेगा, चाहे सवेरे, चाहे शाम को।

अध्ययन और तैयारी के लिए भी एक विशेष घंटा होना चाहिए। यदि छात्रावास में पढ़ने और अध्ययन करने का एक कमरा है तो सारे विद्यार्थी प्रतिदिन

उस कमरे में जमा होकर किसी के निरीक्षण में अध्ययन करेंगे। घंटे की लम्बाई कक्षा के साथ एक घंटे से लेकर दो-ढाई घंटे के बीच में घटती-बढ़ती रहेगी। यदि छात्रावास में अध्ययन के लिए कोई कमरा नहीं है तो पाठशाला के एक या दो कमरे इस काम के लिए प्रयोग में लाये जा सकते हैं। जैसा पहले बताया जा चुका है, रोशनी के प्रबन्ध की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। निरीक्षित अध्ययन के इस घंटे में छात्रावास के विद्यार्थियों की उपस्थिति का उत्तरदायित्व प्रबन्धकर्ता के ऊपर होता है, परन्तु पाठशाला-अध्यापक-मंडल के सदस्यों को बारी-बारी से अध्ययन का निरीक्षण करना चाहिए और जहां कहीं विद्यार्थियों को आवश्यकता पड़े, उनकी सहायता करनी चाहिए। जाड़े के दिनों में अध्ययन का यह घंटा शाम को और गर्मी के दिनों में तीसरे पहर हो सकता है। गर्मी के मौसम में पंखों का इन्तिजाम होना चाहिए। घर से आनेवाले विद्यार्थियों को अध्ययन के इस घंटे में उपस्थित होने का प्रोत्साहन मिलना चाहिए। चाहे वह छात्रावास में रखा जाय और चाहे पाठशाला में। यदि निर्देशन सहित व्यक्तिगत कार्य-योजना का प्रयोग किया जाता है तो अध्यापकगण अपने विषय विशेष से सम्बन्धित निर्देशनों की परीक्षा करने और उनको सही करने के लिए इस घंटे के कुछ अंश भर तक उपस्थित रहने का प्रबन्ध कर सकते हैं।

प्रबन्धकर्ता को छात्रावास के लिए एक समय-चक्र-विभाग बना देना चाहिए और उसको मुख्य सूचना-पट पर लगा देना चाहिए। उसको यह देखने के लिए सावधान रहना चाहिए कि समय का पालन किया जाता है और समय-चक्र-विभाग केवल दिखावे की चीज़ नहीं है।

इस समय-चक्र-विभाग के साथ-साथ छात्रावास के नियम भी टाँग दिये जाने चहिए। ये नियम आवश्यक विषयों से निबटने के लिए होंगे और इनके अन्दर ऐसी चीजें शामिल करने की ज़रूरत नहीं जो पहले से ही मान ली जा सकें। समय-चक्र-विभाग हाज़िरी, भोजन करने और बत्ती बुझाने, खेल के घंटों, अध्ययन के घंटों आदि का समय निर्धारित करेगा। नियमों को उन विषयों से निबटना चाहिए जो छात्रावास के, जो एक साथ रहते हुए व्यक्तियों के समाज की तरह होता है, अच्छे आचरण के लिए आवश्यक हों। यद्यपि नियम अत्यधिक न होने चाहिए, तथापि जो नियम हों उनका पालन पूर्णतया होना चाहिए। प्रबन्धकर्ता को समय-चक्र-विभाग

का पालन करने के विषय में तथा यह देखने के लिए विशेषरूप से सावधान रहना चाहिए कि सब विद्यार्थियों को सोने के लिए जितना समय मिलना चाहिए, उतना मिलता है। छात्रावास के किसी भी विद्यार्थी को कम-से-कम आठ घंटे और अल्पायु विद्यार्थियों को इससे कुछ और अधिक समय तक सोना चाहिए। नीचे उन नियमों के कुछ नमूने दिये जाते है जो टाँगे जा सकते हैं:—

१. छात्रावास में प्रवेश पाने पर प्रत्येक विद्यार्थी को खाने के लिए अग्रिम धन के रूप में सात रुपए और सुरक्षा-शुल्क के रूप मे दो रुपए जमा करने पड़ेंगे। बाद वाले दो रुपए आवश्यक धन काट लेने के बाद विद्यार्थी को उस समय लौटा दिये जायँगे जब वह निश्चितरूप से छात्रावास को छोड़कर जाने लगेगा।

२. यदि छात्रावास में रहनेवाले विद्यार्थियों के पास कुछ रुपए हों या कोई कीमती सामान हो तो उसको सुरक्षित रूप में रखवाने के लिए प्रबन्धकर्ता को सौंप देना चाहिए। प्रबन्धकर्ता इस प्रकार के धन का खास हिसाब रखेगा।

३. यदि कोई विद्यार्थी जान-बूझ कर अथवा असावधानी के कारण छात्रावास की किसी सम्पत्ति को नष्ट कर देता है तो उसे इस प्रकार के नुक़सान को पूरा करना पड़ेगा।

४. छात्रावास में रहनेवाले प्रत्येक विद्यार्थी का यह कर्तव्य होगा कि वह इस बात को देखे कि उसका बिस्तर, अलमारी, कपड़े और दूसरी चीजें साफ-सुथरी रहती हैं। प्रत्येक विद्यार्थी को अपने मैले कपड़ों के लिए एक थैले का प्रबन्ध अवश्य कर लेना चाहिए।

५. अगर मौसम अच्छा हो तो मंगलवार, बृहस्पतिवार और शनिवार को सारे बिस्तरे बाहर डाले जाने चाहिए। सब बिछौने प्रबन्धकर्ता के आदेश के अनुसार एक ढग से तहाकर रखे जाने चाहिए।

६. किसी कमरे, अलमारी या बक्स में खाने का कोई सामान न रखा जाना चाहिए। फ़ालतू खाना प्रबन्धकर्ता को सौंप देना चाहिए, जो कि उसको खाने के गोदाम में रखवा देगा।

७. छात्रावास में सिगरेट पीना और मादक वस्तुओं का सेवन करना निषिद्ध है।

८. छात्रावास के विद्यार्थी प्रबन्धकर्ता की आज्ञा के बिना छात्रावास नहीं छोड

सकते। वे प्रबन्धकर्ता की आज्ञा के बिना छात्रावास में अपनी जगहों को बदल नहीं सकते।

९. प्रतिदिन प्रातःकाल के समय १० मिनट के लिए शारीरिक व्यायाम अनिवार्य है। उससे अवकाश पाने के लिए प्रबन्धकर्ता की आज्ञा प्राप्त कर लेना चाहिए।

१०. छात्रावास का कोई भी विद्यार्थी प्रबन्धकर्ता की आज्ञा के बिना छात्रावास में अपना अतिथि नहीं रख सकता।

११. छात्रावास का कोई भी विद्यार्थी किसी दूकानदार के साथ हिसाब नहीं खोल सकता या छात्रावास के किसी अन्य विद्यार्थी के साथ रुपए-पैसे का व्यवहार नहीं कर सकता। किसी के साथ रुपए-पैसे का जो भी व्यवहार किया जाय, वह प्रबन्धकर्ता के ज़रिए से होना चाहिए।

१२. छात्रावास के सब विद्यार्थियों को प्रति वर्ष चुनी जानेवाली समिति के साथ सहयोग रखना चाहिए और उन्हें उनके काम में सहायता पहुँचानी चाहिए। छात्रावास के विद्यार्थियों को इस बात का अधिकार होगा कि गम्भीर मामलों में वे समिति के निर्णय की अपील प्रबन्धकर्ता के पास करें।

१३. छात्रावास के केवल वे ही विद्यार्थी इस समिति में स्थान पाने तथा इस समिति के सस्दयों के चुनाव में वोट देने के अधिकारी होंगे जो छात्रावास में छः मास तक रह चुके हों।

१४. छात्रावास का कोई भी विद्यार्थी पाठशाला के घंटों में प्रधान अध्यापक की आज्ञा के बिना छात्रावास में नहीं रह सकता।

रजिस्टर

प्रबन्धकर्ता को निम्नलिखित रजिस्टर रखने चाहिए:—

१. सम्पत्ति-रजिस्टर.

इसमें उसी तरह, जिस तरह से पाठशाला के सम्पत्ति-रजिस्टर में होता है, एक ऐसी सूची होनी चाहिए, जिसमें छात्रावास की जितनी भी सम्पत्ति हो, सब लिखी हो।

प्रत्येक वस्तु जो छात्रावास में आती है, दाम, तारीख और उस स्रोत के सहित जहाँ से वह आई, इस रजिस्टर में दर्ज कर दी जानी चाहिए। प्रबन्धकर्ता को नियमितरूप से और प्रधान अध्यापक को यदाकदा इस सूची की जाँच करते रहना चाहिए। प्रबन्धकारिणी समिति की स्वीकृति के बिना इस सूची से कोई भी चीज़ काटी न जानी चाहिए। यदि सम्भव हो तो पुरानी चीज़ें बेच देना चाहिए और जो रुपया मिले उसको छात्रावास के फ़ंड में जमा कर देना चाहिए। जैसा पाठशाला के सम्पत्ति-रजिस्टर के मामले में होता है, उसी तरह से यहाँ भी यदि कमरे के हिसाब से रजिस्टर बनाये जाते हैं तो जाँच करना ज्यादा आसान हो जाता है।

२. प्रवेश-रजिस्टर.

इसमें छात्रावास के विद्यार्थियों के नाम, पते और प्रवेश पाने की तिथि के साथ-साथ नाम कटाने की तिथि दी होगी।

३. उपस्थिति-पुस्तक.

इसमें रोज़ की हाज़िरी भरी जायगी। हाज़िरी दिन में दो बार—एक बार सवेरे और एक बार शाम को—पुकारी और भरी जानी चाहिए। पुस्तक में जहाँ कहीं अनुपस्थिति हो, वहाँ अनुपस्थिति के कारण लिख दिये जाने चाहिए।

४. सुरक्षा-गणना-पुस्तक.

इसमें छात्रावास में प्रवेश पाते समय प्रत्येक विद्यार्थी द्वारा सुरक्षा-शुल्क के रूप में जमा किये हुए धन का हिसाब-किताब रखा जाता है। प्रत्येक नाम के नीचे ऐसी मदों को दर्ज करने के लिए काफ़ी जगह छोड़ दी जानी चाहिए जिनके लिए रुपया काटना हो। प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अलग-अलग पृष्ठ रखे जा सकते हैं। सामान्य गणना भी रखनी चाहिए। इस फंड के लिए एक सेविंग्स बैंक एकाउण्ट खोल देना चाहिए।

५. सहभोजन-गणना-पुस्तक (Mess Account Book).

यह भोजन के लिए खरीदी जानेवाली चीज़ों का हिसाब रखने की पुस्तक है। इसको रखने की विधि स्थानीय प्रबन्ध तथा इस बात के ऊपर निर्भर होगी कि

विद्यार्थीगण खाने की सामग्री की खरीदारी अपने आप करते हैं या नहीं। अगर वे अपने आप खरीदारी करते हैं तो उन्हें एक निश्चित बजट के अनुसार काम करना चाहिए और प्रबन्धकर्ता को इस बात का हिसाब रखना चाहिए कि वे उस (बजट) से धन किस प्रकार खर्च करते हैं। प्रबन्धकर्ता के निरीक्षण में समिति द्वारा विस्तृत रूप से हिसाब-किताब रखा जायगा अन्यथा प्रबन्धकर्ता को स्वयं विस्तृत हिसाब-किताब रखना पड़ेगा। जमा किये हुए और खर्च किये हुए धन के लिए डाकखाने में एक सेविंग्स बैंक एकाउण्ट खोल दिया जाना चाहिए।

६. शुल्क-गणना-पुस्तक.

इसमें प्राप्त होनेवाली फ़ीस और वह फ़ीस किस प्रकार दी जाती है, इसका हिसाब रहेगा। यदि वह पाठशाला में जमा कर दी जाती है और पाठशाला-शुल्क के साथ बैंक भेज दी जाती है, तब तो कार्य-विधि सरल बन जाती है। यदि ऐसा नहीं है तो डाकखाने में एक सेविंग्स बैंक एकाउण्ट खोल दिया जाना चाहिए और फ़ीस का रुपया प्रति मास बैंक में जमा कर दिया जाना चाहिए।

७. कैश-बुक.

यह उसी प्रकार रखी जानी चाहिए, जिस प्रकार पाठशाला की कैश-बुक रखी जाती है। इसमें खर्च और आमदनी की सब मदें रोजाना भर दी जानी चाहिए। इसमें की गई खानापूरी निश्चय ही बैंक की किताब में अलग-अलग हिसाबों के सिलसिले में की जानेवाली खानापूरी के अनुकूल होगी।

८. समिति-रजिस्टर.

यदि विद्यार्थियों की एक समिति हो तो उनके पास समिति के सारे कार्य को दर्ज करने के लिये एक रजिस्टर होना चाहिए। प्रत्येक बैठक के बाद नियमित रूप से ये दर्ज कर लिए जाने चाहिए।

स्वास्थ्य

हम पहले ही बता चुके हैं कि छात्रावास के विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की देख-

भाल करना प्रबन्धकर्ता के महत्त्वपूर्ण कर्तव्यों में से एक है। स्वास्थ्य के सामान्य विषय को तो हम नवें अध्याय में लेंगे, पर कई एक चीज़ें ऐसी हैं जिनका छात्रावास के साथ विशेष सम्बन्ध है। जैसा स्वास्थ्यवाले अध्ययन में बताया गया है, यदि किसी तरह सम्भव हो तो पाठशाला में एक नर्स होना चाहिए। नर्स छात्रावास के विद्यार्थियों का दैनिक निरीक्षण करेगी। गम्भीर बीमारियोंवाले मरीज़ डाक्टर के हवाले कर दिये जायँगे और उन मरीजों की दवा-दारू वह अपने आप करेगी जिनकी वह कर सकेगी। यदि नर्स न हो तो प्रबन्धकर्ता स्वयं दैनिक निरीक्षण कर सकता है। यदि किसी को बुखार हो तो उसे उसका तापमान अपने पास दर्ज कर लेना चाहिए और मामूली उपचार अपने आप कर देना चाहिए। तो भी हरेक छात्रावास में एक डाक्टर ज़रूर होना चाहिए। डाक्टर को नियमित रूप से मासिक भता दिया जाना चाहिए और बदले में उससे यह आशा की जानी चाहिए कि वह छात्रावास के विद्यार्थियों की, यदि वह सरकारी डाक्टर है तो अस्पताल में और यदि प्राइवेट डाक्टर है तो अपने दवाख़ाने में, जब कभी आवश्यकता पड़े देख-भाल कर लेगा। गम्भीर मामलों में वह छात्रावास में देखने के लिए आ जायगा।

प्रत्येक छात्रावास में एक रोगी का कमरा होना चाहिए। यदि सम्भव हो तो यह कमरा छात्रावास से कुछ दूर पर होना चाहिए, ताकि छूत की बीमारी के मामले में उसका प्रयोग अलगाव के काम के लिए किया जा सके। यदि इस प्रकार की कोई सुविधाएँ न हों, जो रोगी के कमरे के रहते हुए प्राप्त हो सकती हैं, तो सख़्त बीमारी के मामलों में और हलकी बीमारियों तक में बड़ी परेशानी उठानी पड़ेगी। छूत की बीमारियों के मामलों में छात्रावास में रहनेवालों के सामान्य स्वास्थ्य के लिए तो इसका होना आवश्यक ही है।

प्रबन्धकर्ता को देखना चाहिए कि छात्रावास के निवासियों को चेचक का टीका नियमित रूप से लग जाता है। यह काम पाठशाला के उस अध्यापक के साथ मिलकर किया जायगा जो पाठशाला के सारे विद्यार्थियों के टीका लगवाने के लिए उत्तरदायी होता है और जिसके पास टीकेवाला रजिस्टर रहता है। प्लेग और हैज़ा जैसी फैलनेवाली छूत की बीमारियों के मामलों में प्रबन्धकर्ता के लिए यह देखना ज़रूरी है कि छात्रावास के सब विद्यार्थियों को (इन बीमारियों के) टीके लगा दिये जाते हैं।

छात्रावास में एक छोटा-सा दवाखाना होना चाहिए जिसकी देखभाल रेडक्रॉस सोसाइटी के सदस्यों द्वारा अथवा रेडक्रॉस सोसाइटी के न होने पर बड़े विद्यार्थियों द्वारा की जा सके। इसमें मामूली दवाएँ जैसे रेड़ी का तेल, आयोडीन, ऐस्पिरीन, बोरैसिक ऐसिड, चिपकनेवाला प्लास्टर आदि रखी जानी चाहिए।

अध्याय ९

स्वास्थ्य

पाठशाला में स्वास्थ्य का प्रबन्ध होना दो कारणों से आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि स्वयं विद्यार्थियों के लिए अच्छा स्वास्थ्य बनाने के अभिप्राय से जो कुछ भी किया जा सकता है वही महत्त्वपूर्ण है; दूसरी बात यह है कि यदि पाठशाला में समुचित उपायों का प्रयोग किया जाता है तो विद्यार्थीगण आयुवृद्धि के साथ-साथ स्वस्थ आदतें भी सीख लेंगे और इस प्रकार देश भर के लिए रोग के सव-शक्तिशाली स्थल पर तथा उन सभी चीज़ों पर, जो बीमारी पैदा करती हैं, वास्तविक आक्रमण किया जायगा।

उस सुयोग को हम पहले ही देख चुके हैं जो इस कार्य को पूर्ण करने के लिए छात्रावास की ओर से प्रदान किया जाता है और उस सुयोग से हर प्रकार का लाभ उठाना चाहिए। फिर भी बहुत-से उपाय ऐसे हैं जिनका प्रयोग स्वयं पाठशाला में किया जाना चाहिए।

सफ़ाई

कदाचित् पाठशाला में एक चीज़, जिसको प्राप्त करना सबसे अधिक कठिन

है, सफ़ाई है। विद्यार्थियों को, विशेषरूप से गांव के विद्यार्थियों को, स्वच्छता की सीख देना तो सबसे ज्यादा मुश्किल जान पड़ता है। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि प्रायः दशाएँ हमारे विपरीत ही रहती हैं। अनन्त और निरन्तर चलनेवाली गर्द (dust) स्वच्छता के लिए किये जानेवाले हमारे सभी प्रयासों को बेकार कर देती है। ईंटों का फ़र्श, जो आम तौर से प्रयोग में लाया जाता है, स्वच्छता के मार्ग में सहायक नहीं होता। मेहतर की आदतों और तरीक़ों के ऊपर भी इस बात का भरोसा नहीं किया जा सकता कि वह हमारी चेष्टाओं को सफल बनाने में मदद देंगी। स्वयं विद्यार्थियों में गर्द और गंदगी के खिलाफ भावना कूट-कूट कर भरनी होगी। परन्तु कठिनाइयाँ चाहे कितनी ही बड़ी क्यों न हों, प्रयास अवश्य करना चाहिए और कठिनाइयों पर विजय अवश्य प्राप्त कर लेना चाहिए।

पहली बात तो यह है कि पाख़ानों के इस्तेमाल पर सख्ती के साथ ज़ोर दिया जाना चाहिए। शायद यह विषय नगर-पाठशालाओं की अपेक्षा ग्राम्य पाठशालाओं के लिए अधिक आवश्यक है। ग्रामीण बच्चे को पाख़ानों का प्रयोग करने की आदत नहीं होती। उसे पाख़ानों का प्रयोग सिखाना चाहिए और इस बात की भी शिक्षा देनी चाहिए कि उनका प्रयोग उसके लिए क्यों ज़रूरी है। इससे कोई लाभ नहीं कि सिर्फ़ यह नियम बना दिया जाय कि पाख़ानों का प्रयोग करना है, पर यह न समझाया जाय कि नियम क्यों बनाया गया है। पाख़ानों का प्रयोग करने का कारण ज़रूर समझा दिया जाना चाहिए और समिति तथा विद्यार्थियों को अपने आप यह देखने देना चाहिए कि नियम को लागू करने से क्या लाभ है। सेप्टिक टैंकवाला पाख़ाना सबसे अच्छा होता है। वे काफ़ी सस्ते में बनाये जा सकते हैं और जब तक पानी पर्याप्त मात्रा में आता रहे तब तक सबसे अच्छे रहते हैं। इस बात के लिए सावधान रहना पड़ेगा कि छुट्टी के दिनों में, जब पाख़ाने का प्रयोग नहीं किया जा रहा है, उसके ऊपर रोज़ पानी डाल दिया जाय। जहाँ बहुत ज़्यादा मिट्टी नहीं होती वहां संडास के ढंग का पाख़ाना भी काफ़ी अच्छा रहता है और बन भी बड़े सस्ते में जाता है। कदाचित् ग्राम्य क्षेत्रों के लिए यह अधिक उपयुक्त है। जहां नियमित रूप से नालियों की प्रणाली हो वहां निश्चय ही पाख़ानों के सम्बन्ध में कोई कठिनाई नहीं होती। सेप्टिक टैंकवाले पाख़ाने से यह लाभ होता है कि वह पाठशाला के काफ़ी निकट स्थित हो सकती है।

हर जगह थूकने और नाक साफ़ करने की बुरी आदत की ओर ध्यान देना ज़रूरी है। यहाँ पर फिर इस बात की ज़रूरत है कि विद्यार्थियों को ऐसा करने के दोष और ख़तरे समझा दिये जायँ और इस तरह से वे ख़ुद इस बात को समझने लगें कि इसको बंद कर देना चाहिए। अपनी समितियों के ज़रिए विद्यार्थी स्वयं इस काम को करेंगे। यह केवल एक बुरी आदत है और यदि इसकी ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाय तो बंद की जा सकती है। विद्यार्थी ही फिर इस बात को देखेंगे कि मैदान में जहाँ-तहाँ ऊटपटांग चीज़ें, फटे पुराने काग़ज़ के टुकड़े, फलों के छिलके आदि इसी तरह की चीज़ें फेंकने की आदत छूट जाती है, परन्तु पाठशाला के मैदान में दो-तीन सुविधाजनक स्थानों पर ढक्कनदार कूड़ादान रखवाकर अधिकारीगण इस विषय में सहायता कर सकते हैं। तब रखे हुए कूड़ादानों को छोड़कर इधर-उधर कूड़ा करने के लिए कोई बहाना नहीं हो सकता। मैदान की सफ़ाई को देखने का काम कक्षाओं को बारी-बारी से सौंपा जा सकता है। एक सप्ताह तक एक कक्षा ड्यूटी करेगी, दूसरे सप्ताह में दूसरी कक्षा और इसी तरह से आगे काम होता रहेगा।

यदि स्वायत्त शासन-प्रणाली का प्रयोग किया जाता है तो प्रत्येक कक्षा-समिति के उस सदस्य को, जो स्वच्छता के विषयों का अध्यक्ष हो, प्रति दिन प्रातःकाल हाज़िरी के समय, या जैसे भी हो, सप्ताह के कई दिनों तक प्रातःकाल के समय कक्षा का निरीक्षण करना चाहिए। उसको कपड़े, चेहरे, उँगलियों के नाखून और दाँत देखने चाहिए और इन सब चीज़ों में ऊँचे स्तर की माँग पेश करना चाहिए। जब समिति का सदस्य बिना इस बात की चिन्ता किये कि विद्यार्थीगण साफ़ हैं या नहीं, पूरी लाइन को एक सिरे से दूसरे तक यों ही देख जाता है, तब इस निरीक्षण को सब लोग एक रस्म-सी समझने लग जाते हैं। उसको कठोर होना चाहिए। गंदे विद्यार्थियों को सफ़ाई के लिए उनके घर या पाठशाला के धलाई-गृह में भेजते समय उसको किसी तरह का खेद न होना चाहिए। विद्यार्थी निर्धन भले ही हों, पर इसका तो कोई मतलब नहीं कि वे पाठशाला में गंदे कपड़े पहनकर या मैले नाखून या दाँत लेकर चले आयें। यदि स्वायत्त शासन-प्रणाली का प्रयोग नहीं किया जाता तो कक्षा-अध्यापकों को निरीक्षण करना चाहिए।

विद्यार्थियों की व्यक्तिगत स्वच्छता के अतिरिक्त कमरों और भवनों की सफ़ाई

का विषय आता है। यदि स्वायत्त शासन-प्रणाली का प्रयोग किया जाता है तो कक्षा का कमरा स्वच्छ रखा जाता है। यह देखने का कर्तव्य समिति के सभापति की सहायता से स्वच्छता के लिए चुने गये समिति के सदस्य के ऊपर आता है। कमरे में डेस्कें रखी होने की वजह से ठीक से सफ़ाई नहीं हो पाती। यदि जल्दी-जल्दी नहीं तो महीने में कम-से-कम एक बार कमरे से डेस्कें बाहर निकालकर पूरी तरह से उसकी सफ़ाई कर दी जानी चाहिए। कमरे में ख़ूब अच्छी तरह से झाड़ू लगनी चाहिए, खिड़कियाँ और दरवाज़े साफ़ किये जाने चाहिए, तैलचित्रों की गर्द झाड़ दी जानी चाहिए और दीवारों तथा छतों की सफ़ाई कर दी जानी चाहिए। अगर पूरी कक्षा काम में जुट जाती है और काम क्रम से बाँट दिया जाता है तो इस तरह से सफ़ाई करने में ज़्यादा देर नहीं लगती। यदि समितियाँ न बनाई गई हों तो अध्यापक को इस कार्य के लिए प्रबन्ध करना पड़ेगा। हर हालत में, चाहे समिति हो या न हो, उसे कार्य का निरीक्षण तो करना ही पड़ेगा और अपने हिस्से का काम करना पड़ेगा। यदि कक्षा-कक्ष न हों तो विभिन्न विषय-कक्ष अलग-अलग कक्षाओं को इस काम के लिए निर्दिष्ट कर दिये जाने चाहिए। कमरों की स्वच्छता के साथ-साथ उनकी सजावट की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। आकर्षक कमरे का प्रभाव उनके ऊपर पड़ता है जो उसमें काम करते हैं। इसका प्रभाव उनके स्वास्थ्य के साथ-साथ उनके चरित्र पर भी पड़ता है।

अधिकारियों को देख लेना चाहिए कि पर्याप्त धुलाई-गृहों का प्रबन्ध कर दिया गया है। यद्यपि इनका कुएँ के पास ऐसी जगह पर होना ज़रूरी है जहाँ पानी के ऊपर टिकट नहीं पड़ता, तथापि उनको कुओं से कुछ दूर पर स्थित होना चाहिए और इस तरह से बनाया जाना चाहिए कि गंदा पानी कुएँ में वापस चले जाने का ख़तरा न हो। पानी नालियों द्वारा बाग़ में या किसी दूसरी जगह ले जाना चाहिए। पानी पीने की जगहों के रद्दी पानी और विज्ञान के कमरे के रद्दी पानी के बारे में भी यही बात लागू होती है। उसको नालियों द्वारा बाहर निकाल देना चाहिए और बाग़ में बह जाने देना चाहिए। जहाँ पर नालियाँ ठीक से और काफी बनी हों वहाँ पर निश्चय ही इस तरह की कठिनाइयाँ पैदा नहीं होतीं। यह देखना ज़रूरी है कि पीने के पानी का प्रबन्ध ठीक से किया जाता है। जहाँ पानी कुएँ से लाना पड़ता है वहाँ पीनेवाले पानी को रखने की जगह जितनी ठंडी हो सके उतनी ठंडी रखना चाहिए।

जिन बर्तनों में पीने का पानी रखा जाता है, वे नियमित रूप से खाली किये जाने चाहिए और नित्य प्रति उनकी सफ़ाई होनी चाहिए।

चिकित्सा-सम्बन्धी ध्यान

वर्ष में एक बार नियमित रूप से पाठशाला के प्रत्येक विद्यार्थी की पूरी तौर से डाक्टरी परीक्षा होनी चाहिए। परीक्षा का परिणाम रिकॉड-शीट (record-sheet) के ऊपर चढ़ाकर पाठशाला में रख लिया जाना चाहिए। रिकॉर्ड-शीट मज़बूत काग़ज़ पर छपना चाहिए, ताकि डाक्टर प्रति वर्ष उसी शीट का प्रयोग कर सके और विद्यार्थी का चिकित्सा-सम्बन्धी गत इतिहास एक ही झलक में उसके सामने आ जाय। पृष्ठ १४८ पर इस प्रकार की शीट का एक नमूना दिया जाता है।

आजकल अधिकांश पाठशालाएँ डाक्टरों की पहुँच के अन्दर होती हैं। यदि ग्राम्य क्षेत्रों या दूसरी जगहों में पाठशाला की ओर से कुछ धन व्यय किये बिना डाक्टर प्राप्य न हो सकें तो यह सम्भव हो सकता है कि कई पाठशालाएँ इस विषय में सहयोग कर लें और वर्ष में एक बार अपने विद्यार्थियों की परीक्षा कराने के लिए डाक्टर ठीक कर लें।

जालंधर और पंजाब में इस प्रकार की योजना व्यवहार में लाई गई है। इस योजना के अनुसार कई एक पाठशालाएँ एक साथ मिल गईं और उन्होंने एक स्वास्थ्य-समिति की स्थापना कर ली। उन्होंने पूरे समय का एक डाक्टर रख लिया है और एक दवाख़ाना खोल लिया है। समिति की ओर से सहयोग करनेवाली पाठशालाओं के विद्यार्थियों की परीक्षा (डाक्टरी) और डाक्टरी इलाज का प्रबन्ध किया जाता है। योजना का खर्च चलाने के लिए सहयोग करनेवाली पाठशालाओं के (मध्यम और उच्च विभागों से) सब विद्यार्थियों से १ रु० ८ आ० प्रति वर्ष वसूल किया जाता है और स्थानीय सरकार तथा रेडक्रॉस परिषद् की ओर से धन दिया जाता है। अध्यापकों से ३ रु० सालाना लिया जाता है।

इस योजना के अन्तर्गत डाक्टर विद्यार्थियों की परीक्षा करता है और उनकी चिकित्सा के विषय में अपने आदेश छोड़ जाता है। यदि आवश्यक हो तो कुछ इलाज (जैसे आँख, कान की धुलाई आदि) पाठशाला में ही किये जा सकते हैं। यदि

रिकार्ड-शीट

जन्म-तिथि ..... लिंग ..... अभिभावक .....

पता .....

नाम ..... कक्षा .....

दिनांक	...	.....	.....	.....	.....
आयु	...	.....	.....	.....	.....
ऊँचाई	...	.....	.....	.....	.....
वज़न	...	.....	.....	.....	.....
सामान्य आकृति	..	.....	.....	.....	.....
शारीरिक स्थिति (Posture)	...	.....	.....	.....	.....
तापक्रम	...	.....	.....	.....	.....
नाड़ी — व्यायाम के पूर्व की गति	...	.....	.....	.....	.....
नाड़ी — ५० बार कूद लेने के बाद की गति	...	.....	.....	.....	.....
नाड़ी — व्यायाम के ३ मिनट के बाद की गति	...	.....	.....	.....	.....
(रक्त-चाप) (Blood Pressure)	..	.....	.....	.....	.....
हृदय के सिकुड़ने पर (Systolic)	...	.....	.....	.....	.....
हृदय के फैलने पर (Diastolic)	...	.....	.....	.....	.....
छाती का घेरा — विश्राम के समय	...	.....	.....	.....	.....
छाती का घेरा — पूरी श्वास अन्दर खींचने के बाद	...	.....	.....	.....	.....
छाती का घेरा — पूरी श्वास बाहर फेंकने के बाद	...	.....	.....	.....	.....
छाती का घेरा — जीवनी-शक्ति	...	.....	.....	.....	.....
शीश	...	.....	.....	.....	.....
(नेत्र)	...	.....	.....	.....	.....
दृष्टि-सम्बन्धी दोष	...	.....	.....	.....	.....
सामान्य	...	.....	.....	.....	.....
(कान)	...	.....	.....	.....	.....
सुनना	...	.....	.....	.....	.....
सामान्य	..	.....	.....	.....	.....
नाक	...	.....	.....	.....	.....
गला	...	.....	.....	.....	.....
मुख	...	.....	.....	.....	.....
त्वचा	...	.....	.....	.....	.....

गिल्टियाँ (glands)	
टीका	
फेफड़े	
हृदय	
उदर	
तिल्ली	
जिगर	
जननेन्द्रियां और मूत्रेन्द्रियां	
पूर्वचिकित्सा-सम्बन्धी इतिहास	
विवरण	

चिकित्सा पाठशाला में नहीं की जा सकती तो विद्यार्थी औषधालय भेज दिये जाते हैं और भीषण रोगों के मामलों में नगर के चिकित्सालय में पहुँचा दिये जाते हैं। यह योजना केवल उन्हीं स्थानों में कार्यान्वित की जा सकती है जहाँ ऐसी पाठशालाओं की संख्या काफ़ी बड़ी हो, जो आपस में सहयोग कर सकें; अन्यथा आर्थिक बोझ बहुत अधिक हो जायगा और पूरे समय के डाक्टर के लिए पर्याप्त कार्य भी न निकल पायेगा।

अन्य स्थानों में, जहां केवल एक या दो पाठशालाएं हों, शुल्क उसी तरह से लिया जा सकता है और एक ऐसा डाक्टर रखा जा सकता है जो रोज़ थोड़ी देर के लिए आये और विद्यार्थियों की परीक्षा तथा उन विद्यार्थियों का इलाज करे जिनको इलाज की जरूरत हो। व्यावहारिक दृष्टि से यह आवश्यक है कि छात्रावास के सम्बन्ध में इसी तरह से एक नियमित डाक्टर रखा जाय।

वार्षिक चिकित्सा-सम्बन्धी निरीक्षण के साथ-साथ, जैसा उन्नति-विवरण के सम्बन्ध में बताया जा चुका है, कक्षा-अध्यापक द्वारा वज़न और वक्षःस्थल की नाप हर तिमाही रजिस्टर में दर्ज की जायगी। इसकी सहायता से अध्यापक सब चीज़ों के ऊपर नज़र रखने में समर्थ रहता है और ज़रूरी मामलों में वह विद्यार्थी को डाक्टरी इलाज के लिए, यदि वह ऐसा करने की आवश्यकता समझता है तो, भेज सकता है।

जब डक्टर अपना वार्षिक निरीक्षण करता है तब जहाँ कहीं उसे किसी

प्रकार की विशेष चिकित्सा की आवश्यकता जान पड़ती है, वहाँ वह प्रधान अध्यापक को उसके बारे में सब बातें बता देता है। प्रधान अध्यापक इस सम्बन्ध में माता-पिता को खबर देता है और उनको इस बात के लिए राज़ी करता है कि जो कुछ ज़रूरी है वह किया जाय। निश्चय ही निरीक्षण की यह चीज़ बड़ी मूल्यवान् है।

वार्षिक डाक्टरी निरीक्षण के साथ-साथ वर्ष में एक बार, यदि प्रबन्ध किया जा सके तो, दन्तकार को बुलाकर विद्यार्थियों की परीक्षा करा देना बड़ी ही अच्छी बात है, विशेषरूप से यदि ग्राम्य क्षेत्रों में वह अपने साथ अपने यंत्र ला सके और उसी जगह पर आवश्यकतानुसार दाँतों का भराव कर सके अथवा दाँतों को उखाड़ सके।

पाठशाला के लिए अपनी एक नर्स होना बड़ा लाभदायक होता है, विशेषरूप से यदि पाठशाला के लगाव में छात्रावास हो। अधिकांश शिक्षा-विभाग इस प्रकार के काम के लिए किसी प्रकार की आर्थिक सहायता देने की अभी तक कोई आवश्यकता नहीं समझते, पर इस बात को तो सभी मानेंगे कि यह परमावश्यक और अति लाभदायक है। पाठशाला और छात्रावास में बहुधा ऐसी चीज़ें हो जाती हैं जिन्हें नर्स कर सकती है तथा बहुधा ऐसी चीज़ें भी होती हैं जो उसकी ओर से दिये जानेवाले ध्यान के कारण अधिक गम्भीर नहीं बन पातीं। यहां तक कि यदि कोई अस्पताल प्राप्य नहीं होता तो वह छात्रावास और घरों में मरीज़ों की तीमारदारी का काम कर सकती है और इस तरह से पाठशाला के कर्मचारियों के बीच उसकी उपस्थिति एक बहुत बड़ा वरदान बन जाती है। निश्चय ही इसका तात्पर्य है फ़ालतू खर्च, जिसे पाठशालाएँ हमेशा बर्दाश्त नहीं कर सकतीं। पर यहाँ फिर एक क्षेत्र की कई एक पाठशालाएँ सहयोग कर सकती हैं और यद्यपि इसका तात्पर्य यह होगा कि प्रत्येक पाठशाला को दैनिक ध्यान न मिल सकेगा, तथापि कम-से-कम सप्ताह में एक बार तो उसकी ओर ध्यान दिया ही जायगा और आवश्यकता पड़ने पर वह सदैव नर्स को बुला सकेगी। कभी-कभी कई एक माता-पिताओं के साथ यह प्रबन्ध करना सम्भव रहता है कि वे लोग मिलकर नर्स के वेतन के लिए धन दिया करें और उन्हें इस बात का अधिकार रहे कि जब आवश्यकता पड़े तब वे नर्स से सेवा करवायें। इस तरह से पाठशाला के कोष पर अधिक बोझ डाले बिना ही पाठशाला की नर्स को वेतन दिया जा सकता है। कभी-कभी यह सम्भव होता है कि

छात्रावास के लिए एक ऐसा प्रबन्धकर्ता मिल जाय जिसकी पत्नी एक प्रशिक्षित नर्स हो और वह कुछ भत्ता लेकर काम सँभाल ले। यह प्रबन्ध तो बड़ा ही अच्छा है।

चेचक का टीका नियमित रूप से लगना चाहिए और पाठशाला में चेचक के टीके का एक रजिस्टर रखा रहना चाहिए, जिसमें यह दर्ज हो कि विद्यार्थियों को पिछली बार टीका किस तारीख़ को लगा था और टीका उठा था या नहीं। फैलने-वाली छूत की बीमारियों के मामले में इस बात का प्रबन्ध तुरन्त किया जाना चाहिए कि सब विद्यार्थियों को टीके लग जायँ। अध्यापकों को अपने विद्यार्थियों के नेत्रों की ओर भी विशेष ध्यान देना चाहिए। जब वे देखें कि किसी तरह की ख़राबी है तब उन्हें आँखों की धुलाई और देख-भाल के लिए विद्यार्थी को तुरन्त औषधालय, नर्स अथवा डाक्टर के पास भेज देना चाहिए। यहाँ पर रोग के प्रथम चरण में सावधानी से काम ले लेने से आगे चलकर होनेवाले दुःख से बचत हो सकती है।

प्रत्येक पाठशाला में एक जूनियर रेडक्रॉस सोसाइटी होनी चाहिए। उसके कार्य का वर्णन ११वें अध्याय में किया जायगा। इसके अतिरिक्त प्रधान अध्यापक को स्वास्थ्य-सम्बन्धी विषयों पर नियमित रूप से भाषण दिलाने का प्रबन्ध करना चाहिए। ये भाषण चाहे उन अध्यापकों द्वारा दिलाये जायँ जिन्हें स्वास्थ्य से सम्बन्धित प्रारम्भिक विषयों का कुछ ज्ञान हो, या और भी अच्छा हो यदि स्थानीय चिकित्सकों (doctors) द्वारा दिलाये जायँ। इस तरह से बहुत लाभ हो सकता है।

आसन (Posture)

सिर दर्द, अल्प दृष्टि, रीढ़ की हड्डी के टेढ़ेपन, वक्षःस्थल के चिपटेपन और सीने की बीमारियों की सामान्य प्रवृत्ति के लिए ख़राब आसन ही उत्तरदायी होता है। अतएव अध्यापक के लिए यह देखना आवश्यक है कि विद्यार्थियों का आसन ठीक है। लिखाई और पढ़ाई के पाठों में विशेष करके आसन ख़राब हो जाने का भय रहता है। अच्छा आसन बहुत हद तक व्यावहारिक ज्ञान का विषय है। शरीर को इस तरह से

सन्तुलित कर लेना चाहिए कि थकावट कम-से-कम हो। अच्छी डेस्कों का होना ज़रूरी है। विद्यार्थी को सीधे बैठना चाहिए ताकि रीढ़ की हड्डी सिर की सीध में रहे और वह काम जो किया जा रहा हो, आँखों से एक फ़ुट की दूरी पर रहे।

अध्याय १०

शारीरिक क्रियाएँ

खेल

खेलों की व्यवस्था इस ढंग से की जानी चाहिए कि प्रत्येक विद्यार्थी को प्रति दिन खेलने के लिए अवसर मिल सके। यह उस दशा में हो सकता है जब कि विद्यार्थियों को बीस से पच्चीस तक के समुदायों में बाँट दिया जाय और एक या एक से अधिक अध्यापकों को प्रत्येक समुदाय का अध्यक्ष बना दिया जाय। यदि काफ़ी बड़ा मैदान मिल जाय तब तो पूरी पाठशाला के खेल एक ही समय में हो सकते हैं। खेल का घंटा समय-चक्र-विभाग का नियमित घंटा होगा और दिन के आख़िर में रखा जायगा। यह हर हालत में सर्वोत्कृष्ट प्रबन्ध है। जहाँ पूरी पाठशाला के एक साथ खेलने के लिए काफ़ी बड़ा मैदान मिलना असम्भव है, वहाँ आधे विद्यार्थी तीसरे पहर के काम के बीच में अपना खेल का घंटा ले सकते हैं और बाक़ी विद्यार्थी तीसरे पहर के आख़िर में। यदि ऐसा प्रबन्ध करना पड़े तो प्रति सप्ताह समय बदल देना चाहिए। उन समुदायों को, जो एक सप्ताह तीसरे पहर के मध्य में खेलते हैं, दूसरे सप्ताह में तीसरे पहर के अन्त में खेलना चाहिए।

यहाँ पर इस तथ्य की चर्चा कर देना अच्छा होगा कि खेलों का संगठन करना

आवश्यक है। जिस प्रकार पाठशाला-कार्य के किसी अन्य विभाग में विद्यार्थियों को उन्हीं के ऊपर नहीं छोड़ दिया जाता, उसी प्रकार इस विषय में भी विद्यार्थियों को स्वयं उन्हीं के ऊपर छोड़ा नहीं जा सकता। उनको इसमें सहायता और पथ-प्रदर्शन की उसी प्रकार आवश्यकता है जिस प्रकार कि दूसरी बातों में होती है। यदि उनको उनके ऊपर छोड़ दिया जायगा तो बहुतेरे विद्यार्थी नहीं खेलेंगे, खेलों का बहुत कुछ मूल्य नष्ट हो जायगा, वे अव्यवस्थित हो जायँगे और खेल ऊटपटाँग तरीक़े से खेले जायँगे, जिसके फलस्वरूप विद्यार्थियों को किसी प्रकार के वास्तविक आनन्द अथवा लाभ की प्राप्ति न हो सकेगी। यह आवश्यक है कि प्रत्येक समुदाय एक अध्यापक की अध्यक्षता में कार्य करे और जिस प्रकार पाठशाला के विषयों में एक नियमित पाठ्य-क्रम होता है उसी प्रकार इसमें (खेलों में) नियमित कार्यक्रम हों।

सर्वोत्कृष्ट खेल वे होते हैं जिनमें सभी खिलाड़ी खेल में सक्रिय भाग लेते हैं। हॉकी, एसोसिएशन फुटबाल (association football), बास्केट बाल, रगर टच (rugger touch)—ये सब बड़े बढ़िया खेल हैं। वॉलीबॉल में थोड़ी ही जगह की ज़रूरत पड़ती है और सहयोग की भावना पैदा करने के लिए यह खेल बड़ा मूल्यवान् है, पर इसमें व्यायाम नहीं हो पाता। क्रिकेट उन लोगों के लिए एक अच्छा खेल है जो इसमें विशेष योग्यता प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं, अर्थात् उन लोगों के लिए जो खेल के किसी विभाग में अच्छे हैं या उसमें उत्कट रुचि रखते हैं। परन्तु प्रत्येक बालक के लिए व्यायाम की व्यवस्था करने के प्रयास के दृष्टिकोण से यह अच्छा खेल नहीं है। सामान्य कार्यक्रम के लिए, जिसमें प्रत्येक विद्यार्थी से खेल में भाग लेने की आशा की जाती है, यह खेल अच्छा नहीं होता। ऐसे विद्यार्थियों का एक विशेष समुदाय बनाया जा सकता है जो खेल खेलना चाहते हैं और उसमें योग्यता प्रदर्शित करते हैं। यह ऐसा खेल नहीं है, जिसे हर कोई खेल सके और उसके ज़रिए से अच्छा व्यायाम कर सके। एक नासमझ आदमी को भी हॉकी अथवा फ़ुटबाल के खेल से व्यायाम और आनन्द की पर्याप्त मात्रा प्राप्त हो सकती है, पर मामूली तौर से क्रिकेट में बेसमझ आदमी को न तो कोई मज़ा ही आता है और न उतने समय से उसे कोई लाभ ही हो पाता है। अतएव खेलों का संगठन करते समय प्रबन्धकर्ताओं का उद्देश्य यह होना चाहिए कि वे इस प्रकार के खेलों को चुनें जिनसे प्रत्येक विद्यार्थी को रोचक व्यायाम प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हो सके।

विद्यार्थियों को समुदायों में विभाजित करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि एक समुदाय में वे ही लोग साथ रखे जायँ जिनमें खेलने का कौशल क़रीब-क़रीब बराबर हो। एक छोटा लड़का, जो हॉकी या फ़ुटबाल का अच्छा खिलाड़ी है सिर्फ़ अपने क़द की वजह से बड़े विद्यार्थियों के समुदाय से अलग न रखा जाना चाहिए। निर्णय का सिद्धान्त उम्र, क़द, कक्षा न होकर योग्यता होनी चाहिए। यह चीज़ निश्चय ही सीमा के भीतर है। फ़ुटबाल के लिए बड़े लड़कों के समुदाय में छोटे लड़कों को रखना ठीक नहीं। हॉकी में क़द का कोई ख़ास असर नहीं होता। समुदायों के लिए अध्यापक निर्दिष्ट करते समय भी यही सिद्धान्त लागू होना चाहिए। अध्यापक-मंडल में बड़प्पन के हिसाब से अध्यापक का क्या स्थान है, इस बात पर विचार किये बिना, जो सबसे अच्छा खिलाड़ी (अध्यापकों में) हो उसे बड़े विद्यार्थियों के समुदाय का अध्यक्ष बना देना चाहिए।

समुदाय के अध्यक्ष-अध्यापक को समुदाय के नेता के रूप में एक विद्यार्थी की नियुक्ति कर लेनी चाहिए। सबसे अच्छा उपाय यह है कि समुदाय के सदस्य स्वयं इस नेता का निर्वाचन कर लें। इसके बाद समुदाय का जितना खेल का सामान हो वह नेता के हाथ में सौंप दिया जाना चाहिए। उसका कर्तव्य यह होगा कि वह बारी-बारी से काम करनेवालों का एक सूची-पत्र बनाकर तैयार करे, ताकि समुदाय के सदस्य बारी-बारी से दिन में जितने भी सामान की ज़रूरत पड़ती हो उसके निकलवाने और रखवाने का काम कर सकें। अध्यक्ष-अध्यापक तथा समुदाय के नेता को मिलकर खेलों का एक साप्ताहिक समय-चक्र-विभाग बना लेना चाहिए। जगह की मितव्ययिता के विचार से दो समुदायों को अपना समय-चक्र-विभाग इस प्रकार बनाना चाहिए कि उनके खेल एक ही समय में पड़ जायँ। प्रत्येक दो समुदायों के लिए एक बड़ा मैदान और एक छोटा मैदान हो सकता है। जब A ग्रुप Z नामक बड़े मैदान में हॉकी खेल रहा हो तो B ग्रुप Y नाम के छोटे मैदान में बास्केट बाल खेल सकता है। दूसरे दिन B ग्रुप Z नाम के बड़े मैदान का प्रयोग और A ग्रुप छोटे मैदान Y का प्रयोग कर सकता है। इसी तरह से रोज़ होता रहेगा। इसी ढंग से एक बड़ा और एक छोटा मैदान लेकर C और D ग्रुप एक साथ खेल सकते हैं। तिमाही के आरम्भ में इन समय-चक्र-विभागों की प्रतियाँ प्रधान अध्यापक को सौंपी जा सकती हैं और सारे समदायों के लिए एक पूर्ण समय-चक्र-विभाग तैयार करके

सूचना-पट पर चिपकाया जा सकता है। इस प्रकार के समय-चक्र-विभाग का उदाहरण पृष्ठ ९३ पर दिया जाता है।

प्रत्येक समुदाय के पास अपनी सामग्री होनी चाहिए, हॉकी खेल की अपनी हॉकियाँ, अपने फ़ुटबाल आदि। यदि इतने अधिक सामान का आयोजन करने में बहुत ज़्यादा खर्च बैठता हो तो दो समुदाय मिलकर पूरी सामग्री का खर्च उठा सकते हैं। तो भी यह प्रबन्ध कुछ अधिक सन्तोषजनक नहीं होगा। प्रत्येक समुदाय के पास अपनी सामग्री होना कहीं ज़्यादा अच्छा है। आरम्भ में जब इस पद्धति का श्रीगणेश होता है उस समय यह सारा सामान मँगाने के कारण खेल के फ़ंड के ऊपर बहुत अधिक बोझ भले ही पड़ जाय, पर दो या तीन साल के बाद यह बड़ी सरलता के साथ चलने लगती है। यदि यह इच्छा हो कि विद्यार्थियों को सामान के लिए अपना उत्तर-दायित्व समझने की प्रशिक्षा दी जाय तो प्रत्येक समुदाय के लिए खेलों के फ़ंड में से वर्ष भर के लिए कुछ रुपया अलग कर दिया जाना चाहिए। उस हालत में उन्हें मालूम रहेगा कि साल भर में सामान के ऊपर वे इतना धन व्यय कर सकते हैं, चाहे खरीदारी पाठशाला की दूकान से, यदि हो तो, की जाय, चाहे पाठशाला-सहकारी समिति से की जाय, चाहे उस अध्यापक से की जाय जो खेल के सामान का अध्यक्ष हो। यह अध्यापक, या सहकारी-समिति वास्तविक खरीद व्यापारियों से करेगी, परन्तु प्रत्येक समुदाय जितना धन उसको दिया जायगा (खेल फ़ंड में से) उसी के हिसाब से समिति अथवा अध्यापक के पास अपना रुपया जमा कर देगा और सामान के रूप में उस धन को चुकता करवा लेगा। उनके लिए यह आवश्यक नहीं कि वे नक़द रुपया हाथ में दें, पर वे उसे खर्च उसी तरह से कर सकते हैं जिस तरह से नक़द रुपया हाथ में रख देने के बाद खर्च किया जा सकता है। यदि इस प्रकार का प्रबन्ध अपनाया जाता है तो विद्यार्थीगण जिस किसी चीज़ का प्रयोग करते हैं उसका मूल्य सीख जाते हैं और उसके प्रति अधिक सावधान हो जाते हैं।

यह परमावश्यक है कि समुदायों के अध्यक्ष-अध्यापक अपने समुदायों के साथ स्वयं खेलें और जो कुछ हो रहा हो उसमें उत्कट रुचि लें। यह बिलकुल निरर्थक है कि अध्यापक केवल एक किनारे खड़े रहकर घंटे की समाप्ति की राह देखता रहे। उसका खेल का घंटा उस समय तक कदापि सफल न होगा जब तक कि वह स्वयं जो खेल खेला जा रहा है उसमें उत्कट रुचि न ले तथा खेलने में, या कम-से-कम रेफ़री

करने में अपना मन न लगाये। साधारणतया अध्यक्ष-अध्यापक को यदि वह खेलने की इच्छा करता है तो उसे खेलना और रेफ़री करना दोनों ही बातें करनी पड़ती हैं। यह बिना किसी कठिनाई के किया जा सकता है और यह आवश्यक है कि अध्यापक को, जो भी खेल वह खेल रहा हो या जिसमें रेफ़री कर रहा हो, उसके नियम मालूम हों। यदि रेफ़री करने में ढिलाई होती है तो खेल का आधा मज़ा और आधी क़ीमत चली जाती है। अध्यापक को यहाँ पर उतना ही सावधान रहना पड़ता है कितना कि कक्षा के कमरे में। उसे अपने खेलों के लिए अपने को तैयार कर लेना चाहिए, उन्हें जानना चाहिए और उनमें उत्कट रुचि लना चाहिए। यह बात सभी समुदायों के लिए सत्य है, चाहे वे छोटे विद्यार्थियों के हों और चाहे बड़े विद्यार्थियों के।

उन खेलों के अतिरिक्त, जिनकी चर्चा पहले की जा चुकी है, बहुत-से ऐसे छोटे-छोटे खेल हैं जिनका प्रयोग यदि इच्छा हो तो सप्ताह के कार्यक्रम में विभिन्नता लाने के लिए किया जा सकता है। यहाँ पर बालचर लोगों के बहुत-से खेल खेले जा सकते हैं और खेलों की कोई भी छोटी-सी पुस्तक अध्यापक को ऐसे छोटे-छोटे खेलों के सम्बन्ध में सुझाव दे सकती है जिनके लिए न तो ख़ास जगह की ज़रूरत होती है, न यंत्र की।* अध्यापक को इस बात के लिए भी सतर्क रहना चाहिए कि उन भारतीय खेलों का प्रयोग किया जा सकता है जो उसके विद्यार्थियों को मालूम हैं और जो छोटे मैदानों में भी खेले जा सकते हैं। इस प्रकार के खेलों में, जिन्हें अधिकांश विद्यार्थी जानते हैं, कबड्डी एक है। यदि वे नये नियम, जो सुझाव के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं, अपना लिये जायँ और साँस रोकने का अभ्यास छोड़ दिया जाय और उसके बदले समय की एक अवधि निश्चित कर दी जाय, तो यह खेल बड़ा अच्छा है।

---

* वे पुस्तकें जो लेखिका को विशेष रूप से लाभप्रद जान पड़ी हैं—

(क) खेलों के सम्बन्ध में सुझाव (Suggestions in regard to Games) (बोर्ड आव एजूकेशन, लंदन)

(ख) पाठशाला के खेलों की पुस्तक (The Book of School Games) लेखक C.E. Hodges (Evans Brothers)

(ग) भारतीय खेल (Indian Games) लेखक—J.H. Gray (Y.M.C.A. Publishing House, Calcutta)

खेलों के इस नियमित कार्यक्रम के अतिरिक्त (अपनी) पाठशाला की तथा अन्य पाठशालाओं की टीमों के बीच मैचों का आयोजन घर की छुट्टी के बाद या शनिवार को किया जा सकता है। यदि भवन-प्रणाली का चलन हो तो सप्ताह में एक या दो दिन घर की छुट्टी के बाद भवन-दंगल चलते रह सकते हैं। इन दंगलों के अन्तर्गत प्रत्येक भवन की जूनियर और सीनियर दोनों ही टीमों के बीच होनेवाले खेल शामिल होने चाहिए और खाली कर देने (knock-out) की प्रणाली का प्रयोग न होना चाहिए। प्रत्येक भवन को अन्य प्रत्येक भवन के साथ खेलना चाहिए और जीत के लिए बिन्दु (points) बनाने चाहिए। तात्पर्य यह कि प्रत्येक सीनियर टीम को प्रत्येक अन्य सीनियर टीम के साथ और प्रत्येक जूनियर टीम को प्रत्येक अन्य जूनियर टीम के साथ खेलना चाहिए। चाहे जूनियर विद्यार्थियों द्वारा हो और चाहे सीनियर विद्यार्थियों द्वारा हो, जीत के लिए दोनों को एक ही बिन्दु दिये जाने चाहिए। निश्चय ही जिस भवन को सबसे अधिक बिन्दु प्राप्त होते हैं वही स्पर्धा में विजय पाता है। इस तरह से बड़ी उत्कट रुचि पैदा हो जाती है। एक चार्ट, जिसमें स्पर्धा के आगे बढ़ने के साथ-साथ प्राप्त होनेवाले बिन्दु दिखाये जायँ, सूचना-पट पर टाँग दिया जाना चाहिए। यदि भवन बड़े हैं तो प्रत्येक भवन से तीन टीमें तैयार की जा सकती हैं। इस तरह प्रत्येक भवन से काफ़ी बड़ी संख्या में विद्यार्थीगण इन अतिरिक्त खेलों में भाग ले सकते हैं। तिमाही भर में इस प्रकार की एक या दो स्पर्धाओं का आयोजन हो सकता है।

वर्ष में एक बार समस्त भवनों के बीच एक बड़ा-सा दंगल होना चाहिए। इसमें पूरे दो दिन लगाये जा सकते हैं और इसके अन्तर्गत दौड़ें तथा मैदान में होनेवाली घटनाओं के साथ-साथ खेल-कूद शामिल होने चाहिए। इस दंगल में खेलों की व्यवस्था नॉक-आउट-पद्धति के आधार पर करनी पड़ेगी और यदि यह मालूम पड़ता है कि कार्यक्रम ज़्यादा लम्बा होने के कारण दो दिन में पूरा न हो सकेगा तो शुरू के राउण्ड्स (preliminary rounds) मुख्य दंगल होने के पहले ही खेले जा सकते हैं। इस प्रकार का दंगल या तो पाठशाला के वर्ष के अन्त में, या एक तिमाही के आयोजन के अन्त में, जब सुविधा हो, किया जाना चाहिए।

यह बात सदैव याद रखनी चाहिए कि पाठशाला के लिए एक चैम्पियन हॉकी टीम अथवा एक चैम्पियन फ़ुटबाल टीम का उत्पादन करने की अपेक्षा यह कहीं अधिक

आवश्यक है कि उसके खेलों का कार्यक्रम इस तरह से व्यवस्थित किया जाय कि सारे विद्यार्थियों को नियमित रूप से खेलने का अवसर प्राप्त हो सके और जो कुछ हो रहा हो उसमें वे सक्रिय भाग ले सकें। ऐसी कोई भी चीज़, जिसमें अधिकांश विद्यार्थियों को हानि पहुंचाकर अथवा उनकी उपेक्षा करके कुछ थोड़े-से लोगों के ऊपर अत्यधिक ज़ोर देने की प्रवृत्ति हो, कड़ाई के साथ रोकी जानी चाहिए।

जब पाठशाला के पास स्वभावतः उसके प्रथम ग्यारह खिलाड़ी होंगे, जिनके बीच स्थान पाने के लिए सभी अच्छे खिलाड़ी उत्कट इच्छा रखते होंगे, तब इस प्रकार का प्रबन्ध करने की सम्भावना है कि उनको अलग से दी जानेवाली शिक्षा खेलों के सामान्य कार्यक्रम में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करे।

जब ज़िले या अन्य दंगलों के कारण पाठशालाओं को अपने अच्छे खिलाड़ियों की ओर अत्यधिक ध्यान केन्द्रीभूत करना पड़े तो ऐसे दंगलों से दूर ही रहना चाहिए। एक कारण, जिसकी वजह से पाठशाला के अन्दर भवन-दंगलों की सिफ़ारिश की जाती है, यह है कि उसके ज़रिए से समुदाय-स्पर्धा के लिए अवसर प्राप्त होता है और साथ-ही-साथ बहुसंख्यक विद्यार्थियों को खेल में भाग लेने का मौक़ा मिलता है। यदि जूनियर और सीनियर स्पर्धाएँ, अथवा जूनियर, बीच की और सीनियर स्पर्धाएँ रखी जाती हैं तो पाठशाला के आधे से लेकर दो-तिहाई तक विद्यार्थी भाग ले सकते हैं।

खेलों की व्यवस्था का रूप चाहे कुछ भी क्यों न हो, पर एक चीज़ ऐसी है जिसके विरुद्ध हमको निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए, वह है दर्शकों की वृद्धि का भय। बहुत-से देशों में व्यवसाय के रूपमें खेले जानेवाले खेलों का विकास और उनके पीछे-पीछे चलनेवाली हज़ारों दर्शकों की भीड़ आधुनिक सभ्यता का एक दुःखद तत्त्व बन गई है। भारतवर्ष में, विशेषकर ग्राम्य क्षेत्रों में, हमें मैदानों के सम्बन्ध में किसी तरह की कठिनाई नहीं होती, जिसका सामना पश्चिमी देशों में अक्सर करना पड़ता है। प्रत्येक अध्यापक का उद्देश्य यह होना चाहिए कि वह प्रत्येक बालक और बालिका को न केवल इस योग्य बना दे कि वह जब तक पाठशाला में रहे तभी तक खेले, बल्कि उनमें अच्छे खेल के प्रति एक ऐसे प्रेम का विकास कर दे कि भावी जीवन में वे केवल दर्शक बनकर ही सन्तुष्ट न रह सकें।

इस सम्बन्ध में पाठशालाएँ और बालचर तथा गर्ल गाइड जैसे संगठन गावों तक व्यवस्थित खेल पहुँचाने में भारतीय ग्रामों की बहुत कुछ सहायता कर सकते हैं।

यह एक प्रकार की सामाजिक सेवा है जो किसी पाठशाला के द्वारा ग्राम्य क्षेत्रों में और किसी के द्वारा नगर क्षेत्रों में की जा सकती है। खेलों का एक कार्यक्रम—भारतीय खेलों तथा परिवर्तित, या यदि यों ही ठीक पड़े तो अपरिवर्तित पश्चिमी खेलों का कार्यक्रम बनाया जा सकता है और खेल की टीम के द्वारा उस पर अधिकार प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार की टीम पहले गाँव के बच्चों के साथ खेल खेलना आरम्भ कर सकती है, फिर धीरे-धीरे आगे बढ़ते-बढ़ते ऐसे खेल खेले जा सकते हैं जो बड़े लोगों के लिए उचित हों। गाँवों के बीच स्पर्धाओं की व्यवस्था की जा सकती है और इस तरह से रुचि में वृद्धि की जा सकती है। ग्राम्य जीवन की अनेक समस्याओं में से एक समस्या यह है कि अवकाश के समय का रुचिपूर्ण ढंग से उपयोग किस प्रकार किया जाय। संगठित खेल इस समस्या का एक हल है। जहाँ मैदान मिल सकें वहाँ फ़ुटबाल की व्यवस्था की जा सकती है, जिसको खेलना हॉकी की अपेक्षा सस्ता पड़ता है; अन्यथा वॉली-बाल, कबड्डी अथवा अन्य छोटे-छोटे भारतीय खेल तथा दूसरे खेल नियमित रूप से खेले जा सकते हैं। इस तरह का कार्यक्रम पहले गाँव की प्राथमिक अथवा माध्यमिक पाठशाला के ज़रिए कार्यान्वित किया जाना चाहिए। इसके बाद वह सरलतापूर्वक गाँव के अन्य लोगों तक, जिनका पाठशाला से कोई सम्बन्ध नहीं अथवा जिनकी आयु बड़ी है, पहुँचाया जा सकता है। ग्राम्य क्षेत्रों में हाईस्कूल खेल और खेल खिलाने दोनों के लिए अपने विद्यार्थियों की खेलों की टीमें संगठित करके अपने आस-पास के गाँवों को सहायता देने के लिए बहुत कुछ कर सकते हैं।

जैसा अनुशासन वाले अध्याय में बताया जा चुका है, उचित ढंग के अनुशासन की शिक्षा देने में खेलों से बहुत बड़ी सहायता मिलती है। फिर भी इस दिशा में मिलनेवाली सफलता बहुत कुछ स्वयं खेल-समुदाय के भीतर की उचित व्यवस्था पर निर्भर रहती है। यदि अध्यक्ष-अध्यापक उस खेल के नियमों से अपने को अनभिज्ञ कराने की चिन्ता न करे जो खेला जा रहा हो अथवा यदि उनको जानते हुए भी इस बात को देखने की परवाह न करे कि उनका पालन हो रहा है या नहीं, तो खेल आत्म-अनुशासन के विकास में सहायक न होंगे। यहाँ पर दिखाई जानेवाली असावधानी, दूसरी किसी भी बात में दिखाई जानेवाली असावधानी की ही तरह सब कुछ नष्ट कर देगी।

शारीरिक व्यायाम

पाठशालाओं में शारीरिक व्यायाम होना आवश्यक है। मैं पहले बता चुका हूँ कि छात्रावास में नित्य प्रति प्रातःकाल के समय शारीरिक व्यायाम होना चाहिए। सबेरे की पाठशाला के मध्य में व्यायाम के लिए एक छोटा-सा घंटा भी होना चाहिए। यह पन्द्रह मिनट से अधिक लम्बा होने की आवश्यकता नहीं। यह अवकाश (interval) का काम देता है और शोधक व्यायाम करने के लिए अवसर भी प्रदान करता है। व्यायाम के इस घंटे के लिए पाठशाला पन्द्रह से लेकर बीस तक विद्यार्थियों के समुदायों में विभाजित की जानी चाहिए। प्रत्येक समुदाय का एक विद्यार्थी नेता होना चाहिए। एक अध्यापक द्वारा उसका निरीक्षण भी होना चाहिए। एक अध्यापक दो समुदायों का निरीक्षण कर सकता है। समुदायों में विद्यार्थी लगभग एक ही क़द के होने चाहिए। आयु अथवा कक्षा की अपेक्षा क़द को विभाजन का सिद्धान्त बनाना कहीं अच्छा है। मेरी राय तो यही है कि व्यायाम के लिए समुदाय ऐसे ही विद्यार्थियों को लेकर बनाने चाहिए जो एक ही क़द के हों। यदि कक्षाओं का प्रयोग विभाजन-सिद्धान्त के रूप में किया जाता है तो क़द का यह विषय ध्यान में नहीं रखा जा सकता। फल यह होता है कि ऐसे समुदाय बनकर इकट्ठा होते हैं जिनकी ऊँचाई-निचाई में कोई समानता नहीं होती। जब यह बात होती है तो क़वायद ठीक से नहीं हो पाती। सम्पूर्ण पाठशाला को क़द के हिसाब से ठीक कर लेना चाहिए और तब उसका समुदायों में विभाजन किया जाना चाहिए।

यह आवश्यक है कि विद्यार्थी-नेता तथा अध्यापक, दोनों ही यह जानते रहें कि वे क्या कर रहे हैं। ऐसी पुस्तकें प्राप्त की जा सकती हैं जिनमें विभिन्न समुदायों* के लिए व्यायामों की तालिकाएँ दी हुई हों। परन्तु यदि सम्भव हो तो उन अध्यापकों को, जिन्हें समुदायों का अध्यक्ष बनना हो, शारीरिक प्रशिक्षण-विशेषज्ञ के साथ

---

* जैसे लंदन के बोर्ड आफ़ एजूकेशन द्वारा प्रकाशित—(1) Syllabus of Physical Training for Schools, (2) Reference Book of Gymnastic Training for Boys, (3) Physical Exercise for Children under 7 years of age.

थोड़े समय तक व्यायाम-सम्बन्धी सामग्री का अध्ययन कर लेना चाहिए और अपने समुदायों के लिए तालिकाएं बनाकर तैयार कर लेनी चाहिए। तब वे अपने विद्यार्थी-नेताओं को प्रशिक्षित कर सकते हैं। यदि विद्यार्थी-नेता भी थोड़ी-सी पाठ्य सामग्री का अध्ययन कर सकें तो और भी अच्छा है। परन्तु जब पहले शिक्षा पा लेनेवाले विद्यार्थी पाठशाला से बाहर हो जायँ तब अध्यापक में इस बात की योग्यता होनी चाहिए कि वह औरों को प्रशिक्षित बना सके। इस व्यवस्था में यह बात पहले ही से मान ली गई है कि पाठशाला में कोई ड्रिल-अध्यापक न होगा। यदि ड्रिल-अध्यापक होगा तो वह शारीरिक व्यायाम का संचालन करने के योग्य होगा। यदि ड्रिल-अध्यापक हो तब भी यह और अच्छा होगा कि सारे समुदायों की ड्रिल एक ही समय में हो। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो कुछ समुदायों के लिए ड्रिल का समय अच्छा न होगा।

कुछ को प्रातःकाल के आरम्भ में समय मिलेगा, कुछ को अन्त में और कुछ को तीसरे पहर के अन्त में। प्रातःकाल के मध्य के कुछ बाद का समय सबसे अच्छा है। फिर यदि पूरी पाठशाला की ड्रिल एक ही समय में नहीं होती तो समुदायों को क़द के हिसाब से व्यवस्थित करना असम्भव हो जायगा; उनकी व्यवस्था कक्षाओं के हिसाब से करनी पड़ेगी और जैसा हम पहले ही देख चुके हैं, यह सर्वोत्कृष्ट उपाय नहीं है।

ड्रिल-अध्यापक अन्य अध्यापकों को, जो समुदायों का निरीक्षण करने में उसको सहायता पहुँचा रहे हों, तथा नेताओं को भी प्रशिक्षित करने में समर्थ होगा। वह प्रत्येक वर्ष के आरम्भ में नेताओं के साथ उनकी नियुक्ति के तुरन्त बाद एक विशेष पाठ्य सामग्री ले सकता है। ड्रिल के घंटे में वह सामान्य निरीक्षण भी करता रहेगा और एक समुदाय से दूसरे समुदाय के पास यह देखते हुए घूमता रहेगा कि व्यायाम उसी ढंग से किये जा रहे हैं जिस ढंग से किये जाने चाहिए और सारे विद्यार्थी इच्छित स्तर पर रखे जा रहे हैं या नहीं।

ड्रिल के घंटे में किये जानेवाले अभ्यास शोधक होने चाहिए, विशेषरूप से आसन के सम्बन्ध में। घटे के अन्त में एक ऐसा खेल होना चाहिए जो दो या तीन मिनट तक चले। उसके बाद एक या दो मिनट के लिए श्वास-सम्बन्धी अभ्यास होने चाहिए। इस बात पर ज़ोर दिया जाना चाहिए कि ड्रिल का घंटा किसी भी दशा

में सैनिक ढंग की किसी क़वायद के लिए प्रयोग में न लाया जाय। यह केवल शारीरिक व्यायाम के लिए होता है और इस प्रकार की चीज़ें, जैसे सैनिक चाल से चलना, मोड़ लेना आदि, बिलकुल अलग कर देनी चाहिए।

अध्याय ११

अन्य क्रियाएँ

सहकारी समितियाँ

एक सबसे महत्त्वपूर्ण पाठ जो पाठशाला को पढ़ाना होता है, वह है सहयोग का पाठ। किसी भी बच्चे को सामान्यरूप से सहयोग का और विशेषरूप से सहकारी समितियों का ज्ञान प्राप्त किये बिना पाठशाला से न गुज़रना चाहिए। वह ज्ञान जितना अधिक व्यावहारिक होगा, उतना ही अच्छा होगा। इस प्रकार यदि किसी तरह सम्भव हो तो पाठशाला में एक सहकारी समिति होनी चाहिए, जहाँ विद्यार्थी सावधानी के साथ किये जानेवाले निरीक्षण के अन्दर रहकर काम करते हैं और यथार्थ अभ्यास द्वारा यह सीखते हैं कि सहकारी समिति किस प्रकार चलाई जाती है। सहकारी विभाग के पदाधिकारी इस विषय में जो भी सहायता आवश्यक हो, उसे देने के लिए सदैव तैयार रहते हैं।

निश्चय ही इस तथ्य के कारण, कि समितियों के सदस्य सीख रहे होंगे, कठिनाइयाँ सामने आयेंगी, परन्तु उन पर विजय पाई जा सकती है। अध्यापक-मंडल के एक सदस्य का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह इस विषय (subject) में विशेष रुचि ले और पाठशाला के अतिरिक्त कार्य की इस शाखा को अपनी आदत (hobby)

बना ले। यदि अध्यापक-मंडल का कोई सदस्य इस तरह से विषय में आवश्यक रूप से रुचि रखता हो और उसके प्रति उसका अतीव अनुराग हो तो उन समस्याओं पर विजय पाने में, जो कभी-कभी उठती है, कोई कठिनाई न होगी।

मामूली तौर से पाठशाला में सहकारी समिति को चलाने का सबसे सरल उपाय है—किताबों और लिखने-पढ़ने के सामान की बिक्री के लिए समिति बनाना। विद्यार्थी-गण समिति के हिस्सेदार होंगे और निर्धारित सीमा के अन्दर-अन्दर जितने हिस्से वे खरीदना चाहेंगे, खरीदते रहेंगे। हिस्सेदार लोग बारी-बारी से बेचने का काम करेंगे और एक निश्चित समय तय कर लिया जायगा जब कि लिखने-पढ़ने की सामग्री खरीदी जा सकेगी और एक निश्चित स्थान तय कर दिया जायगा जहाँ वह बेची जा सकेगी। बेचनेवालों को अध्यक्ष-अध्यापक के सतर्क निरीक्षण के अन्तर्गत हिसाब-किताब रखना चाहिए। खरीद, दाम तथा समिति को चलाने से सम्बन्ध रखने-वाले किन्हीं अन्य विषयों के बारे में निर्णय करने के लिए हिस्सेदारों की बैठकें नियमित-रूप से होती रहनी चाहिए। नियमित पदाधिकारियों का चुनाव होना चाहिए, बैठकों की नियमित कार्यवाही का विवरण रखा जाना चाहिए और हिसाब-किताब की जाँच प्रति वर्ष नियमित रूप से होनी चाहिए। यदि समिति का नाम सहकारी विभाग के रजिस्टर में दर्ज हो तो हिसाब की जाँच विभाग की ओर से की जायगी और समिति को विभाग द्वारा निर्धारित किये हुए नियमों का पालन करना पड़ेगा। समिति को विभाग के रजिस्टर में दर्ज करा देना प्रायः सर्वोत्कृष्ट उपाय होता है। भाज्य धन की घोषणा की जायगी और अपनाये हुए नियमों के अनुसार वह हिस्सेदारों को चुका दिया जायगा।

इस क्रिया को और आगे बढ़ाने पर सहकारी दूकान आती है। यह नियमित रूप से चलनेवाली दूकान होती है, जिसमें लिखने-पढ़ने की सामग्री तथा पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य वस्तुएँ भी बिकती हैं। कोई भी चीज़, जिसके बारे में हिस्सेदार निर्णय करते हैं और जिसकी माँग होती है, वह इस दूकान में रखी जा सकती है। यदि सम्भव हो तो दूकान बाहर की तरफ़ सड़क पर खुलनी चाहिए ताकि सामान आम जनता के हाथों बेचा जा सके। यह निश्चित कर लिया जाना चाहिए कि दूकान किस-किस समय पर खुलेगी। इसके बाद सब हिस्सेदार बारी-बारी से दूकान पर बैठेंगे और माल बेचेंगे। इस प्रकार की क्रिया में सहकारी सिद्धान्तों की शिक्षा तो मिलती ही है,

उसके अतिरिक्त व्यावहारिक गणित तथा दूकान चलाने और हिसाब-किताब रखने का भी अच्छा अभ्यास हो जाता है। हिसाब-किताब इतना आसान होगा जितना कि सम्भवत: हो सकता है। सारा माल नक़द दामों पर बेचा जाना चाहिए, उधार नहीं। प्रति सारी चीज़ें एक अध्यापक के सतर्क निरीक्षण के अन्तर्गत रहेंगी जो माल की *जाँच प्रति दिन करेगा।*

सहकारी समिति का दूसरा रूप जो पाठशाला में चालू किया जा सकता है, वह है सहकारी निर्णायक समिति (co-operative arbitration society)। गाँव में इसका प्रयोग मुक़दमेबाज़ी की इच्छा को रोकने की चेष्टा करने तथा लोगों को न्यायालय गये बिना अपने झगड़ों का निबटारा कराने में समर्थ बनाने के लिए किया जाता है। जो व्यक्ति इस प्रकार की समिति का सदस्य बन जाता है उसके लिए साधारणतया योजना यह है कि समिति में सम्मिलित होते समय वह एक समझौते पर हस्ताक्षर करे, जिसके अनुसार यदि वह समिति द्वारा अन्य सदस्यों के साथ उपनियमों में निर्दिष्ट किये हुए विषयों में से किसी विषय के सम्बन्ध में होनेवाले झगड़े का निबटारा कराने से इनकार करता है, अथवा यदि वह किये गये निर्णय को कार्यान्वित होने से रोकता है, तो उसे नियमों के अनुसार निर्धारित की हुई एक निश्चित रक़म जुरमाने के रूप मे देने के लिए तैयार रहना पड़ता है। जब कोई झगड़ा उठ खड़ा होता है तो पीड़ित व्यक्ति समिति के पास आवेदन-पत्र भेजता है। मुद्दालेह को बुलाया जाता है और समिति मित्रभाव से झगड़े का निबटारा करने की चेष्टा करती है। समिति द्वारा निबटारा न हो पाने पर पंच नियुक्त किये जाते हैं, जो मुक़दमे का अध्ययन करते हैं। उनकी ओर से समिति अथवा रजिस्ट्रार के पास अपील की जाती है। पंचों की नियुक्ति जूरी लोगों की उस सूची से की जाती है जो वार्षिक चुनाव के बाद तैयार होती है। झगड़े में किसी दल की ओर से कोई भी वकील पैरवी के लिए नहीं खड़ा हो सकता, न कोई वकील पंच नियुक्त हो सकता है और न ही वह समिति का सदस्य हो सकता है।

मशीनरी के इस अतीव लाभदायक अंग का प्रयोग पाठशालाओं में किया जा सकता है, जहाँ विद्यार्थियों के बीच यदाकदा छोटे-छोटे झगड़े उठा ही करते हैं। यदि इस प्रकार की पद्धति का प्रयोग किया जा रहा हो तो यह नियमित रूप से चलनेवाली स्वायत्त शासन-प्रणाली का अंग बनाई जा सकती है, अथवा यह एक स्वतंत्र

क्रिया के रूप में रह सकती है। निर्णय को कार्यान्वित होने देने के लिए, अथवा नियमों का पालन न करने के लिए, धन के रूप में दंड निर्धारित करना सम्भव नहीं। परन्तु कोई दूसरा दंड, जो पाठशाला के जीवन तथा स्थानीय दशाओं के लिए अधिक उपयुक्त हो, निर्धारित किया जा सकता है। मशीनरी का शेष भाग सरल ढंग से प्रयुक्त हो सकता है। इस तरह से विद्यार्थियों को सहयोग तथा पंचायत दोनों में मूल्यवान् प्रशिक्षण प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार की समिति निरीक्षण के अन्तर्गत रहकर विद्यार्थियों द्वारा स्वयं चलाई जानी चाहिए। प्रधान अध्यापक को यह देखने के लिए कि नीचता के वश अन्याय तो नहीं किया जा रहा है, समिति की कार्यवाही पर एक नज़र रखनी चाहिए। पंचों के मंडल का निर्वाचन करते समय विशेष सावधानी से काम लेना चाहिए। यहाँ पर इस बात की सम्भावना हो सकती है कि प्रधान अध्यापक को, यदि उसको यह पता चलता है कि अनुपयुक्त विद्यार्थी इस पद के लिए निर्वाचित किये जा रहे हैं, एक-दो शब्द कहने पड़ें।

रेड क्रॉस समितियां

रेड क्रॉस समिति अतिरिक्त पाठशाला-क्रिया का एक अत्यन्त मूल्यवान् स्वरूप है। यहाँ पर फिर अध्यापक-मंडल के एक या दो सदस्य इस प्रकार की समिति के अध्यक्ष बना दिये जाने चाहिए, यद्यपि समिति को चलाने तथा उसका प्रबन्ध करने का काम यथासम्भव विद्यार्थियों द्वारा स्वयं किया जाना चाहिए। पाठशाला की रेड क्रॉस समितियाँ जूनियर रेड क्रॉस समितियाँ कहलाती हैं।

ये क्रियाएँ अनेक दिशाओं में संचालित की जा सकती हैं। यदि पाठशाला के लगाव में छात्रावास हो तो उनका एक काम यह होगा कि वे छात्रावास के औषधालय का, जहाँ पर मामूली दवाएँ और इस तरह की चीज़ें जैसे पट्टियाँ, आयोडीन, चिपकनेवाला प्लास्टर आदि मिलते हों, प्रबन्ध और देखभाल करें। समिति के सदस्य दिन में निश्चित समय पर बारी-बारी से वहाँ उपस्थित रह सकते हैं और आवश्यकता पड़ने पर जब बुलावा आवे तब वहाँ जा सकते हैं। यदि छात्रावास न हो तो भी पाठशाला के विज्ञान-विभाग के लगाव में एक औषधालय खोला जा सकता है, अथवा स्वतंत्र रूप से एक पृथक् क्रिया के रूप में चलाया जा सकता है और रेड क्रॉस समिति उसके प्रबन्ध

के लिए उत्तरदायी बनाई जा सकती है। प्रति दिन दो सदस्यों को ड्यूटी पर रहना चाहिए और समिति के सब सदस्यों को बारी-बारी से काम पर जाना चाहिए। निर्धारित समयों पर वे बुलाये जा सकेंगे और निर्धारित समय पर ही वे उपस्थित रहेंगे।

सदस्यता आवश्यक रूप में ऐच्छिक होनी चाहिए और उसके लिए थोड़ा-सा चन्दा होना चाहिए। यह वास्तव में बहुत कम होना चाहिए। जो लोग सेवा के रूप में सहायता देते हों उन्हें भी सदस्यता का अधिकार होना चाहिए, ताकि कोई भी सदस्यता से वंचित न रह सके। सदस्यों को व्यक्तिगत रूप से प्रमाण-पत्र दिये जा सकते हैं और सदस्यता की नामावाली किसी सुविधाजनक स्थान में चिपकाई जा सकती है। अध्यक्ष-अध्यापक फ़ंड का निरीक्षण करेगा। यह फ़ंड सदैव समिति के लिए खोले गये बैंक के हिसाब में जमा कर दिया जाना चाहिए।

रेड क्रॉस समिति का काम दूना होता है। एक ओर तो उसे अपने सदस्यों को स्वास्थ्य के नियम, प्राथमिक सहायता और मलेरिया, प्लेग, चेचक तथा हैज़ा जैसी बीमारियों से बचने के सम्बन्ध में साधारण उपाय करने के आदेश देना रहता है, दूसरी ओर उसे अपने सदस्यों को इस बात की शिक्षा देनी पड़ती है कि वे स्वास्थ्य के दूत बनकर कार्य करें और अपना ज्ञान उन लोगों के बीच फैलायें जो उस ज्ञान से रहित हों।

पहला काम पूरा करने के लिए प्राथमिक सहायता की पाठ्य सामग्री का प्रबन्ध किया जाना चाहिए, जिसको सदस्यगण ग्रहण कर सकें। रोग, उसके कारण और बचाव के ऊपर भाषण दिलाने का प्रबन्ध किया जाना चाहिए। धीरे-धीरे एक ऐसे पुस्तकालय का निर्माण होना चाहिए जिसमें स्वास्थ्य, स्वास्थ्य के नियम, रोग और उनके कारण तथा बचाव से सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तकें हों। जहाँ तक सम्भव हो, इस प्रकार के पुस्तकालय में मातृभाषा में लिखी हुई पुस्तकें होनी चाहिए। सदस्यों को शिक्षा देने में सहयोग देने के लिए स्थानीय डाक्टर से प्रार्थना की जानी चाहिए और कोई भी अन्य बाहरी सहायता, जो लाभदायक हो सके, प्राप्त कर ली जानी चाहिए। समिति के सदस्य वज़न लेकर और ऊँचाई नापकर तथा कोई भी अन्य काम, जो वे डाक्टर को सहायता देने के लिए कर सकते हैं, करके वार्षिक डाक्टरी परीक्षा में सहायता पहुँचा सकते हैं। वे अध्यापकों की भी उस समय सहायता कर सकते हैं जब कि वे (अध्यापक) रिपोर्ट लिखने के लिए इसी तरह की सूचना प्राप्त कर रहे हों।

दूसरा काम पूरा करने में समिति की क्रियाओं का प्रथम क्षेत्र पाठशाला स्वयं है। सदस्यगण प्रदर्शिनियों तथा वाद-विवाद की व्यवस्था कर सकते हैं, जो उन्हें अपने पाठशाला के साथियों के बीच उस ज्ञान का प्रचार करने में सहायता देंगी जिसकी प्राप्ति उन्हें समिति में रहकर हुई है। इसी अभिप्राय से रंगमंच पर नाटक खेले जा सकते हैं। अनुभव हो जाने पर कार्य का विस्तार अधिक विस्तृत क्षेत्र में किया जा सकता है। समिति पड़ोस में जो भी ग्राम्य पुनर्निर्माण-कार्य किया जा रहा हो उसमें भाग ले सकती है और यहां पर वह अत्यधिक सहायता पहुँचा सकती है। स्वास्थ्य-सम्बन्धी विषयों पर नाटक खेले जा सकते हैं और लालटेन के ज़रिए दिये जानेवाले भाषणों का आयोजन किया जा सकता है। सदस्यगण भाषणों की व्यवस्था करने तथा लालटेन (magic lantern) को चलाने में सहायता पहुँचा सकते हैं और दूसरी ओर डाक्टर अथवा किसी अन्य अनुभवी व्यक्ति को भाषण देने के लिए आमंत्रित कर सकते हैं। वे प्राथमिक सहायता तथा बचाव-सम्बन्धी उन उपायों का प्रदर्शन कर सकते हैं जो गाँव में अपनाये जा सकते हैं। वे ग्रामवासियों को स्वास्थ्य-क्लबों की व्यवस्था करने में सहायता दे सकते हैं। इस प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन पहले से ही हो जाना चाहिए और इसके बाद यथाक्रम उनको पूरा किया जाना चाहिए। रेड क्रॉस समिति के सदस्यों को अपनी पाठशाला के उन साथियों को देखने के लिए भी अवश्य जाना चाहिए जो पाठशाला से दूर बीमार पड़े हों और जिस तरह भी सम्भव हो उनको सहायता देनी चाहिए। वे 'शिशु-सप्ताह' जैसे जलसों की व्यवस्था करने तथा उनको पूरा कराने में भी सहायक हो सकते हैं। पाठशाला तथा आसपास की बस्ती के स्वास्थ्य से सम्बन्ध रखनेवाले कोई भी विषय रेड क्रॉस समिति की वैध क्रियाएँ बन जाते हैं।

बालचर और गाइड्स

यहाँ पर बालचर, गर्लगाइड्स, शेरबच्चे (Wolf Cubs) तथा ब्ल्यू बर्ड्स (Blue Birds) आदि संगठनों को सविस्तार लेने की आवश्यकता नहीं। इन क्रियाओं के संगठन की विस्तृत सूचना पाठशाला के किसी भी अधिकारी प्रकाशन से प्राप्त की जा सकती है, विशेषरूप से नागरिकता की प्रशिक्षा देने तथा उन स्वाभाविक

(instinctive) क्रियाओं के लिए निर्गम द्वारों का आयोजन करने के विचार से, जो अन्यथा दब जायगी अथवा अनुचित उपायों से अपने को व्यक्त कर बैठेगी।

फिर भी कुछ बातें ऐसी हैं जिनके ऊपर ज़ोर देना दीर्घकालीन बालचर आन्दोलन के आधार पर आवश्यक जान पड़ता है।

पहली बात तो यह है कि इस बात पर ज़ोर दिया जाना चाहिए कि यदि इन संगठनों के सम्बन्ध में आवश्यकता से अधिक क़वायद कराई जायगी तो इनका कार्य नष्ट हो जायगा। इंगलैंड के एक प्रमुख बालचर-अध्यापक ने एक बार कहा था कि उसने अपनी टोली को वर्ष भर में केवल पाँच मिनट के लिए ड्रिल करवाई थी और उसको ऐसा लगता था कि वे पाँच मिनट ही बहुत ज़्यादा थे। यह ख़राब स्काउट-मास्टर की पहचान है कि उसकी टोली लगातार तमाम क़वायद, अथवा थोड़ी भी क़वायद करती रहे। क़वायद ज़रूरी नहीं है। बालचर, गाइड्स, शेर-बच्चे और ब्ल्यू बर्ड्स से होनेवाला सबसे बड़ा लाभ यह है कि ये ऐसे संगठन हैं जिनमें अनुशासन की सच्ची विधियों का प्रयोग सरलता से किया जा सकता है और उनकी क्रियाओं में इस प्रकार के गुण होते हैं कि क़वाद की विधियाँ बिलकुल अनावश्यक और असम्बद्ध हो जाती हैं। वही नेता क़वायद का आश्रय लेता है जिसमें आरम्भिक शक्ति तथा कल्पना का अभाव होता है। ये संगठन खेल के संगठन हैं और उनमें किया जानेवाला कार्य खेल की प्रवृत्ति में किया जाता है। कोई भी वस्तु, जो उन्हें इस मनोवैज्ञानिक रीति से ठोस आधार से दूर ले जाने की प्रवृत्ति रखती हो, निरुत्साहित की जानी चाहिए।

इससे सम्बन्धित एक आवश्यक बात यह है कि इन संगठनों का प्रबन्ध पाठशाला की कक्षाओं की तरह से न किया जाना चाहिए। कोई भी चीज़ बालचर-संस्था के प्रति विद्यार्थियों की रुचि को उतनी जल्दी नष्ट नहीं कर सकती जितनी इस भावना की उत्पत्ति कि वह वास्तव में एक और कक्षा है जहाँ पर तमाम चीजें सीखनी ही पड़ेंगी। बालचरों और गाइडवालों को तमाम चीज़ें सीखनी होती हैं, परन्तु यदि वे एक बड़े खेल के अंग के रूप में आती हैं तो रुचि कहीं अधिक होती है और किया हुआ कार्य अधिक अच्छा होता है। यह केवल उसी दशा में हो सकती है जब कि नेता इस बात को समझता रहे जैसा पहले बताया जा चुका है, कि ये संगठन खेल के संगठन हैं। यदि वह पाठशाला के मैदान में अपनी टोली को रजिस्टर में दर्ज करके और उनको कुछ गाँठें, पट्टियाँ, संकेत आदि सिखाने की चेष्टा करके ही संतुष्ट रहता है तो वह

कदापि सफल न हो सकेगा। उसे उनको बाहर ले जाना चाहिए, पूरी चीज़ को एक बड़े खेल में परिवर्तित कर देना चाहिए, जिसमें तमाम छोटे-छोटे खेल शामिल हों और तब वह देखेगा कि वे उसी चीज़ को सीखने में कितनी अधिक रुचि लेंगे, जिसको ऐसे वे अरुचिकर क़वायद के रूप में सीखते होते। यह सबसे अधिक आवश्यक है और इस एक बात को न समझ सकने के कारण तमाम लोगों को रुचि का प्रतिपादन करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। संगठनों का आयोजन खेल-विधि के मनोवैज्ञानिक आधार पर किया गया है, इसलिए कार्य का सम्पादन करने में इस विधि का उपयोग करना कठिन नहीं। जैसे-जैसे यह किया जायगा वैसे-वैसे ये संगठन वास्तव में सफल होंगे।

तीसरी बात जो ध्यान देने की है वह यह कि ये संगठन, जैसा कि उनके विषय में प्रायः सोचा जाता है, अध्यक्ष-अध्यापक के लिए श्रेष्ठ पद की प्राप्ति के साधन नहीं होते। यह बात पछतावा करने के योग्य है, पर है बिलकुल सच कि बहुत-से अध्यापक बालचर-संस्था में लग गये हैं और मुख्यतः इस विचार से बालचर-शिक्षक के रूप में प्रशिक्षित हुए हैं कि प्रशिक्षित बालचर-शिक्षक हो जाने से उनके गुणों में वृद्धि हो जायगी और एक समुदाय को चलाकर वे शीघ्र ही श्रेष्ठ पद-प्राति के लिए अपने अवसरों में वृद्धि कर लेंगे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसे बालचर-शिक्षकों के अनुशासन में रहकर, जो इस प्रकार के कारणों से काम लेते हैं, बालचर की सच्ची सफलता की आशा नहीं की जा सकती। नहीं तो उसमें बालचर के लग जाने से काम ख़ुद ही उसे कसकर पकड़ लेता है और उसके हृदय में एक परिवर्तन उत्पन्न कर देता है। बालचर-शिक्षक के चुनाव में पाठशाला के अधिकारीगण बहुत अधिक सावधानी नही कर पाते। यह काम ऐसा नहीं है जो ऐरे, ग़ैरे नथ्थू ख़ैरे (Tom, Dick, and Harry) सभी के लिए उपयुक्त हो। बिना सोचे-समझे सभी और नाना प्रकार के लोगों को बालचर-शिक्षक बनने की प्रशिक्षा देकर आन्दोलन को अत्यधिक हानि पहुँचाई जा चुकी है यह एक ऐसा काम है जिसके लिए वास्तविक इच्छा होनी चाहिए और जिसके लिए कुछ निश्चित गुणों का होना आवश्यक होता है। वह मनुष्य, जो हृदय से अब भी एक बालक है, और वह स्त्री जो हृदय से अब भी एक बालिका है, और जिनमें युवावस्था के सम्यक् विकास के लिए उत्कण्ठा है, वे ही लोग इसके लिए उपयुक्त होते हैं।

इसके साथ-साथ एक ख़तरा यह है कि कहीं इन संगठनों का काम केवल एक दिखावे का ही विषय न बन जाय। वह व्यक्ति, जो बालचर अथवा गाइड का काम अपनी पद-वृद्धि के ख्याल से करता है, स्वभावतः यह दिखाने के लिए लालायित रहेगा कि वह क्या कर रहा है। अन्यथा यदि किसी को मालूम नहीं होता तो फिर उससे लाभ ही क्या! यह फिर पछतावे की बात है, हालांकि बात सच्ची है, कि कुछ पाठशालाओं में बालचर-टोली निरीक्षक के दर्शनार्थ आने के कुछ सप्ताह पहिले से काम करना शुरू करता है उसके आने के दूसरे ही दिन से ख़तम हो जाती है और अगले वर्ष फिर से वार्षिक निरीक्षण के ठीक पहले या शायद किसी मेले के समय जहाँ कुछ मिलने की आशा हो, उसका कार्य पुनः आरम्भ होता है। यह कहना व्यर्थ है कि इस प्रकार की विधियों से बालचर-सम्बन्धी कार्य नष्ट होता है और उससे सम्बन्ध रखनेवाले बालकों को लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है। बालचरों का काम दिखाने का विषय नहीं है। विभिन्न टोलियों के अच्छे काम की रिपोर्टें, जो बहुधा शिक्षा सम्बन्धी, या बालचर-पत्रों में, या समाचार-पत्रों के स्तंभों में प्रकाशित होती रहती हैं, वे आन्दोलन की सम्पूर्ण प्रवृत्ति के विरुद्ध पड़ती हैं और उनको निरुत्साहित किया जाना चाहिए। यदि ऐसा लगे कि इस प्रकार के पराक्रम के कार्यों के ज्ञान से अन्य लोगों को सहायता तथा प्रोत्साहन मिलेगा, तो सम्बन्धित टोलियों और बालचर-शिक्षक के नाम प्रकाशित न किये जाने चाहिए। ऐसा करने से दूसरों के ऊपर जितना अच्छा प्रभाव पड़ना चाहिए उसमें किसी प्रकार का अन्तर न आयेगा। हाँ, इतना ज़रूर है कि जो कुप्रभाव होगा वह इस तरह से दूर किया जा सकेगा।

इसी प्रकार रैलियों (rallies) के ऊपर भी बहुत ज्यादा ज़ोर न दिया जाना चाहिए। बालचरों को प्रोत्साहन तथा प्रेरणा देने के लिए और उनको इस बात का विश्वास दिलाने के लिए कि वे अपनी निजी टोली से कहीं अधिक बड़े संगठन से सम्बन्ध रखते हैं, कभी-कभी ज़िले के स्तर पर रैली करवा देना एक अच्छी चीज़ हो सकती है। परन्तु इस प्रकार के सभी जन-समूहों में दिखावे के तत्त्व को, जो बुरी चीज़ है और जो तनिक भी अवसर मिलते ही अपना भद्दा सिर उठाये बिना नहीं रहती, दूर रखना कठिन है। रैलियों के ऊपर बहुत ज्यादा ज़ोर देने से बालचर-संगठन नष्ट हो जायगा। माता-पिता उस ख़र्च का विरोध करते हैं जो रैलियों के कारण उन्हें करना पड़ता है और वे इसी वजह से उसके ख़िलाफ़ हो जाते हैं। बालचरों में यह विचार

पैदा हो जाता है कि बालचर-संगठन का मतलब है उससे सम्बद्ध रैली तथा स्पर्धाओं के लिए तैयार रहना। बालचर-संगठन और गाइड्स बहुत थोड़ी-सी रैलियाँ करवा कर भी अधिक-से-अधिक सफलतापूर्वक अपना कार्य कर सकती हैं। जब कभी आवश्यक जान पड़े, एक जगह की टोलियाँ सदा ही मित्रवत् स्पर्धा एवं सहकारी कार्य के लिए एक साथ इकट्ठा की जा सकती हैं।

चौथी बात यह है कि उसमें वर्दी का प्रश्न आता है। कुछ बालचर-शिक्षकों तथा कमिश्नरों का झुकाव वर्दियों पर ज़ोर देने की ओर होता है। एक बालक उस समय तक एक बालचर नहीं हो सकता जब तक कि उसके पास वर्दी न हो। एक लड़की उस समय तक एक गाइड नहीं हो सकती जब तक कि उसके पास वर्दी न हो। उन जातियों में, जिनके लोग काफ़ी अमीर हों, यह नीति बिलकुल ठीक हो सकती है, पर मैं ऐसा सोचता हूँ कि ग्राम्य क्षेत्रों में, जहां माता-पिता निर्धन होते हैं, यह नीति पूर्णतया अनुचित है। यह भले ही मान लिया जाय की वर्दी में ज़्यादा दाम नहीं लगते, पर जो कोई भी ग्राम्य क्षेत्रों में काम कर चुका है वह इस बात को जानता है कि यदि वर्दी के ऊपर ज़ोर दिया जाता है तो उसके बहुत थोड़े-से दाम भी एक वास्तविक बाधा बन जाते हैं। कोई निर्धनता के कारण बालचर या गाइड होने से वंचित रखा जाय, इसका तो कोई कारण नहीं। इसलिए वर्दी पर ज़ोर देना, ख़ास तौर से आरम्भ में, एक ग़लती की बात है। विद्यार्थीगण स्वयं वर्दी बनवाने के लिए जो भी प्रयास कर सकेंगे, करेंगे और यदि वे नहीं बनवा सकते तो इसका मतलब यह है कि इसके लिए कोई वास्तविक कारण है। बहुधा वर्दी धीरे-धीरे प्राप्त की जा सकती है। जब बालक के कपड़े फटने लगते हैं और उसके लिए नये कपड़े बनने को होते हैं, तो यदि इस बात का प्रबन्ध किया जा सकता है कि जितने सस्ते दामों में उसके मामूली कपड़े बन जाते हैं, उतने ही में बालचर की वर्दी बन जाय, तो उसकी वर्दी धीरे-धीरे बन जायगी। यदि विद्यार्थी को कुछ ऐसा काम करने के लिए दिया जा सके जिसके द्वारा वह वर्दी ख़रीदने के लिए धनोपार्जन कर सके तो और अच्छा है। पर वर्दी के अभाव में किसी को भी टोली से निकाल बाहर न किया जाना चाहिए। यदि टोली देखने में अच्छी न जान पड़े तो कोई ऐसा हर्ज नहीं। टोली का अस्तित्व केवल उसके बाह्य रूप के लिए नहीं होता। वह तो उस भलाई के लिए होती है जो वह बालक के साथ कर सकती है और उस सहायता के लिए होती है जो वह बालक को दे सकती है। चाहे उसके कुछ

सदस्यों के पास वर्दी न भी हो तो भी वह अपना काम बिलकुल अच्छी तरह से कर सकती हैं।

यह आपत्ति की जा सकती है कि ऐसी हालत में टोली देखने में बड़ी जीर्ण-शीर्ण और बदरंग जान पड़ेगी। यह सच है, पर मैं तो बहिष्कार की अपेक्षा रंगबिरंगेपन को ज्यादा अच्छा समझता हूँ। परेड करते समय टोली का दृश्य बहुत सुन्दर भले ही न हो, पर जो कपड़े सदस्यगण पहने हों उनके कारण उनकी कार्यदक्षता में किसी तरह की कमी आ जाने को आवश्यकता नहीं। जब वर्दी की अपेक्षा की जाती है तो यह भी याद रखना चाहिए कि आखिरकार प्रवृत्ति की तुलना में वह (वर्दी) है तो उसका (प्रवृत्ति का) विस्तार हो, और यदि हम अनावश्यक आर्थिक बाधाएँ खड़ी करते हैं तो हमारा झुकाव अनुचित प्रवृत्ति उत्पन्न करने की ओर होगा।

यदि सम्भव हो तो जिन पाठशालाओं में बालचर अथवा गाइड्स हो वहाँ पर शेर बच्चे अथवा ब्ल्यू बर्ड्स भी होने चाहिए। नौ से बाहर-तेरह वर्ष तक के बच्चों को इस प्रकार के संगठनों से होनेवाले लाभों की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि उनके बड़े भाइयों तथा बहनों को उनके अपने संगठनों से मिलनेवाली सहायता की होती है। यदि बालचर-टोली के सदस्य शेरबच्चे दल के सदस्य रह चके होते हैं तो उसकी (बालचर-टोली की) निपुणता विशेषरूप से बढ़ जाती है।

यदि किसी तरह सम्भव हो तो उस पाठशाला में, जहाँ बालचर-टोली हो, एक बालचर-कक्षा भी होनी चाहिए। निश्चय ही यह सदैव प्राप्य नहीं होता, पर टोली का उद्देश्य यही होना चाहिए कि वह अपने क्लब के लिए एक अपना कमरा प्राप्त कर ले। यदि पाठशाला के अधिकारीगण कमरा देने का प्रबन्ध नहीं कर सकते तो टोली के सदस्य यदि पूरा कमरा बनवाने के लिए नहीं तो कम-से-कम कुल खर्च का एक हिस्सा चुका देने के लिए पर्याप्त धन कमाने अथवा एकत्र करने के लिए योग्य हो सकते हैं। इस प्रकार के कमरे की आवश्यकता बैठक के लिए, सामान रखने के लिए, चार्टों का प्रदर्शन करने के लिए और सामान्य प्रधान कार्यालय के रूप में प्रयोग करने के लिए होती है। शेरबच्चे और बालचर दोनों एक ही कमरे का प्रयोग कर सकते हैं।

साहित्यिक सभाएँ (Literary Societies)

पाठशाला में प्रत्येक विभाग के लिए अलग-अलग सभाएँ हो सकती हैं। एक

लोअर मिडिल के लिए, एक अपर मिडिल के लिए और एक उच्च कक्षा के लिए; अथवा यदि पाठशाला भवनों में विभाजित है तो वे (सभाएँ), जैसा पहले सुझाया जा चुका है, भवनों के अनुसार विभाजित की जा सकती हैं। (पृष्ठ ११४-११५ देखिए)। चाहे भवन बैठकों में हों या पृथक् सभाओं में हों, विद्यार्थियों को सभा का प्रबन्ध स्वयं करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। छात्र-सभापति और मंत्रीगण तथा छात्र-कार्यक्रम-समिति का निर्वाचन होना चाहिए। समिति का कर्तव्य होगा कार्यक्रम का प्रबन्ध करना। इस तरह के विषय जैसे कवितापाठ, भाषण, बात-चीत, प्रदर्शन, अंगरेज़ी और मातृभाषा दोनों में छोटे-छोटे नाटक-कार्यक्रम का अंग बन सकते हैं। जो भी कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाय वह प्रस्तुत किये जाने से पहले ही भवन-शिक्षकों अथवा अध्यक्ष-अध्यापक द्वारा ठीक कर दिया जाना चाहिए। ये बैठकें विद्यार्थियों को आत्माभिव्यक्ति तथा साहित्यिक एवं नाट्य सम्बन्धी प्रतिभा का विकास करने के हेतु सुयोग प्रदान करने के लिए बड़ा लाभदायक साधन हैं। ऐसी मदों के लिए, जैसे भाषण अथवा सभा के सदस्यों द्वारा वाद-विवाद किये जानेवाले निबन्ध, पूर्ण सुयोग दिया जाना चाहिए।

साधारणतः इस प्रकार की साहित्यिक सभाओं के लिए ज्यादा अच्छा यही है कि उनका सब काम मातृभाषा में हो और कार्यक्रम भी मातृभाषा में ही प्रस्तुत किये जायँ। पर साथ-ही-साथ उन्हें अपने को अंगरेज़ी भाषा में व्यक्त करने का भी सुयोग मिलना चाहिए। मामूली बैठकों में कुछ मदें अंगरेज़ी में दी जा सकती हैं। कभी-कभी पूरी बैठक अंगरेज़ी कार्य के लिए ही हो सकती है, जब कि सभी कार्यक्रम अंगरेज़ी में प्रस्तुत किये जायँ। ऊँची कक्षाओं के लिए यह एक अच्छी योजना है कि साधारण साहित्यिक बैठकों के अतिरिक्त महीने में कम-से-कम एक बार नियमित रूप से एक ऐसी बैठक हो जब कि सम्पूर्ण कार्यक्रम अंगरेज़ी में हो और हर एक चीज़ अंगरेज़ी में की जाय। अध्यक्ष-अध्यापक द्वारा मदों में सुधार पहले ही कर दिया जाना चाहिए। विद्यार्थी के लिए एक ऐसे भाषण को रट डालना मूर्खता की बात है, जिसमें अशुद्धियाँ ही अशुद्धियाँ भरी पड़ी हों।

इस प्रकार की बैठकों को यदि बनावटी मुक़दमों, वाद-विवाद-प्रतियोगिताओं, बनावटी पार्लियामेंटों, या इसी तरह की किन्हीं ऐसी चीज़ों का रूप दे दिया जाय जिनके कारण जो कुछ किया जा रहा हो उसमें एक नाटकीय आकर्षण पैदा हो जाय,

तो ये बैठकें रोचक बनाई जा सकती हैं। इस तरह की चीज़ें साधारण साहित्यिक बैठक में मातृभाषा में लाभदायक ढंग से की जा सकती हैं। वाद-विवाद का अत्यधिक उन्नत रूप वह है जो गोष्ठी तर्क-वितर्क (panel discussion) कहलाता है। इसमें तर्क-वितर्क करने के लिए उसी तरह से एक विषय चुन लिया जाता है जिस तरह से वाद-विवाद प्रतियोगिता में चुन लिया जाता है। वक्ताओं को वाद-विवाद प्रतियोगिता की तरह दो पक्षों में बाँट देने के बजाय एक अर्द्धगोलाकार में इस प्रकार बिठा दिया जाता है कि उनके मुंह श्रोतागण के सामने रहें और कार्य करने की विधि वही रहती है जो तर्क-वितर्क-मंडली (discussion circle) की होती है। एक सभापति होता है जो समुदाय का अध्यक्ष होता है, परन्तु समुदाय के सदस्य जितनी बार चाहें उतनी बार बोल सकते हैं। मामूली तौर से समय की एक अवधि होती है। कार्यवाही के किसी भी चरण में प्रश्न पूछे जा सकते हैं। वाद-विवाद-प्रतियोगिता की भाँति यह उद्देश्य न होकर कि चाहे जैसे भी हो एक ही पक्ष का समर्थन किया जाय, यह उद्देश्य रखा जाता है कि एक ऐसे निर्णय अथवा परिणाम पर पहुँचने की चेष्टा की जाय जो पूरे समुदाय के संयुक्त प्रयासों का फल हो और जो यथासम्भव विषय पर समुदाय के विचारों का प्रतिनिधित्व करे। जो लोग वाद-विवाद में भाग लेते हैं उनसे यह आशा की जाती है कि वे अपने मन को निष्पक्ष बनाये रहें और यदि उन्हें इस बात का विश्वास हो जाय कि उनके पहलेवाले विचार अशुद्ध हैं तो वे अपने विचारों को बदल दें। वाद-विवाद-प्रतियोगिता में निश्चय ही यह बात असम्भव है। सम्पूर्ण वाद-विवाद सबके सामने होता है और जब समुदाय खत्म कर चुकता है, तब वाद-विवाद समस्त बैठक के सामने रख दिया जाता है। सभापति पूरे समय, वाद-विवाद में होनेवाले सभापति के कर्तव्यों को निभाता रहता है। तर्क-वितर्क करने का यह ढंग अत्यधिक रोचक होता है और वाद-विवाद प्रतियोगिता से होनेवाले लाभ की अपेक्षा इससे होनेवाला लाभ कहीं अधिक स्थायी होता है।

भाषण

सप्ताह में एक या दो बार, अथवा यदि समय मिल सके तो प्रति दिन भी, नियमित रूप से सामान्य रुचि के विषयों पर वार्ता अथवा भाषण दिलाना, विशेषरूप से ग्राम्य-क्षेत्रों में, जहाँ सामान्य ज्ञान की मात्रा बहुत ही कम होती है, एक लाभदायक

क्रिया है। कुछ पाठशालाओं में यह एक नित्य का काम बन गया है और दिन का पहला आधा घंटा साहित्यिक, वैज्ञानिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, अथवा सामान्य रुचि के किसी विषय पर होनेवाली वार्ता के लिए समर्पित कर दिया जाता है। यह वार्ता साधारण कार्यक्रम से बाहर की चीज़ होती है, परन्तु यदि समय-चक्र-विभाग में इस प्रकार की वार्ता नित्यप्रति होने की गुंजाइश न हो तो यह सप्ताह में कम-से-कम एक बार की जा सकती है। इस तरह से बृहत्तर संसार तथा उसके कारनामों में रुचि पैदा की जा सकती है, ज्ञान प्रदान किया जा सकता है और जीवन अधिक रुचिकर एवं पूर्ण बनाया जा सकता है। मामूली तौर से यह ज़्यादा अच्छा होगा कि पाठशाला को दो वर्गों में विभाजित कर दिया जाय और एक ही समय में दो वार्ताओं का आयोजन साथ-साथ कर लिया जाय; एक उच्च विभाग के लिए और एक मध्यम विभाग के लिए। नगर अथवा ज़िले के लोगों से अपने काम से सम्बन्धित विषयों पर वार्ता प्रस्तुत करने के लिए प्रार्थना की जा सकती है। इस प्रकार के लोगों से, जैसे स्थानीय डाक्टर, सहकारी निरीक्षक, नगर-समिति अथवा नगरपालिका के सभापति, पशुओं के डाक्टर, या किसी भी ऐसे व्यक्ति से, जिसकी किसी ऐसे विषय में विशेष रुचि हो, जो विद्यार्थियों के लिए लाभप्रद और रुचिकर हो, भाषण देने के लिए कहा जा सकता है। जब कभी सम्भव हो, दर्शनार्थ आनेवाले लोगों का प्रयोग भी इस काम के लिए किया जा सकता है।

उच्च विभाग में तिमाही में प्रस्तुत की जानेवाली वार्ताओं का एक कार्यक्रम नीचे दिया जाता है। ये वार्ताएँ सप्ताह में एक बार प्रस्तुत की गई थीं—

न्यूज़ीलैंड—१
न्यूज़ीलैंड—२
अपनी बहनों के साथ हमें कैसा व्यवहार करना चाहिए?
लंका का पाठशाला का छात्र।
कुछ रोग और उनका उपचार किस प्रकार किया जाय।
भारत का शासन कैसे होता है।
ज्वाइंट पार्लियामेंटरी समिति की रिपोर्ट।
सहयोग।
बेतार का तार।

जूनियर राष्ट्रसंघ-समितियाँ
(Junior League of Nations Societies)

यह परम आवश्यक है कि पाठशालाओं में विद्यार्थियों में अन्तर्राष्ट्रीय चेतना का विकास करने तथा उनको अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के विषय में कुछ सिखाने के लिए निश्चित प्रयास किये जायँ। पाठशाला के लिए यह बहुत आवश्यक है कि वह उस लोकमत का विकास करने में अपना योग दे जो राष्ट्रसंघ को कार्य करने में समर्थ बना सकेगा। सच तो यह है कि इस कार्य में पाठशाला जो भाग ले सकती है वह विश्व की एक शक्ति के रूप में संघ के अपने अस्तित्व के लिए आवश्यक है। एक अत्यन्त सुन्दर उपाय, जिसमें पाठशाला इस सम्बन्ध में अपना कार्य कर सकती है, वह है राष्ट्रसंघ-समितियों का जरिया।

पदाधिकारियों सहित इन समितियों की व्यवस्था उसी प्रकार की जाती है जिस प्रकार अन्य समितियों की होती है, पर उनका उद्देश्य रहता है राष्ट्र-संघ तथा उसके कार्य के विषय में सूचना देना, संघ का इतिहास, उसकी सफलताओं तथा उन अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के विषय में बताना जिनके लिए संघ उत्तरदायी होता है। उद्देश्य होना चाहिए समिति के सदस्यों में अन्तर्राष्ट्रीय चेतना का विकास करना तथा उनमें उस सच्ची देशभक्ति का उदय करना जो एक देश को राष्ट्रों के एक बड़े परिवार के सदस्य के रूप में देखेगी।

जूनियर राष्ट्र-संघ-समिति की बैठकें जितनी बार इच्छा हो, बुलाई जा सकती हैं; परन्तु प्रायः पखवारे में एक बार काफ़ी होता है। बहुत-से मामलों में तो महीने में एक बार ही सम्भव हो पाता है। समिति को राष्ट्रसंघ की जो भी पत्रिका प्राप्य* हो, उसको चंदा देकर मँगाना चाहिए और छोटी-छोटी पत्रिकाएँ तथा छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ, जो राष्ट्रसंघ यूनियन की ओर से समय-समय पर निकाली जाती हैं, उन्हें भी मँगा लेना चाहिए। समिति को भारत के स्थानीय राष्ट्रसंघ-संगठन के साथ मिल

---

* हेडवे (Headway) राष्ट्र-संघ यूनियन का मासिक मुख-पत्र है जो दक्षिण-पश्चिम लंदन में १५ ग्रॉसवेनर क्रेसेंट (Grosvenor Crescent) से प्राप्त हो सकता है (वार्षिक चंदा—२ शि० ६ पें०)।

जाना चाहिए। समिति की बैठकों में प्रचलित अन्तर्राष्ट्रीय मामलों से सम्बन्धित विभिन्न विषयों तथा लीग द्वारा लिये जानेवाले भाग के ऊपर लेख पढ़े जा सकते हैं। विश्व की घटनाओं का सामान्य पुनर्निरीक्षण नियमित रूप से प्रत्येक बैठक की विशषता बन सकती है। राष्ट्रसंघ के सम्बन्ध में जिन विषयों में रुचि हो उनके ऊपर वाद-विवाद होने चाहिए, चाहे वे समुदाय-वाद-विवाद हों, चाहे गोष्ठी-तर्क-वितर्क हों और चाहे कभी-कभी वाद-विवाद-प्रतियोगिताओ के रूप में हों। नमूने के तौर पर होने वाली लीग की ऐसी सभाओं से, जिनमें बालकगण सदस्य देशों का प्रतिनिधित्व करते हों और अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के किसी भी विषय पर अपने दृष्टिकोण प्रकट कर रहे हों, प्राय: भाषणों अथवा वाद-विवाद-प्रतियोगिताओं की अपेक्षा अधिक रुचि पैदा हो जाती है। ऐसा कोई भी काम किया जा सकता है जो बच्चों को लीग के कामों तथा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में बुद्धिमानी के साथ रुचि लेने की शिक्षा प्राप्त करने में सहायता पहुँचाये।

इस प्रकार की समिति की बाहरी क्रियाओं में ऐसी चीज़ें आ सकती हैं—जैसे उसके सदस्य पूरी पाठशाला के सम्मुख सप्ताह में एक बार राष्ट्रसघ की विशेष रूप से चर्चा करते हुए विश्व-समाचार का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करें। कक्षा तथा पाठशाला की पत्रिकाओं के लिए लीग एवं उसके कार्य से सम्बन्ध रखनेवाले लेख लिखे जा सकते हैं। कक्षाओं को कक्षा-विशेष के उन सदस्यों द्वारा, जो राष्ट्रसंघ समिति के सदस्य हों, विशेष रुचि के किसी भी विषय पर, जो उठ खड़ा हो, विशेष भाषण दिलाये जा सकते हैं। कक्षाओं में गोष्ठी-तर्क-वितर्क का आयोजन किया जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि समितियों के सदस्य दूसरे लोगों को वे बातें बताने के लिए, जो उन्हें समिति के द्वारा ज्ञात हो चुकी हैं, किसी भी सम्भावित साधन का उपयोग कर सकते हैं और अपनी समिति को अपनी पाठशाला में अन्तर्राष्ट्रीयता के लिए एक शक्ति बनाने के हेतु जो भी उपाय सम्भव हों उनका प्रयोग कर सकते हैं। इस प्रकार के कुछ तरीक़ों से कभी-कभी अपनी पाठशाला से कहीं अधिक श्रोतागण तक पहुँच जाने की सम्भावना हो जाती है।

पत्रिकाएँ

पत्रिकाएँ विद्यार्थियों की रचनात्मक शक्तियों का विकास करने तथा उनकी

आत्माभिव्यक्ति के लिए सुयोग प्रदान करने के लिए परम लाभदायक साधन हैं। कई प्रकार की पत्रिकाएँ होती हैं जो पाठशाला में चलाई जा सकती हैं।

सबसे पहले अंगरेज़ी और मातृ-भाषा दोनों में लिखी जानेवाली व्यक्तिगत पत्रिका आती है। इसमें एक अभ्यास-पुस्तिका को कई वर्गों, जैसे खेल, कहानियाँ, हँसी-मजाक, कला, निबन्ध आदि में बाँट दिया जाता है। विद्यार्थियों को अपने कार्य के अंग के रूप में अपनी पत्रिका के लिए कुछ लिखने का सुयोग दिया जाता है और उन्हें इस बात की आज्ञा दे दी जाती है कि वे जिस विषय पर लिखना चाहें उस विषय को अपने आप चुन लें। लेख पहले अध्यापक द्वारा जाँचकर ठीक कर दिये जाने चाहिए और उसके बाद पत्रिका में छापे जाने चाहिए। प्रत्येक विद्यार्थी को इस बात की आज्ञा होनी चाहिए कि वह अपनी पत्रिका के लिए अपने आप खण्ड बनाये और अपने आप प्रबन्ध करे।

इसी से कक्षा-पत्रिका का विकास हो सकता है। कक्षा के द्वारा सम्पादक अथवा सम्पादकीय समिति की नियुक्ति होती है और तिमाही में एक बार कक्षा-पत्रिका निकाली जा सकती है। यह पूरी तौर से मातृ भाषा में हो सकती है, अथवा उसमें अंगरेज़ी के लेख भी शामिल हो सकते हैं। इसमे चित्र होने चाहिए और ऊँची कक्षाओं में कविताएँ भी। यह आपत्ति की जा सकती है कि प्रत्येक कक्षा की अलग-अलग पत्रिका निकालने में खर्च बहुत ज़्यादा होगा। यदि वित्त एक रुकावट हो तो प्रत्येक कक्षा-पत्रिका की एक प्रति हाथ से लिखी जा सकती है और अच्छी तरह से जिल्द-बँधाकर कक्षा में घुमाई जा सकती है। यदि बहुत-सी प्रतियाँ छपवाने के लिए फ़ंड प्राप्य न हो तो यह योजना हर तरह से साध्य है।

इन कक्षा-पत्रिकाओं से पाठशाला-पत्रिका का विकास हो सकता है, जिसमें मिले हुए सब तरह के लेखों में से सर्वोत्कृष्ट लेख छाँटकर लिखे जायँगे। उसका प्रबन्ध तथा सम्पादन अध्यापक के निरीक्षण में विद्यार्थियों द्वारा किया जाना चाहिए। निश्चय ही यह छापी जानी चाहिए और तिमाही में एक बार अथवा वर्ष में एक बार, जैसा भी परिस्थितियों के अनुसार सम्भव हो, यह निकाली जानी चाहिए।

यदि भवन-प्रणाली प्रचलित है तो भवन-पत्रिका निकाली जा सकती हैं, यद्यपि भवन-पत्रिकाएँ और कक्षा-पत्रिकाएँ दोनों निकालना प्रायः कठिन ही होगा। प्रायः

कक्षा-पत्रिकाएँ निकालना ज्यादा अच्छा है, परन्तु यदि पर्याप्त उत्सुकता दिखाई जाती है तो भवन-पत्रिकाओं के लिए भी प्रबन्ध किया जा सकता है।

नाटक

नाटक उत्पादक अभिव्यक्ति कार्य के उत्तम साधन होते हैं, पर उनके लिए सतर्क निरीक्षण की आवश्यकता होती है। वे मातृभाषा में हो सकते हैं, अथवा उनका सम्बन्ध अंगरेज़ी में किये हुए कार्य के साथ हो सकता है। नाटक का अधिकांश कार्य मातृभाषा में होगा। नाटकीय कार्य का अध्यक्ष सदैव एक अध्यापक होना चाहिए, चाहे वह कक्षा-अध्यापक हो, या विषय-अध्यापक हो, अथवा एक ऐसा अध्यापक हो जो अपनी रुचि एवं योग्यता के कारण इसी काम के लिए विशेषरूप से उपयुक्त हो।

कुछ चीजें ऐसी हैं जिनके ऊपर अध्यक्ष-अध्यापक को निगाह रखनी ही पड़ती है। उसको उन्हीं-उन्हीं विद्यार्थियों को सदैव एक ही तरह का अभिनय करने की आज्ञा न देनी चाहिए; जैसे उदाहरण के लिए एक ही विद्यार्थी को सर्वदा दुष्ट पात्र का अभिनय न करना चाहिए। यदि उसको लगातार ऐसे पात्र का अभिनय करने के लिए दिया जाता है तो उसके कारण उसके चरित्र पर कुप्रभाव पड़ने का अदेशा रहता है। रंगमंच पर दिखाने के लिए उसने जिन विशेषताओं को ग्रहण किया था, उन्हीं को वह अपने वास्तविक जीवन में अपना लेने के लिए तत्पर हो जायगा। पार्ट बारी-बारी से दिये जाने चाहिए, ताकि कोई विद्यार्थी किसी एक पात्र विशेष के अभिनय में विशेषज्ञ न बन जाय। यह बात सदैव याद रखनी चाहिए कि पाठशाला में होनेवाले नाटकों का सम्बन्ध शिक्षा से है। उनका मूल्य पूर्ण प्रदर्शन की अपेक्षा तैयारी में है, यद्यपि निश्चय ही इसका भी स्थान है। परन्तु अध्यापक का ध्यान विशेषरूप से उन श्रोताओं की अपेक्षा, जिनके सम्मुख पूर्ण प्रदर्शन प्रस्तुत किया जाता है, योजना के कार्यान्वित किये जाने में प्राप्त होनेवाले शिक्षा-सम्बन्धी मूल्यों की ओर होना चाहिए। श्रोताओं का होना तो ज़रूरी है और यह स्वाभाविक ही है कि वे तैयारी करनेवालों की गणना तथा विचारों में प्रविष्ट हो जायँगे। परन्तु न तो विद्यार्थीगण पेशेवाले हैं और न पाठशाला की नाट्यशाला व्यावसायिक नाट्यशाला है। आनन्द तो तैयारी में मिलता है और मूल्य की प्राप्ति योजना को कार्यान्वित करने से होती है। जनता के

सम्मुख नाटक का प्रदर्शन उत्कर्ष है, परन्तु सम्बन्धित व्यक्तियों के मन में उसके लिए उतना ही स्थान होना चाहिए जितना कि उसके लिए उपयुक्त हो।

एक स्थान, जहाँ श्रोताओं का ध्यान रहना ज़रूरी है, वह है जब कि वे विद्यार्थी-गण जो कुछ कर रहे हैं उसमें यथाशक्ति उत्तम कार्य निश्चित करने के लिए रोक का काम करते हैं। विद्यार्थियों को अव्यवस्थित कार्य दिखाने तथा रंगमंच पर अवांच्छनीय ढंग से तैयार होकर आ जाने की आज्ञा देना बुरी प्रशिक्षा है। रंगमंच का सामान भद्दा भले ही हो और अभिनय अनिपुण ही क्यों न हो, पर परिस्थितियों के अन्तर्गत वे विद्यार्थी विशेष जो कुछ करते हैं वह उनके सामर्थ्य के अनुसार सर्वोत्कृष्ट होना चाहिए। अध्यक्ष-अध्यापक को निश्चय ही इस बात को सदैव ध्यान में रखना चाहिए और जनता के सम्मुख नाटक का प्रदर्शन करने के लिए उस समय तक किसी प्रकार भी आज्ञा न देनी चाहिए जब तक कि वह ठीक से तैयार न हो।

कभी-कभी अध्यापकों को रंगमंच के सामान के कारण परेशानी उठानी पड़ती है, पर यह आश्चर्यजनक है कि बच्चों की कल्पना एक बक्से या एक कुरसी या एक मेज़ के साथ क्या-क्या कर लेती है। सच तो यह है कि रंगमंच के सामान की तैयारी नाटक के शिक्षा-सम्बन्धी महत्त्वों में से एक बन सकती है। विद्यार्थियों को इस बात के लिए प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए कि वे अपने आप जितनी तैयारी कर सकते हैं उतनी करें। धीरे-धीरे ये एकत्र हो जायँगी और तब उनका प्रयोग फिर जब कभी सम्भव हो, किया जा सकेगा। यदि जगह हो तो एक कमरे को पाठशाला की नाट्य-शाला बनाकर अलग कर देने से लाभ होता है। उसको केवलमात्र नाटकों के काम के लिए रखने की आवश्यकता नहीं, बल्कि उसमें रंगमंच का सामान, रंगमंच के पर्दे और अन्य सहायक सामग्री रखी जा सकती है। ऐसा प्रबन्ध किया जा सकता है कि पर्दे किसी भी समय काम में लाये जाने के लिए तैयार रहें। कभी-कभी वाचनालय और नाट्यशाला को संयुक्त कर देना सम्भव हो जाता है।

नाटकों के सम्बन्ध में विद्यार्थियों को स्वयं अपने खेल लिखने के लिए प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। यह बात अंगरेज़ी और मातृभाषा दोनों के नाटकों के लिए सच है। रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिए तैयार करने को दिये जाने के पूर्व निश्चय ही वे अध्यक्ष-अध्यापक द्वारा जाँच कर सही कर दिये जाने चाहिए। बच्चों द्वारा अपने आप अपने नाटकों की रचना नाटकों के मुख्य-मुख्य उत्पादक महत्त्वों में से एक है।

यदाकदा उनको तैयार किये हुए नाटक खेलने से लिए दिये जाने चाहिए, जो नमूनों तथा आदर्शों का काम कर सकते हैं, पर साधारणतः उन्हें अपने नाटक स्वयं लिखने के लिए प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। आदर्श के रूप में कभी-कभी अध्यापक-मंडल की ओर से नाटक का अभिनय किया जा सकता है।

बाग़बानी

यह सबसे अधिक लाभदायक आदतों (hobbies) में से एक है और प्रत्येक पाठशाला में विद्यार्थियों के लिए बाग़ लगाने के सुयोग होने चाहिए। इस क्रिया की व्यवस्था करने का सर्वोत्कृष्ट उपाय है—बाग़बानी क्लब की स्थापना। यदि पाठशाला में कृषि की शिक्षा दी जाती है तो बागबानी क्लब का अध्यक्ष बनने के लिए कृषि-अध्यापक सर्वोत्कृष्ट होगा। यदि पाठशाला में कृषि का कोई अध्यापक न हो तो अध्यापक-मंडल के किसी भी सदस्य को, जिसको कृषि के विषय में कुछ ज्ञान हो और जो उसके लिए उत्सुक हो, अध्यक्ष बना दिया जाना चाहिए। किसी ऐसे व्यक्ति को काम देने से कोई लाभ नहीं जो उसके विषय में न तो कुछ जानता हो और न कुछ सीखने के लिए ही उत्सुक हो। कभी-कभी बाहर से कोई उत्साही अवैतनिक कृषि-ज्ञाता के बुला लिए जाने की सम्भावना रहती है, जो सप्ताह मे एक या दो बार आने तथा क्लब के सदस्यों को शिक्षा देने और सहायता करने के लिए राज़ी हो। जब तक कि विषय को गम्भीरतापूर्वक नही लिया जाता तब तक बाग़बानी क्लब बनाने से कोई लाभ नही। कहने का मतलब यह कि जब तक कोई ऐसा न हो जो वास्तव में यह जानता हो कि क्या करना है, कब करना है, और कैसे करना है, तब तक इसका संगठन करने से कोई लाभ नहीं। नहीं तो शीघ्र ही रुचि और उत्साह समाप्त हो जायगा। परन्तु यदि कोई ऐसा व्यक्ति अध्यक्ष बनाया जाता है जो बाग़बानी के विषय में कुछ जानता है तो बाग़बानी क्लब एक बड़ी सफल क्रिया हो सकती है।

पाठशाला के मैदान की सजावट का काम इस क्लब को सौंपा जा सकता है। फूलों के पौधों, झाड़ियों और पेड़ों आदि के लगाने तथा उनकी देख-भाल करने का काम उसकी अनेक क्रियाओं में से एक होगा। वे मैदान में फूलों की क्यारियाँ बनाने, घास के मैदान तैयार करने तथा वृक्ष लगाने के लिए एक सामान्य योजना बना सकते

हैं और साधारणतः इस कार्य के सम्पूर्ण विभाग का भार ग्रहण कर सकते हैं। यदि पर्याप्त भूमि हो तो प्रत्येक सदस्य अथवा, शायद ज्यादा अच्छा यह होगा कि सदस्यों के प्रत्येक जोड़े को तरकारियां पैदा करने के लिए ज़मीन का एक-एक टुकड़ा दिया जा सकता है।

आदतें (Hobbies)

भारतवर्ष में तमाम बच्चों को अपने घरों में अपनी आदतों को पूरा करने में जो कठिनाई होती है उसके कारण पाठशाला का यह कर्तव्य बन जाता है कि वह उनके लिए यथासम्भव जितना अच्छा प्रबन्ध कर सकती हो करे। आदतें अतिरिक्त पाठशाला-क्रियाएँ होती हैं, परन्तु उनका शिक्षा-सम्बन्धी महत्त्व वास्तव में बहुत बड़ा है। पर यदि उनको उतना मूल्यवान् बनाना है जितना कि उन्हें होना चाहिए तो सावधानी के साथ उनकी व्यवस्था करना आवश्यक है।

पहली बात तो यह है कि पाठशाला के अध्यापकों को इस बात का निर्णय कर लेना चाहिए कि वे किन आदतों को प्रोत्साहन देने जा रहे हैं। इसके बाद ही दूसरी बात जो निर्णय करने के लिए आती है वह यह है कि अध्यापक-मंडल के सदस्य व्यक्तिगत रूप से किस आदत को लेने तथा विद्यार्थियों के साथ उसके ऊपर काम कराने के लिए तैयार हैं। इस बात की सम्भावना बहुत कम है कि कोई भी आदत उस समय तक सफल हो जाय जब तक कि अध्यापक विद्यार्थियों के उस समुदाय के साथ-साथ आदत के ऊपर काम न करे, जिसने उसको लिया हो। यह एक महत्त्वपूर्ण विचार है। आदतों की सफलता अध्यापकों की व्यक्तिगत रुचि के ऊपर निर्भर रहती है। 'अध्यापकों के साथ सीनियर विद्यार्थी जोड़ देने से यह चीज़ और अधिक मर्यादायुक्त बन जाती है। यदि, जैसा कभी-कभी होता है, विद्यार्थियों को इस बात का व्यक्तिगत ज्ञान हो कि किसी निश्चित ढंग की कला से सम्बन्धित कार्य कैसे किया जाय तो वह काम उनको सौंपा जा सकता है। ऐसे विद्यार्थियों के लिए यह आवश्यक है कि उनमें उत्सुकता और उत्तरदायित्व की भावना भी हो। पर चाहे अध्यापक-मंडल की ओर से हो, अथवा सीनियर विद्यार्थियों की ओर से हो, प्रत्येक समुदाय का, जो आदत के ऊपर काम कर रहा हो, एक नेता होना चाहिए, जो कार्य का संचालन कर सके। कभी-

कभी यह भी देखने में आयेगा कि विद्यार्थियों का एक ऐसा समुदाय है जो एक ऐसी आदत को लेने का इच्छुक है जिसके लिए कोई अध्यापक उपलब्ध नहीं है। यदि इस प्रकार का समुदाय उत्सुक हो तो सबसे सीनियर विद्यार्थी उसका अध्यक्ष बनाया जा सकता है।

समय सदैव बाधक होता है। इस कठिनाई को दूर करने का एक उपाय यह है कि नियमित रूप से एक समय निर्धारित कर दिया जाय; जैसे शनिवार को पाठशाला का समय हो जाने के बाद अथवा कम-से-कम कक्षा का नियमित कार्य समाप्त हो जाने के पश्चात्, जब सभी लोग घंटे डेढ़ घंटे, अपनी आदतों से सम्बध रखनेवाले कार्य कर सकते हैं। मैं तो सोचता हूँ कि यदि वास्तव में कोई काम करना है तो आदतों के लिए इस प्रकार का निश्चित समय होना आवश्यक है। इसके कारण यदि कोई इच्छा करता है और सम्भवतः घर पर काम करता है तो उसके किये हुए काम में किसी प्रकार की रुकावट नहीं पड़ती, बल्कि इस तरह से तो सभी सम्बन्धित लोगों द्वारा नियमित रूप से कार्य का किया जाना निश्चित हो जाता है। अधिकांश के लिए घर पर बहुत अधिक कार्य करना सम्भव न होगा। यदि पाठशाला की ओर से औज़ारों और यंत्रों का आयोजन किया जाता है तो उन्हें स्वभावतः पाठशाला में रहना ही पड़ेगा।

वित्त दूसरी कठिनाई है। कुछ स्थानों में पाठशालाओं को खेलों अथवा यूनियन फ़ंडों से एक निश्चित रक़म आदतों के ऊपर खर्च करने की आज्ञा दे दी जाती है और यह एक बड़ी सहायता होती है। कभी-कभी बनाई हुई चीजों की बिक्री से एक निश्चित रक़म धन के रूप में प्राप्त हो जाने की सम्भावना रहती है; जैसे कपड़े की बुनाई अथवा बढ़ईगीरी के मामले में होता है। कभी-कभी पाठशाला के हितैषीगण, जो इस प्रकार के काम में रुचि रखते हैं, दान दे देंगे। किये गये कार्य की प्रदर्शनी की जा सकती है, जिसमें चीजें बेची जा सकती हैं अथवा जिसके लिए थोड़ा प्रवेश-शुल्क लिया जा सकता है।

जहां तक सम्भव हो, विद्यार्थियों को अपने आप अपनी आदतें चुनने की आज्ञा देनी चाहिए, यद्यपि जब कभी समुदाय बहुत बड़े हो जाते हैं तो कुछ लोगों को दूसरी आदत लेने के लिए उकसाना पड़ता है। मामूली तौर से विद्यार्थियों के लिए दो वर्ष तक एक ही आदत में लगे रहना बुद्धिमानी की बात है। यह बहुत कुछ काम के ढंग

पर और विद्यार्थी की योग्यता पर निर्भर रहता है। विद्यार्थियों को किसी ऐसी चीज़ में लगाये रखने की चेष्टा करने से कोई लाभ नहीं जिसमें ज़ाहिरा उनके सफल होने की कोई आशा न हो। दूसरी ओर अच्छी तरह से काम करने की शिक्षा प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों को कुछ आदतों के ऊपर काम करना ज़रूरी है। अतः समय की अवधि का निर्णय परिस्थितियों द्वारा होगा।

अध्याय १२

भवन तथा फ़र्नीचर

स्थान (Site)

यदि किसी प्रकार सम्भव हो तो पाठशाला के लिए नगर से बाहर स्थान प्राप्त कर लेना ज़्यादा अच्छा है। निश्चय ही यह चीज़ बड़े नगरों में सम्भव नहीं, पर भारत के बहुसंख्यक नगरों तथा गांवों में यह सम्भव है कि पाठशाला यदि नगर से कुछ दूरी पर न हो तो कम-से-कम नगर के क्षेत्रफल से बाहर हो। ऐसी स्थिति में ज़्यादा ताज़ी हवा मिल सकेगी, पाठशाला के निकट पर्याप्त खेल के मैदान प्राप्त करने की अधिक सुविधा होगी, पाठशाला के लिए सुन्दर-सा मैदान प्राप्त करने का अधिक अच्छा सुयोग मिल जायगा, छूत की बीमारियों को पाठशाला में फैलने से रोकने का ज़्यादा अच्छा मौक़ा मिल जायगा, ज़मीन सस्ती होगी और रहने के लिए ज़्यादा जगह मिल सकेगी। दो-मज़िली इमारतों की खोज में जाने का लालच न होगा। छात्रावास का कहीं अच्छा प्रबन्ध करना सम्भव हो सकेगा। पाठशाला नगर से इतनी ज़्यादा दूर न होनी चाहिए कि वह घर से आनेवाले विद्यार्थियों की पहुँच से बाहर हो जाय, परन्तु बच्चों को प्रति दिन पाठशाला जाने के लिए थोड़ी दूर पैदल चल लेने से कोई हानि नहीं होती। बालिकाओं की पाठशाला के लिए स्थान का निर्णय करते

समय अन्य विचारों का ध्यान रखना पड़ता है, यद्यपि यदि सम्भव हो तो यह भी नगर के बाहर होना चाहिए।

स्थान सड़क के पास होना चाहिए, फिर भी सड़क से जितना हटकर प्रबन्ध हो सके उतना ही अच्छा है, ताकि धूल से यथासम्भव बचत हो सके। स्थान का चुनाव करते समय अधिकारियों को उस दिशा का ध्यान रखना चाहिए जिस ओर नगर की वृद्धि एवं फैलाव हो रहा हो। वे यह न चाहेंगे कि दस वर्षों के अन्दर-अन्दर वे नगर के बीचोबीच में आ जायँ। यदि सम्भव हो तो स्थान थोड़ा-सा ऊँचा होना चाहिए और सूखा तो हर हालत में होना ही चाहिए। पास में कोई तालाब या नीची ज़मीन न होनी चाहिए, जहां पानी इकठ्ठा हो जाता हो। स्थान को यथासम्भव दीमकसे मुक्त होना चाहिए और खारेपन से भी। पास ही अच्छे पानी की सप्लाई का प्रबन्ध होना चाहिए। यदि उस स्थान में वृक्ष न हों तो वृक्षारोपण का एक कार्यक्रम तैयार कर लेना चाहिए और इस कार्य को तुरन्त आरम्भ कर देना चाहिए। प्रत्येक पाठशाला के मैदान में बहुत से वृक्ष होने चाहिए। वृक्षों को लगाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कहाँ-कहाँ फलों के वृक्ष लगाने की सम्भावना है। फलों के वृक्ष छाया प्रदान करने के अतिरिक्त बाद को दूसरी तरह से भी लाभदायक होते हैं।

भवन

इस अध्याय के अन्त मे भवनों के नक़शे दिये गये हैं। **ई (E)** नक़शा अथवा उसका रूपान्तर प्रायः भवन का सर्वोत्कृष्ट नमूना है और उसकी सिफ़ारिश होनी चाहिए। इसके कमरों में प्रकाश आता है। बड़ा कमरा (हॉल) बीच मे स्थित होते हुए भी प्रकाश तथा वायु को नहीं रोकता। उसके दोनों ओर कमरे आसानी से बनाये जा सकते हैं। सामान्य प्रबन्ध अच्छा होता है। कभी-कभी दोहरी ई अथवा एच **(H)** ढंग के भवन का प्रयोग किया जाता है। यह भी अच्छे ढग का भवन है।

भारत के अधिकाश भागों में भवन का मुख दक्षिण की ओर होना चाहिए। हमेशा कमरों के दोनों ओर बरामदों का होना ठीक नहीं रहता। कभी-कभी आरपार रोशनी जाने का प्रबन्ध ठीक नहीं होता। यदि पाठशाला का निर्माण E की

आकृति में या चतुष्कोण में किया गया है और उसका मुँह दक्षिण की ओर है तो अन्दर की ओर बरामदे हो सकते हैं और बाहर की ओर खिड़कियों और रोशनदानों के ऊपर सूर्य की रोशनी से बचने के लिए शेड्स लगाये जा सकते है जिनको आगे-पीछे खिसकाने के लिए रस्सियाँ बँधी हों।

यह विचारणीय है कि यदि किसी प्रकार सम्भव हो तो भवन एक ही मंजिल का बनाया जाय। मामूली तौर से ज़मीन इतनी मँहगी नहीं होती कि एक-मंज़िली इमारत बनाने में दो-मंज़िली इमारत बनाने की अपेक्षा बहुत ज़्यादा खर्च बैठे। हर तरह से एक मंजिल की इमारत उत्तम है। दूसरी मंज़िल को छात्रावास की तरह प्रयोग में लाने की योजना भी ठीक नही है। कभी-कभी फिर मितव्ययिता के विचार से ऐसा किया जाता है, पर जब कभी सम्भव हो छात्रावास के लिए पाठशाला से दूर एक पृथक् भवन का निर्माण इस ढंग से किया जाना चाहिए कि पाठशाला उसके (छात्रावास) और सड़क के बीच में स्थित हो।

एक कक्ष में केवल एक ही द्वार होना चाहिए और वह भी कमरे के सामने की ओर; एक किनारे होना चाहिए। वह कक्षा के सामनेवाली दीवर में न होना चाहिए। कमरे इतने काफ़ी बड़े होने चाहिए कि उनमें विभागों द्वारा निर्धारित किये हुए नियमों के अनुसार ४०-४५ विद्यार्थी अध्ययन कर सकें। वे लगभग २२ × २३ फ़ीट होने चाहिए। डेस्कों के बीच में आने-जाने के रास्ते होने चाहिए। विद्यार्थियों की संख्या समान रहते हुए भी एकहरी डेस्कों में दोहरी डेस्कों की अपेक्षा अधिक स्थान की आवश्यकता होगी। कमरे सोलह या सत्रह फ़ुट ऊंचे होने चाहिए और दीवारों के सिरे के पास बहुत-से रोशनदान होने चाहिए। उनमें शेड्स लगे होने चाहिए। कमरे एक-दूसरे में न खुलने चाहिए, अर्थात् विद्यार्थियों को एक कमरे में जाने के लिए दूसरे कमरे से होकर जाने की आवश्यकता न पड़नी चाहिए।

प्रकाश

मुख्य प्रकाश बाईं ओर से आना चाहिए, ताकि जो काम किया जा रहा हो उसके ऊपर छाया न पड़ सके। पीछे से आनेवाला प्रकाश पूरे काम पर छाया कर देता है, सामने का प्रकाश आँखों को चौंधिया देता है, दाहिनी ओर से आनेवाला

प्रकाश इतना बुरा नहीं है, पर हाँ कुछ छाया तो पड़ ही जाती है। खिड़कियों का निचला भाग फ़र्श से साढ़े तीन या चार फ़ुट की ऊंचाई पर होना चाहिए। खिड़की का क्षेत्रफल फ़र्श के क्षेत्रफल का एक-छठा से लेकर एक-चौथाई तक होना चाहिए। कमरे के प्रकाश की परीक्षा इस बात को देखकर की जा सकती है कि विद्यार्थी कमरे के प्रत्येक भाग में मामूली टाइप के अक्षरों को आंख से एक फ़ुट की दूरी पर रखकर पढ़ सकता है या नहीं। विज्ञान तथा चित्रविद्या के कमरों में प्रकाश के प्रबन्ध की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। इन कमरों में खिड़कियों का क्षेत्रफल बढ़ाया जा सकता है।

डेस्कें

एकहरी डेस्कें दोहरी डेस्कों से अच्छी होती हैं और दोहरी डेस्कें लम्बी डेस्कों से अच्छी होती हैं। कभी-कभी लम्बी डेस्कों के साथ बैठने के लिए अलग-अलग एकहरी चौकियां डालकर प्रबन्ध कर लिया जाता है। फिर भी एकहरी डेस्क सबसे अच्छी होती है। एकहरी डेस्क से बच्चे का कार्य अधिक सरल हो जाता है। डेस्क पर भीड़ नहीं होने पाती। स्वास्थ्य-रक्षा के दृष्टिकोण से वह ज़्यादा अच्छी होती है और साधारणतः वह अधिक संतोषजनक होती है। एकहरी डेस्कें ज्यादा मँहगी मिलती हैं और इसीलिए कम ही मिलती हैं। कुछ विषयों के लिए मेज़ें डेस्कों की अपेक्षा अच्छी होती हैं। किसी ऐसे विषय के लिए जिसमें हाथ का काम या प्रायोगिक कार्य करना हो, मेज़ों का होना ज़्यादा अच्छा है। उन विषयों में जहां अनेक पुस्तकों की सम्मति लेनी रहती है, जहां कार्य डॉल्टन-योजना के आधार पर किया जाता है तथा बहुधा ऊंची कक्षाओं में मेज़ के कारण काम करने के लिए ज्यादा जगह मिल जाती है और डेस्क की अपेक्षा काम करने में अधिक सरलता पड़ती है। जूनियर कक्षाओं में अधिकांश विषयों के लिए डेस्कें ही ज्यादा ठीक रहती हैं।

मामूली तौर से डेस्कें स्थिर होती हैं और कुर्सियां उनमें सटी होती हैं। पर यह उचित नहीं। या तो ऐसी डेस्क का प्रयोग किया जाना चाहिए जिसका ऊपरी भाग आगे-पीछे खिसकाया जा सके और नीचे-ऊपर उठाया जा सके, अथवा कुर्सियां डेस्क

से बिलकुल अलग होनी चाहिए। अध्यापन-कार्य तथा लिखित कार्य के लिए डेस्क से कुर्सी की दूरी अलग-अलग होती है।

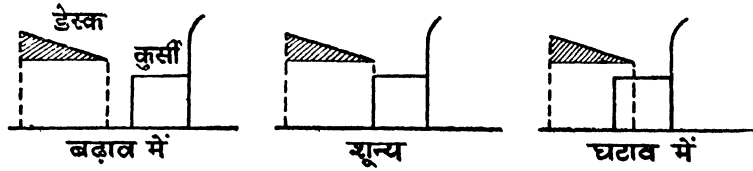

पढ़ने और खड़े होने के लिए बढ़ाव की स्थिति और लिखने के लिए घटाव की स्थिति सर्वोत्कृष्ट होती है। कुर्सियों की ऊँचाई इतनी होनी चाहिएँ कि बच्चों के पैर लटकते न रहें, बल्कि फ़र्श तक पहुँच जायँ। कुर्सियों में पीछे का हिस्सा होना चाहिए। ज्यादा अच्छा यह होगा कि इन कुर्सियों को पीठें इस तरह से बनाई जायँ कि जो विद्यार्थी कुर्सी का प्रयोग करे उसकी पीठ के अनुसार वह फिट की जा सके।

अध्यापक की डेस्क एक ऊँचे मंच पर होनी चाहिए, ताकि यह पूरे कमरे में अपनी नज़र दौड़ा सके और प्रत्येक डेस्क की सतह को देख सके।

श्यामपट

दो प्रकार के श्यामपटों का प्रयोग होता है—दीवार के श्यामपट और लकड़ी के तख्तेवाले श्यामपट। अधिकांश कामों के लिए तख्तेवाला श्यामपट ज्यादा अच्छा होता है। आगे और पीछे दोनों तरफ़ से उसका प्रयोग किया जा सकता है और जब अध्यापक उसके निचले भाग का प्रयोग करना चाहता है तो वह ऊँचे उठाया जा सकता है और इस तरह से निचला भाग कमरे के हर एक हिस्से से देखा जा सकता है। (दीवार के श्यामपट के निचले भाग पर लिखना कठिन होता है और कमरे के पीछे के भाग से वह आसानी से देखा भी नही जा सकता।) वह कमरे के किसी भी भाग में रखा जा सकता है और प्रकाश के हिसाब से उसका कोण बदला जा सकता है। बहुधा दीवार के श्यामपट पर की गई लिखाई को कमरे के कुछ भागों से पढ़ना कठिन होता है। यदि कक्षाएँ बाहर ली जाती हैं तो तख्तेवाले श्यामपट हटाये जा सकते हैं। यदि केवल दीवारवाले ही श्यामपट हैं तो बाहर कक्षाएँ लगाना नितान्त

असम्भव है। स्थिर दीवारवाले श्यामपट चित्र-विद्या के कक्षों तथा छोटे बच्चों की कक्षाओं के लिए लाभदायक होते हैं। जब कभी श्यामपट बहुत ज्यादा चमकदार हो जाय तो उसके ऊपर रंग चढ़ा देना चाहिए।

अलमारी

प्रत्येक कक्ष में एक या दो अलमारियाँ होनी चाहिए जिनमें झाड़न, खरिया, रजिस्टर, सन्दर्भ-पुस्तकें तथा अन्य वस्तुएँ रखी जा सकें। सबसे सस्ती अलमारियाँ वे पड़ती हैं जो भवन-निर्माण होते समय दीवार में बना दी जाती हैं। अलमारी के अन्दर रखी हुई चीज़ों को दीमक से नष्ट होने से बचाने के लिए सावधान रहना पड़ता है। यदि सम्भव हो तो कमरे में शब्द-कोषों, विद्याचक्र-कोषों (Encyclopædias), चित्र-पुस्तकों और ऐटलसों आदि के रखने के लिए खुली हुई अलमारियाँ होनी चाहिए। विज्ञान-कक्ष में बहुत-सी अलमारियाँ होंगी। कमरे के चारों ओर लकड़ी की एक अलगनी होनी चाहिए जो फ़र्श से लगभग आठ फ़ुट की दूरी पर हो और जिसमें हुक या कीलें लगी हों। इसमें मानचित्र, चार्ट, चित्र अथवा अन्य उपयोगी वस्तुएँ टाँगी जा सकती हैं। प्रत्येक कक्ष में चित्र होने चाहिए। उनका सम्बन्ध उस विषय से होना चाहिए जिसके लिए कमरे का प्रयोग किया जाता है और इस प्रकार उन्हें कमरे को उचित वातावरण प्रदान करने में सहायता पहुँचानी चाहिए।

(१) पंजाब में १०० लड़कों के लिए छात्रावास की योजना का ढंग

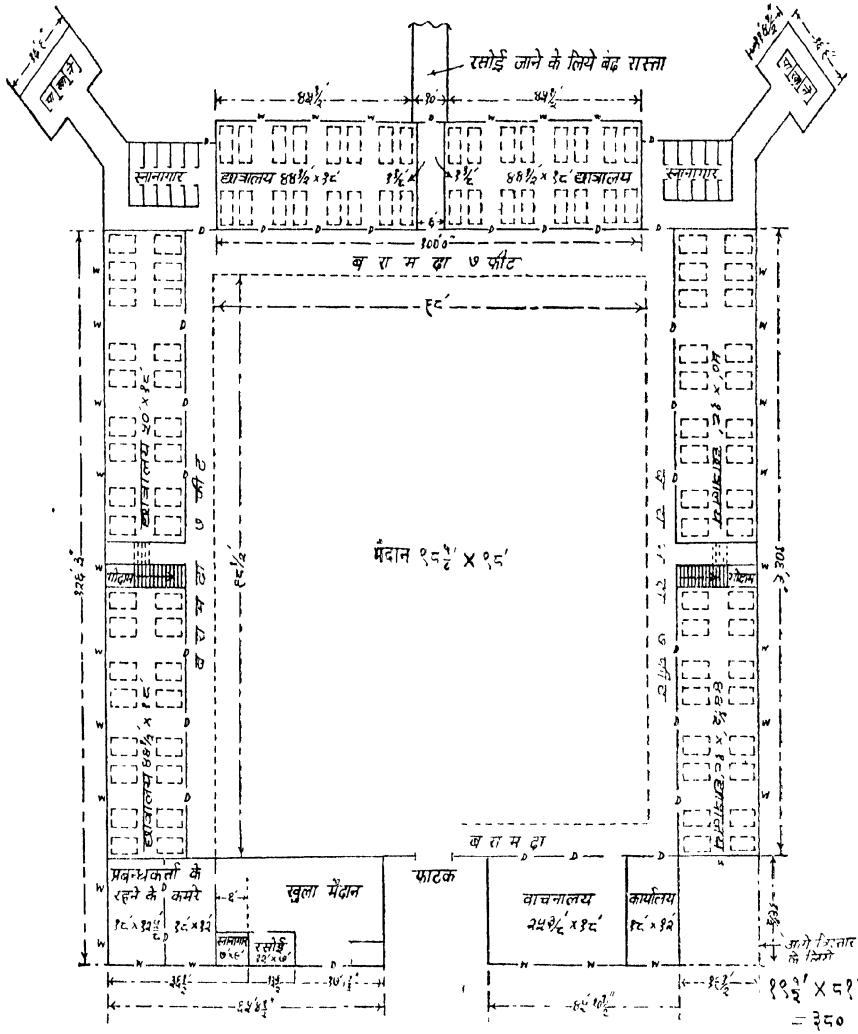

निकटतम व्यय

१.	१०० लड़कों के लिए छात्रावास = १२,२४१ वर्ग फ़ीट, ४ रु० के हिसाब से	४८,९६४ रु०
२.	रसोई, बाहरी भवन और पाखाने	१०,२८९ रु०
३.	सड़कें और पानी की सप्लाई	२,००० रु०
	कुल योग	६१,२५३ रु०

(२) पंजाब के एक प्राथमिक, माध्यमिक एवं हाई स्कूल की योजना

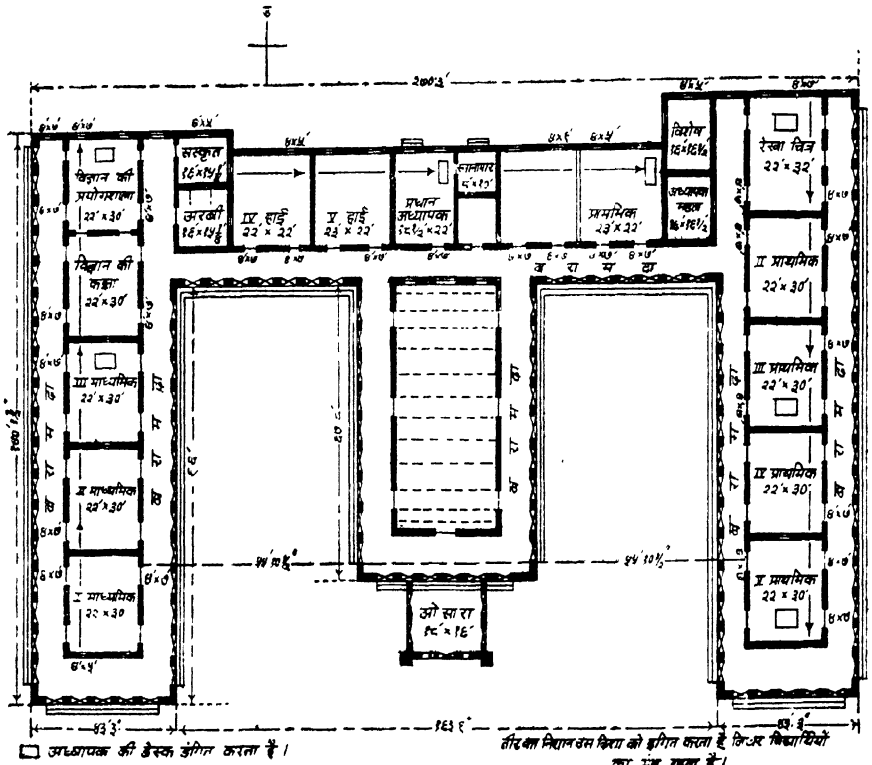

(३) मद्रास की एक सेकेंडरी पाठशाला के लिए एक तरह का नमूना

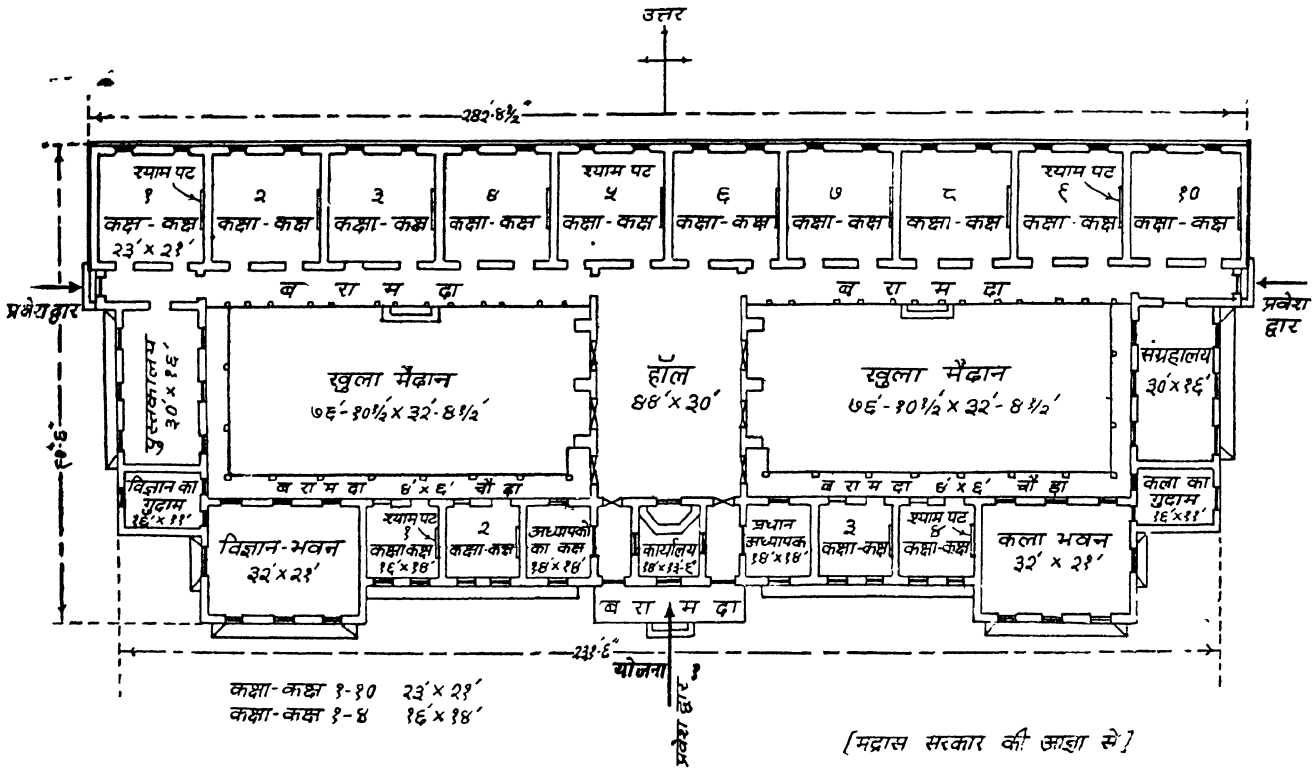

[मद्रास सरकार की आज्ञा से]

(४) ४० विद्यार्थियों के लिए हाई स्कूल का विज्ञान-कक्ष

कमरा = ४५′ × २५′

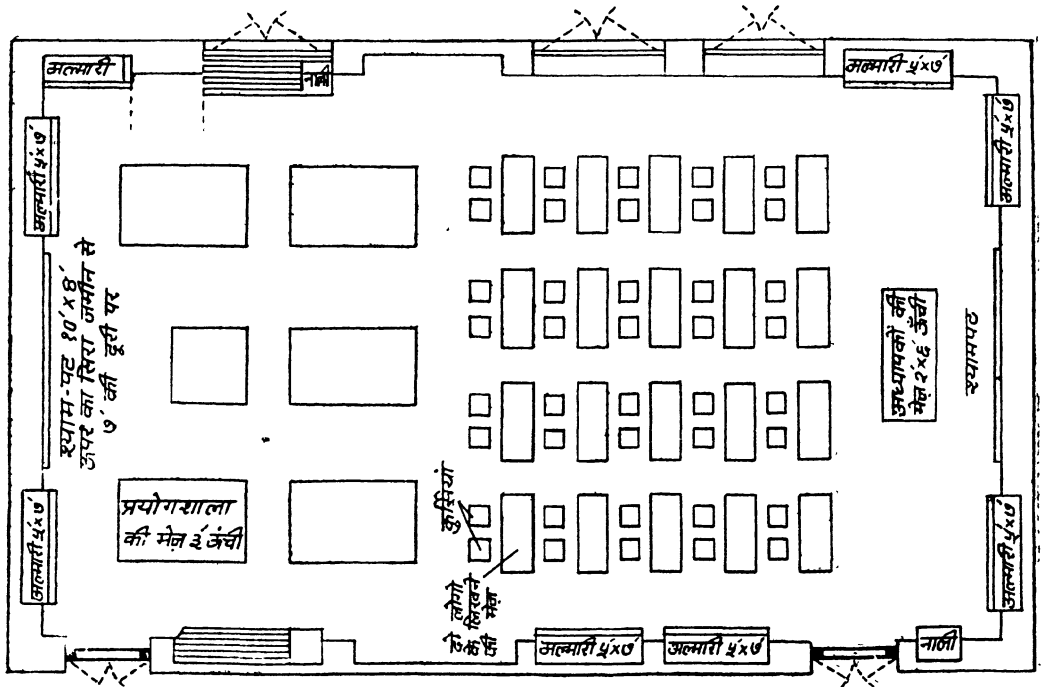

४० प्रदर्शन के लिए
२० व्यावहारिक कार्य के लिए

आर० एच० ह्वाइट हाउस

अध्याय १३

प्रबन्धकारिणी समिति तथा प्रबन्धक

पाठशाला की प्रबन्धकारिणी समिति अथवा मंडल का विधान एक महत्त्वपूर्ण विषय है। राजकीय नगरपालिका अथवा ज़िला-बोर्ड की पाठशालाओं के मामले में भी यदि नियम आज्ञा दें, तो ऐसे पाठशाला-मंडल अथवा समिति का होना अच्छी योजना है, जिनमें पड़ोस के ऐसे प्रभावशाली व्यक्तियों के प्रतिनिधि हों जिनसे समय-समय पर परामर्श लिया जा सके। इस प्रकार की समिति कई तरीक़ों से प्रधान अध्यापक को बड़ी सहायता पहुंचा सकती है। निजी ग़ैर-सरकारी पाठशालाओं के सम्बन्ध में सदैव एक प्रबन्धकारिणी समिति होनी चाहिए।

ग़ैरसरकारी पाठशालाओं में इस प्रकार का मंडल न केवल सम्भव अथवा लाभदायक है, वरन् कुछ मामलों में कोड के नियमों के अनुसार उसका होना अनिवार्य है। उसका विधान एक ऐसा विषय है जिसके बारे में कोई रोक-टोक नहीं होती। साधारणतः उसमें माता-पिता तथा पाठशाला को आर्थिक सहायता देनेवालों के प्रतिनिधि होने चाहिए। पाठशाला-परिषद् की सदस्यता का स्पष्टीकरण करने के लिए निश्चित नियम बना लिये जाने चाहिए जिनके द्वारा प्रबन्धकारिणी का चुनाव हो (यह परिषद् पितृ-शिक्षक परिषद् हो सकती है, यदि एक का अस्तित्व हो तो),

अन्यथा यह परिषद् और अधिक विस्तृत आधार पर बनाई जा सकती है। पाठशाला के पुराने छात्रों को तथा माता-पिता एवं ऐसे व्यक्तियों को जो पाठशाला में रुचि रखते हों और पाठशाला के धन में एक निश्चित अल्पतम रक़म का योग देने के लिए तैयार हों, सदस्यता का अधिकार होना चाहिए। सदस्यता का थोड़ा-सा शुल्क वसूल किया जा सकता है।

तब यही परिषद् वर्ष में एक बार, अथवा जिस किसी समय पर भी तय हो, प्रबन्धकारिणी समिति का निर्वाचन करेगी। प्रायः यह ज्यादा अच्छा होता है कि परिषद् के विभिन्न भागों के प्रतिनिधि एक निश्चित संख्या में हों। कहने का तात्पर्य यह कि प्रबन्धकारिणी समिति में पुराने छात्रों की एक निश्चित संख्या होगी, माता-पिता एक निश्चित संख्या में होंगे और कुछ स्थान खुले चनाव के लिए छोड़ दिये जायँगे। प्रधान अध्यापक तथा अध्यापक-मंडल के एक प्रतिनिधि के लिए समिति में स्थान होना चाहिए। इस प्रकार बारह सदस्यों की समिति में तीन जगहें पुराने छात्रों के लिए, तीन माता-पिता के लिए अलग की जा सकती हैं और चार खुले चुनाव के लिए छोड़ी जा सकती हैं।

इसके बाद यह समिति अपने सभापति (जो पाठशाला का प्रबन्धक होगा), मंत्री तथा अध्यक्ष का निर्वाचन करेगी। प्रबन्धक-समिति पाठशाला के आर्थिक पक्ष के लिए उत्तरदायी होगी। इस प्रकार के पाठशाला-फंड, जैसे खेल के फंड, वाचनालय-फ़ंड, विज्ञान-फ़ंड आदि, प्रधान अध्यापक के हाथ में सौंप दिये जाने चाहिए और उनके ऊपर उसका पूर्ण नियंत्रण क़ायम कर दिया जाना चाहिए। छोटे-छोटे खर्चों के लिए उसको हर महीने थोड़े-से नक़द रुपए दे दिये जाने चाहिए जिनका हिसाब वह माहवार दे देगा। किसी मद में प्रधान अध्यापक कितना धन व्यय कर सकता है, इसकी एक निश्चित अवधि निर्धारित कर दी जानी चाहिए। प्रबन्धक की आज्ञा के बिना यह बढ़ाई नहीं जा सकती। प्रधान अध्यापक को इस बात की आज्ञा होनी चाहिए कि वह उन फ़ंडों में से जिनका प्रबन्ध उसे करना पड़ता है, प्रत्येक के लिए डाकखाने का सेविंग्स बैंक एकाउण्ट खोल ले। पाठशाला का सामान्य पोस्ट ऑफिस सेविंग्स बैंक एकाउण्ट प्रबन्धक के नाम से होना चाहिए और शुल्क, दान, अनुदान तथा चंदों से प्राप्त होनेवाला धन नियमित रूप से उसमें जमा कर दिया जाना चाहिए। इस बात का निर्णय समिति द्वारा होगा कि मास के अन्त में वेतन बाँटने का काम

प्रधान अध्यापक करेगा अथवा प्रबन्धक अर्थात् प्रधान अध्यापक को इकट्ठा एक लम्बी रक़म सौंप दी जायगी और वह उसका वितरण कर देगा, अथवा प्रबन्धक स्वयं अध्यापकों को वेतन बाँटेगा। बादवाले कार्यक्रम की सिफ़ारिश की जानी चाहिए, पर अन्तिम निर्णय तो स्थानीय परिस्थितियों द्वारा होगा। प्रबन्धक के हिसाब-किताब सावधानी के साथ रखे जाने चाहिए और वर्ष में एक बार विभागीय ऑडिटरों द्वारा उनकी जांच की जानी चाहिए। पाठशाला-फ़ंड में शुल्क तथा दान के रूप में प्राप्त होनेवाले धन के अतिरिक्त और जितनी भी रक़म जमा हो, उसका हिसाब रखा जाना चाहिए।

प्रबन्धकारिणी समिति पाठशाला में अध्यापकों के लिए प्रॉविडेंट फ़ंड के प्रतिपादन के लिए तथा यह देखने के लिए उत्तरदायी होती है कि अलग-अलग हिसाबों में मासिक वेतन हर मास की ४ तारीख के पहले बाँट दिया जाता है, ताकि ब्याज का नुक़सान न हो। इस प्रकार के प्रॉविडेंट फ़ंड का हिसाब-किताब किसी ऐसे व्यक्ति, अध्यापक या पाठशाला के बाबू को, जिसे प्रबन्धक द्वारा यह काम सौंपा जाता है, करना होता है। यह सदैव विचारणीय है कि इस प्रॉविडेंट फ़ंड का प्रबन्ध उस सूबे के लिए बने हुए प्रॉविडेंट फ़ंड के प्रामाणिक नियमों के अनुसार होना चाहिए, जिसमें पाठशाला स्थित हो। प्रत्येक अध्यापक के लिए अलग-अलग हिसाब रखे जाने चाहिए। साधारणतः यह प्रबन्ध होता है कि वेतन का एक आना प्रति रुपए के हिसाब से अध्यापक दे और वेतन के एक आना प्रति रुपए के हिसाब से प्रबन्धकारिणी समिति द्वारा दिया जाय।

प्रधान अध्यापक सहित समस्त अध्यापक प्रबन्धकारिणी समिति द्वारा नियुक्त किये जाते हैं, अतएव नौकरी के निश्चित नियम निर्धारित कर दिये जाने चाहिए। निश्चित वर्ग, जिनके अनुसार वेतन चुकाये जाते हैं और वार्षिक आय की वृद्धि की जाती है, बना लिए जाने चाहिए और नौकरी की शर्तों तथा सम्बन्ध के विषय में एक निश्चित समझौता तैयार कर लिया जाना चाहिए तथा क़ानूनी तौर पर उसकी लिखा-पढ़ी हो जानी चाहिए। जब तक यह नहीं किया जाता तब तक देर-सबेर कभी-न-कभी झंझट पैदा होना निश्चित है। अध्यापकों और समिति, दोनों के लिए जितनी सावधानी से सम्भव हो सके उतनी सावधानी के साथ नौकरी की शर्तों तथा सम्बन्धों का निर्धारित किया जाना ज़्यादा अच्छा है। अध्याय के अन्त में

समझौते का एक फ़ार्म दिया गया है जिसकी सिफ़ारिश पंजाब के शिक्षा-विभाग द्वारा की गई है।

एक ओर प्रधान अध्यापक तथा अध्यापक-मंडल और दूसरी ओर प्रबन्धक एवं प्रबन्धकारिणी समिति के बीच निकटतम सहयोग होना चाहिए। प्रबन्धकारिणी समिति के लिए यह ज़रूरी है कि वह अपने प्रधान अध्यापक तथा अध्यापक-मंडल में विश्वास रखे। वे पहले तो अपने ही आदमियों को चुनते हैं अतएव उनको चुन लेने के बाद उन पर पूर्ण विश्वास रखना चाहिए, विशेषरूप से अपने प्रधान अध्यापक पर। मतभेद हो सकता है और होगा, परन्तु यदि प्रधान अध्यापक और प्रबन्धक तथा प्रबन्धकारिणी समिति के बीच परस्पर आदर तथा विश्वास है तो ये मतभेद साधारणतः मित्रभाव से यत्नपूर्वक दूर किये जा सकते हैं। प्रधान अध्यापक के उत्तरदायित्व के विस्तार से सम्बन्ध रखनेवाले नियम निर्धारित किये जा सकते हैं। निर्धारित किये जाने के बाद प्रबन्धकारिणी समिति तथा प्रधान अध्यापक दोनों के ही द्वारा सावधानी के साथ उनका पालन किया जाना चाहिए। दोनों में से किसी को एक-दूसरे के अधिकार-क्षेत्र का अतिक्रमण करने की चेष्टा न करनी चाहिए। यह तथ्य कि प्रधान अध्यापक तथा अध्यापक-मंडल का एक प्रतिनिधि प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्य हैं, इस बात को निश्चित कर देगा कि उनके विचार समझ लिए गये हैं और प्रबन्धकारिणी समिति द्वारा किये गये किसी भी निर्णय में उन विचारों का ध्यान रख लिया गया है।

पाठशाला के कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि न केवल प्रबन्धक वरन् प्रबन्धकारिणी समिति के सभी सदस्य पाठशाला तथा उसके काम में रुचि लें। वे ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जिन्हें शिक्षा में रुचि हो, और यदि ऐसा है तो उन्नतिशील प्रधान अध्यापक एवं अध्यापक-मंडल को उनसे बड़ी सहायता मिल सकती है। उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि पाठशाला में क्या हो रहा है, और यदि उनके द्वारा किया जानेवाला निरीक्षण सम्यक् प्रवृत्ति में भी किया जाता है तो उनका सदैव स्वागत किया जायगा।

यदि सम्भव हो तो प्रबन्धक के लिए पाठशाला में थोड़ा-सा शिक्षण-कार्य करना अच्छी चीज़ है। निश्चय ही यह केवल उसी हालत में किया जा सकता है जब प्रबन्धक पढ़ाने की योग्यता रखता हो और उसके पास यदि आवश्यक अवकाश हो तो

भी बहुधा इसका प्रबन्ध हो जाता है। यदि प्रबन्धक कुछ कक्षाएँ लेता है तो कक्षा के साथ उसका सम्पर्क अन्य किसी उपाय से जितना सम्भव है उसकी अपेक्षा अधिक निकटतर रह सकेगा। अध्यापक की हैसियत से जितनी देर वह पाठशाला में काम करता है, उतनी देर तक वह प्रधान अध्यापक के नीचे रहता है। स्पष्ट रूप से इस प्रकार का प्रबन्ध केवल उसी दशा में सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया जा सकता है जब कि प्रबन्धक एवं प्रधान अध्यापक के बीच में विश्वास हो, जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं। जब तक पारस्परिक मित्रता एवं आदर-भाव आधार के रूप में न हों तब तक प्रबन्धक का अध्यापक के रूप में आना छेड़ छाड़ का एक ज़रिया बन जायगा। पर आवश्यक शर्तें पूरी न की जाने का कोई कारण नहीं और वे पूरी की जाती हैं तो इस प्रबन्ध से प्रबन्धक तथा प्रधान अध्यापक दोनों को बड़ी सहायता मिलती है और उससे पाठशाला की भलाई होती है। प्रबन्धक इस बात को ज़्यादा अच्छी तरह से समझ सकता है कि प्रधान अध्यापक तथा सहायक अध्यापकों के आदर्श क्या हैं और उन आदर्शों की पूर्ति के लिए वे किस प्रकार प्रयास कर रहे हैं। वह सामग्री तथा अध्यापकों के सम्बन्ध में होनेवाली पाठशाला की आवश्यकताओं को ज़्यादा अच्छी तरह से समझ सकता है। वह प्रयुक्त विधियों का मूल्यांकन ज़्यादा अच्छी तरह से कर सकता है। वह अध्यापक-मंडल के सदस्यों तथा उस कार्य का, जो वे कर रहे हैं, मूल्यांकन ज़्यादा अच्छी तरह से कर सकता है। फिर भी इस बात पर ज़ोर दिया जाना चाहिए कि प्रबन्धक के लिए प्रशिक्षित अध्यापक होना आवश्यक है। आजकल जो कोई भी व्यावसायिक ढंग से प्रशिक्षित नहीं है उसे पाठशाला मे पढ़ाने का कोई अधिकार नहीं।

प्रबन्धक तथा प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्य दूसरे ढंग से पाठशाला के प्रति अपनी रुचि दिखा सकते हैं और उसके कामों में सहायता पहुँचा सकते हैं। टीमों को शिक्षा देकर, मैचों मे रेफ़री करके, विद्यार्थियों के साथ खेलकर, वार्ताओं के कार्य-क्रम में, जिसका वर्णन ग्यारहवें अध्याय में किया जा चुका है, भाग लेकर, नाटकों के तैयार कराने में सहायता देकर, बालचर-शिक्षकों की भाँति काम करके अथवा बालचर-टोलियों को अपने विभिन्न प्रकार के बिल्ले तैयार करने में मदद देकर, रेडक्रॉस समितियों तथा उनके कामों को सहायता पहुँचाकर, विद्यार्थियों को सगीत में प्रशिक्षित बनाने में सहायता देकर और अपनी रुचि तथा योग्यता के अनुसार इस तरह

के अनेक उपायों से प्रबन्धक एवं प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्यगण पाठशाला के प्रति अपनी रुचि दिखा सकते और उसकी सहायता कर सकते हैं।

समय-समय पर प्रबन्धकारिणी समिति और अध्यापक-मंडल की बैठकें होती रहना चाहिए, जो व्यावहारिक ढंग की होने के साथ-साथ सामाजिक भी हो सकें। प्रबन्धकारिणी के उन सदस्यों को, जो तर्कणीय विषय में विशेषरूप से रुचि रखते हों, अध्यापक-मंडल की मासिक बैठक में भी आमंत्रित किया जा सकता है। इस प्रकार के निमंत्रण केवल प्रधान अध्यापक की ओर से न होने चाहिए, वरन् पूरे अध्यापक-मंडल की ओर से दिये जाने चाहिए।

प्रबन्धकारिणी समिति का यह कर्तव्य है कि वह न केवल पाठशाला के आर्थिक कल्याण के ऊपर सतर्कता के साथ अपनी नज़र रखे, बल्कि पाठशाला-जीवन के अन्य अंगों के ऊपर भी उसका उसी प्रकार अनुराग होना चाहिए। बटुए की डोरियाँ तो उन्ही के हाथ में रहती हैं, अतएव यह देखना उनका कर्तव्य हैं कि रहने के लिए पर्याप्त स्थान है, सामग्री पर्याप्त मात्रा में है, सफ़ाई का समुचित प्रबन्ध है, छात्रावास का प्रबन्ध बिलकुल ठीक है, शिक्षकों के पुस्तकालय के लिए वाचनालय-पुस्तकें ख़रीदी जाती हैं और वाचनालय आदर्श के अनुकूल रखा जाता है तथा पाठशाला सामान्यरूप में उसी तरह से चल रही है जिस तरह उसे चलना चाहिए। प्रधान अध्यापक के निकट परामर्श से इस प्रकार की बातों को देखनेवाला उपयुक्त व्यक्ति प्रबन्धक ही है। इसी कारण पाठशाला के साथ प्रबन्धक का सम्बन्ध जितना ही निकटतर होगा, पाठशाला के लिए उतना ही ज़्यादा अच्छा होगा। यदि प्रबन्धक पाठशाला में अध्यापन-कार्य करता है, चाहे वह सप्ताह में कुछ ही घंटों (periods) के लिए क्यों न हो, तो वह पाठशाला की आवश्यकताओं को कहीं ज़्यादा अच्छी तरह से समझ सकता है, और जब आवश्यकता की सारी चीज़ें नहीं मँगाई जा सकतीं तो कौन-सी चीज़ें आवश्यकता के अनुसार पहले मँगाई जानी चाहिए, यह भी वही समझ सकता है। निश्चय ही यह आवश्यक है, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, कि वह प्रधान अध्यापक के निकटतम सहयोग से कार्य करे।

प्रबन्धकारिणी समिति को अध्यापक-मंडल की भलाई के लिए मितव्यय एवं क्रेडिट सहकारी समिति की स्थापना करनी चाहिए। इस प्रकार की समिति से प्रधान अध्यापक एवं सहायक अध्यापकों का बहुत भला होता है। साथ ही प्रबन्धकारिणी

समिति के ऊपर कोई अतिरिक्त आर्थिक उत्तरदायित्व भी नहीं आता। सच तो यह है कि इसकी वजह से ऋण और पेशगी तनख्वाह के लिए आनेवाले आवेदन-पत्रों से छुटकारा मिल जाता है। इस प्रकार की समितियों के नियम सहकारी विभाग की ओर से दिये जायँगे। मुख्य सिद्धान्त यह है कि समिति का प्रत्येक सदस्य कई एक हिस्से लेता है और हिस्सों की अधिकतम संख्या, जो एक सदस्य व्यक्तिगत रूप से ले सकता है, बता दी जाती है। प्रत्येक सदस्य हर महीने अनिवार्य रूप से एक निश्चित रक़म जमा करना मंज़ूर करता है। समिति की ओर से इस अनिवार्य संग्रह के लिए अल्पतम रक़म निश्चित कर दी जाती है। जब तक समिति की इच्छा न हो तब तक अल्पतम रक़म रखने की कोई आवश्यकता नहीं। यह अनिवार्य संग्रह विशेषरूप से बताये हुए कतिपय कारणों से, जो उपनियमों में दिये रहते हैं, वसूल किया जा सकता है। यह धन तो समिति के ही पास रहता है पर उसके ऊपर होनेवाला ब्याज सम्बन्धित व्यक्ति के हिसाब में जोड़ दिया जाता है। यह समिति का मितव्यय पक्ष है। फिर दूसरी ओर, सदस्यगण समिति से ऋण के रूप में उतनी रक़म प्राप्त कर सकते हैं, जो कि उनके तीन मास के वेतन के बराबर हो अथवा जिसकी मात्रा समिति द्वारा निश्चित कर दी गई हो। इन ऋणों के ऊपर वे समिति द्वारा निश्चित की हुई दर से ब्याज देते हैं और ऋण प्रति मास के वेतन से रुपया काटकर माहवारी किश्तों के रूप में उस अवधि के अन्दर-अन्दर चुका दिया जाता है जो समिति द्वारा निश्चित कर दी जाती है। वर्ष के अन्त में हिस्सों के ऊपर होनेवाला लाभ बाँट दिया जाता है। लाभ का एक अंश सार्वलौकिक फ़ंड में दे दिया जाता है, जिसका प्रयोग पाठशाला से सम्बन्धित किसी भी उपकार के हेतु किया जाता है; जैसे निर्धन बालकों के लिए छात्रवृत्तियाँ अथवा शुल्क-सम्बन्धी सहायता। समिति के पास अपना नियमित पदाधिकारी, सभापति, मंत्री, कोषाध्यक्ष तथा एक प्रबन्धकारिणी समिति होती है, जिनमें सभी का वार्षिक निर्वाचन होता है। हिसाब की जाँच सहकारी विभाग द्वारा होती है।

समझौते के फ़ॉर्म का एक मसविदा

समझौता किया गया.....के दिन.....एक हज़ार नौ सौ और.....
(पाठशाला-सत्ता) एक पक्ष के और (अध्यापक) दूसरे पक्ष के बीच।

जहां उक्त (पाठशाला-सत्ता) ने उक्त (अध्यापक) को पाठशाला (नाम) में (स्थान) अध्यापक की हैसियत से इसके बाद बताई हुई तनख्वाह पर नियुक्त करने का समझौता किया है।

अब ये उपस्थित लोग साक्षी देते हैं और दोनों पक्ष इस स्थल पर आपस में नीचे दिये हुए तरीक़े से प्रतिज्ञा करते हैं, वचन देते हैं और तय करते हैं कि—

(१) कहने का तात्पर्य यह है कि उक्त (पाठशाला-सत्ता) उक्त (अध्यापक) को नियुक्त करेगी और उक्त (अध्यापक) उक्त (पाठशाला-सत्ता की) अध्यापक के रूप में (नाम की) पाठशाला में (स्थान) अपने पद का भार ग्रहण करने की तिथि से लेकर उस समय तक नौकरी करेगा जब तक कि उसकी नियुक्ति आगे बताये हुए आयोजन के अनुसार निश्चित न कर दी जाय।

पूर्णतया अस्थायी रिक्त स्थान को छोड़कर उक्त (अध्यापक) अपने पद का भार ग्रहण करने की तिथि से बारह महीने की अवधि तक परीक्ष्यमाण रहेगा। उस अवधि में उक्त (पाठशाला-सत्ता) को इस बात की स्वतंत्रता है कि वह बिना सूचना दिये अथवा कोई कारण बताये अध्यापक को नौकरी से अलग कर दे।

(२) यह कि उक्त (अध्यापक) स्वयं प्रधान अध्यापक, जिसके नीचे उक्त पाठशाला (नाम) के अध्यापक के रूप में समय-समय पर उसे रहना पड़ेगा, के आदेशों एवं आज्ञाओं का पालन करते हुए ईमानदारी, निपुणता एवं परिश्रम से काम करेगा। उस हैसियत से वह उस पद से सम्बन्धित इस प्रकार के समस्त कर्तव्यों का पालन करेगा तथा उन सारी बातों को करेगा जो उससे अपेक्षित की जा सकेंगी अथवा जैसा पहले बताया जा चुका है, उसके पद के अनुरूप करनी आवश्यक होंगी और दूसरे मामलों में अपने को लाभदायक बनायेगा, जैसी कि उससे आशा की जा सकती है।

(३) यह कि वह किसी भी बहाने से अपने को उस समय तक अनुपस्थित न करेगा जब तक कि उसके अपने से बड़े उस पदाधिकारी की आज्ञा पहले से प्राप्त न हो चुकी हो, जो इस मामले में अधिकार रखता हो, अथवा बीमारी या अनिवार्य दुर्घटना के मामले में वह एक ऐसा डाक्टरी प्रमाण-पत्र न प्रस्तुत कर चुका हो जो कि पहले बताये हुए पदाधिकारियों को उक्त पाठशाला की छुट्टियों के नियमों के अनुसार संतोषजनक जान पड़े।

(४) यह कि वह अपना पूरा समय उक्त पद के कर्तव्यों की पूर्ति में लगायेगा और स्वेच्छा से अथवा अन्य किसी तरह से अपने से बड़े उन पदाधिकारियों की आज्ञा पहले से प्राप्त किये बिना, जिन्हें इस मामले में अधिकार हो, न तो प्रत्यक्ष रूप से और न अप्रत्यक्ष रूप से किसी भी व्यापार अथवा व्यवसाय को चलायेगा और न उससे कोई सम्बन्ध रखेगा।

(५) यह कि वह उक्त पाठशाला में प्रयुक्त समस्त नियमों तथा व्यवस्थाओं का छुट्टी के नियमों के अनुसार, जिसकी एक प्रतिलिपि लगी हुई है, पालन करेगा और इस प्रकार की सभी न्यायोचित आज्ञाओं तथा आदेशों का पालन करेगा जो उसे समय-समय पर उक्त पाठशाला के किसी प्रमाणित पदाधिकारी से प्राप्त होते रहेंगे।

(६) यह किसी एक पक्ष के द्वारा दूसरे पक्ष को कैलेण्डर के हिसाब से तीन महीने की एक लिखित सूचना देकर, जिसमें इस इरादे का निर्णय किया हुआ हो, अथवा इस प्रकार की सूचना के बदले तीन महीने का वेतन चुकाकर किसी भी समय पर इस प्रबन्ध का अन्त किया जा सकता है, पर साथ ही इस बात की व्यवस्था है कि पाठशाला के अधिकारी उस दशा में अध्यापक को बिना सूचना दिये निकाल सकते हैं जब कि कोई ऐसा बड़ा दुराचार हो गया हो जो प्रबन्धकारिणी की राय में पंजाब शैक्षिक कोड की ७१ और १८० धाराओं के अन्तर्गत कार्यवाही करने के लिए विभाग को ध्यान में लाना चाहिए।

ऐसे मामले में नौकरी से हटाने के पहले अध्यापक से यह कहा जायगा कि वह लिखित रूप में अपना बचाव प्रस्तुत करे, जिसके लिए उसको उस तिथि से लेकर, जिस दिन उसे बचाव प्रस्तुत करने के आशय का पत्र प्राप्त हो, एक सप्ताह का समय दिया जायगा जिसके अन्दर उसे प्रबन्धकारिणी के सम्मुख अपना बचाव दे देना होगा। यदि उक्त सप्ताह के भीतर इस प्रकार का बचाव प्रस्तुत नहीं कर दिया जाता तो प्रबन्ध-कारिणी और देर किये बिना उसको बरखास्त करने के लिए क़दम बढ़ा सकती है।

(७) यह कि यदि उक्त अध्यापक यहाँ पर दी गई समस्त धाराओं का पालन और उन्हीं के अनुसार अपना काम करता है तो उसको उस समय तक, जब तक कि वह उक्त पाठशाला की सेवा में रहेगा और यथार्थ में अपने कर्तव्यों का पालन करता रहेगा, अपनी नौकरी के पहले साल में.....रु० प्रतिमास के हिसाब से वेतन मिलता रहेगा जो उसकी नौकरी के आगामी वर्षों में.....रु० प्रतिमास

के हिसाब से अधिकतम.....रु० तक बढ़ता रहेगा। परन्तु अपने काम से, बीमारी से, अथवा छुट्टी अथवा किसी अन्य कारण से उसके अनुपस्थित होने पर उसको उतना ही वेतन दिया जायगा जितना उक्त पाठशाला में लागू किय जानेवाले नियमों के अनुसार निश्चित किया जायगा।

इस बात का सदैव प्रबन्ध रहेगा कि लम्बी छुट्टी में अध्यापक को छुट्टी के पहले उसके द्वारा किये गये काम के अनुसार, जो आठ महीने या उससे अधिक हो, अथवा उससे कम समय तक के लिए हो, प्रतिमास के हिसाब से पूरा वेतन अथवा उचित अनुपात से घटाई हुई रक़म दी जायगी। आगे इस बात का भी प्रबन्ध है कि यदि अध्यापक ने तीन महीने से कम नौकरी की हो तो वह छुट्टी का वेतन प्राप्त करने का अधिकारी न होगा।

(८) यह कि यदि डाक्टरी प्रमाण के आधार पर पाठशाला के अधिकारी संतुष्ट हैं कि उक्त अध्यापक अयोग्य है और स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण इस तरह के शिक्षक की हैसियत से अपने कर्तव्यों को निभाने में बहुत दिनों तक उसके असमर्थ रहने की सम्भावना है तो उनके लिए इन उपस्थित नियमों के अनुसार किसी भी समय उसको तीन महीने के वेतन में से उतना धन काटकर दे देने, जो उसे अध्यापक के रूप में अपने नियमित कर्तव्यों का पालन करने के लिए पाठशाला में पिछली बार आने की तिथि के बाद छुट्टी के भत्ते के रूप में दिया जा चुका हो, उसकी सेवाओं का अन्त कर देना न्यायोचित है (अध्यापक की अयोग्यता के विषय में पाठशाला-सत्ता का निर्णय अन्तिम एवं निश्चित होगा) और इसके ऊपर उसकी नौकरी पूर्णरूप से समाप्त की जा सकती है।

जिनकी साक्षी में.....तथा.....ने ऊपर लिखे हुए समझौते को दिन तथा वर्ष को स्वीकार किया।

.....द्वारा हस्ताक्षर.....की उपस्थिति में

.....द्वारा हस्ताक्षर.....की उपस्थिति में

अध्याय १४

पाठशाला-निरीक्षण

निरीक्षक शैक्षिक पद्धति के एक महत्त्वपूर्ण अंगों में से एक है। भारतवर्ष में यह विशेषरूप से सच है, जहाँ शिक्षा-विभाग-विभागीय शिक्षालयों पर तथा आर्थिक सहायता देकर एवं स्वीकृति-प्रणाली के ज़रिए निजी पाठशालाओं पर भी अपना कड़ा नियंत्रण रखती है। निरीक्षक न केवल सामूहिक रूप में ज़िले अथवा भाग के शैक्षिक जीवन को बना-बिगाड़ सकता है, वरन् विभाग के नियंत्रण में रहनेवाली व्यक्तिगत पाठशालाओं के शिक्षा-सम्बन्धी जीवन को भी बना या बिगाड़ सकता है। निरीक्षक सबका नियंता होता है।

पहली बात तो यह है कि उसका पद अत्यधिक निरंकुशता का होता है, जहाँ यदि उसकी इच्छा यथार्थ में क़ानून नहीं होती तो वह उसके इतना निकट है कि समस्त व्यावहारिक अभिलाषाओं एवं उद्देश्यों के लिए अध्यापक तथा प्रधान अध्यापक उसको ऐसा ही (क़ानून) समझते हैं। अतएव अपने पद की हैसियत से निरीक्षक का प्रधान अध्यापकों तथा व्यक्तिगत अध्यापकों के ऊपर शक्तिशाली प्रभाव रहता है। मामूली तौर से ऐसी स्थिति मनुष्य के लिए अच्छी नहीं और जो लोग भी निरीक्षक के पद के लिए चने जाते हैं उन्हें अपने को उस कपटपूर्ण भय से, जो उनके पद के

साथ स्वाभाविक ही है, बचाने के लिए सतर्क रहना पड़ता है। यह एक वास्तविक भय है। यह चीज़ अनेक निरीक्षकों को उन प्रधान अध्यापकों अथवा अन्य अध्यापकों के प्रति होनेवाली प्रतिक्रिया के रूप में दिखाई देती है जो निर्णय-स्वातंत्र्य दिखाने का साहस करते हैं अथवा उनके इशारों पर चलने से इनकार कर देते हैं। निश्चय ही नियम यही है कि प्रधान अध्यापक तथा अध्यापकगण इस प्रकार की स्वतंत्रता नहीं दिखाते। वे ज़्यादा अच्छा यही समझते हैं कि सरकार की ओर से, जिसका प्रतिनिधि निरीक्षक होता है, जो कुछ आज्ञा दी जाय उसे चुपचाप मान लिया जाय। अध्यापक-गण ऊंची नौकरी तथा भावी उन्नति को खतरे में नहीं डालना चाहते और पाठशालाएँ आर्थिक हानि उठाने की इच्छा नहीं रखतीं। फलस्वरूप निरीक्षकों में हानिकारक ढंग से आत्म-महत्त्व की वृद्धि होती है और दूसरी ओर अध्यापक में, जो भीतर-ही-भीतर जला करता है, 'गुलामी की प्रवृत्ति' का विकास होता है। यह बात हमेशा नहीं होती, पर हाँ बहुधा होती है। इसका प्रतिकार तथा बचाव उन लोगों के हाथ में है जो ऐसे पदों पर सुशोभित हैं, जहाँ प्रबन्ध की कुंजी हाथ में रहती है। निरीक्षण करने-वाले पदाधिकारियों और उनकी देख-रेख में काम करनेवाले अध्यापकों के बीच उसी तरह का सम्बन्ध होना चाहिए जैसा कि एक व्यक्तिगत पाठशाला के प्रधान अध्यापक एवं अध्यापक-मंडल के बीच होना चाहिए और उस विषय पर जो कुछ कहा जा चुका है वह समान रूप से अध्यापकों के साथ निरीक्षकों के अपने सम्बन्धों के विषय में लागू होता है।

दूसरी बात यह है कि जहाँ तक शिक्षा-सम्बन्धी उन्नति का सम्बन्ध है, निरीक्षक सबसे महत्त्वपूर्ण पदाधिकारी है। व्यक्तिगत रूप से पाठशालाएँ प्रयोग एवं उन्नति कर सकती हैं, पर पूरे ज़िले अथवा डिवीज़न की सामान्य उन्नति निरीक्षण करनेवाले पदाधिकारियों के ऊपर ही निर्भर रहती है। वे ही डिवीज़न भर के शिक्षा-सम्बन्धी कार्य की गति का अनुमान लगाने की क्षमता रखते हैं और वे ही इस बात को जान सकते हैं कि दुर्बलता और शक्ति कहाँ-कहाँ हैं। अतः निरीक्षक इस बात की योग्यता रखता है कि वह ऐसी पाठशालाओं का, जो पिछड़ी हुई हैं, ऐसे अध्यापकों का, जो गहरे चक्रमार्ग में पड़े हुए हैं, और ऐसी कमज़ोरियों का, जो सामान्य रूप से पाई जाती हैं, निराकरण एवं संस्था का उत्थान करने के लिए प्रभाव-शक्ति का प्रयोग करे। दूसरी स्थिति ऐसी होती है जहाँ से वह यह देखने में समर्थ हो पाता है कि पाठशाला

द्वारा किये हुए कार्य को प्रोत्साहन मिलना चाहिए या नहीं और (यदि आवश्यक हो तो) सहायता देना, किये गये व्यक्तिगत प्रयोगों का मूल्य निश्चित करना और उनका पथ-प्रदर्शक बनना तथा पाठशालाओं के कार्य-संगठन में स्थायी मूल्य के तत्त्वों पर ज़ोर देना भी उसका कर्तव्य है।

तीसरी बात यह है कि निरीक्षक एक ऐसा व्यक्ति होता है जिसके हाथ में हर बात की कुंजी होती है; क्योंकि वह अलग-अलग भागों को एक सम्बन्ध में लानेवाली एजेंसी हो सकता है। बहुधा विभिन्न पाठशालाएँ व्यक्तिगत रूप से एक ही तरह की समस्याओं पर काम करती रहती हैं, पर एक को दूसरी क्या कर रही है यह नहीं मालूम हो पाता। निरीक्षक का, जो यह देखता है कि सारी पाठशालाएँ क्या कर रही हैं और उन्हें कितनी सफलता प्राप्त हो रही है, काम है उन सफल विधियों के विषय में, जो उसने एक पाठशाला में देखी हैं, दूसरी पाठशालाओं के पास समाचार भेजना, उन प्रयोगों की सूचना, जो अच्छी तरह से सफल होते हुए दिखाई पड़ रहे हों, अन्य जगहों में भेजना, यह सुझाव देना कि इस प्रकार के प्रयोगों को एक ऐसे रूप में करने की चेष्टा कैसे की जा सकती है जो अन्य स्थानों को स्थानीय आवश्यकताओं के योग्य बनने के लिए परिवर्तित किया गया हो, शिक्षा अथवा संगठन की सफल विधियों का समाचार एक स्थान से दूसरी जगह ले जाना। संक्षेप में शैक्षिक उन्नति का प्रचारक बन जाना।

चौथी बात यह है कि निरीक्षक एक ऐसा व्यक्ति, जिसके हाथ में सारी कुंजियाँ हों, इसलिए समझा जाता है कि यह प्रयोग को प्रोत्साहन दे सकता है। उन्नति केवल इसी तरह से की जा सकती है और एक ऐसी पद्धति में भी, जहाँ विभागीय हस्तक्षेप अधिक-से-अधिक हो, प्रयोग करने के लिए बड़ी गुंजाइश रहती है। अच्छे निरीक्षक के पास कुछ उन्नतिशील पाठशालाएँ होंगी जहाँ उसे मालूम होगा कि प्रायोगिक कार्य के लिए उत्सुकता होगी। वह पाठशाला में अपनी देख-रेख के अन्तर्गत कुछ ऐसे उन्नतिशील अध्यापक तथा प्रधान अध्यापक रखेगा जिनके विषय में उसे ज्ञात है कि वे नये विचारों तथा विधियों की परीक्षा करने के लिए उत्सुक होंगे। ये पाठशालाएँ उसके लिए पौधा व पौधघरों की तरह से होंगी जहाँ शैक्षिक उन्नति-रूपी पौधे लगाये जाते हैं, उनकी रखवाली की जाती है और सावधानी के साथ उनकी उन्नति के ऊपर नज़र रखी जाती है। ये अध्यापक एवं प्रधान अध्यापक उसके उसी प्रकार संरक्षक होंगे जैसे पौधघर के आदमी पौधे के होते हैं। इस प्रकार की क्रियाएँ

प्रत्येक निरीक्षक, जो अपने को वास्तविक निरीक्षक कहलाने का दावा कर सकता है, उसके कार्य का एक निश्चित एवं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग होना चाहिए। इस प्रकार के प्रायोगिक कार्य के बाद वह ज़िला अथवा डिवीज़न के परिमाण से वे चीज़ें लागू कर सकता है जो एक पाठशाला में सफल हो चुकी हैं। इस प्रकार महत्त्वपूर्ण उन्नति की जा सकेगी। केवल निरीक्षक ही एक ऐसा व्यक्ति है जो संगठन कर सकता है और यह सामान्य उन्नति करवा सकता है। जहाँ उसे नेतृत्व ग्रहण करना चाहिए था, वहाँ बड़ी हिचकिचाहट के साथ दूसरों का अनुसरण करने की अपेक्षा, जैसा प्रायः होता है, वह अग्रदूत हो सकता है।

इससे यह निष्कर्ष निकला कि जो लोग इस महत्त्वपूर्ण पद पर आरूढ़ हों वे ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जिनमें कुछ विशेष गुण हों।

पहली बात यह है कि निरीक्षक के लिए यह आवश्यक है कि उसकी दृष्टि कुछ शैक्षिक हो। साथ ही उसको शिक्षा तथा शिक्षा-दर्शन में होनेवाले आधुनिक विकासों का विस्तृत ज्ञान हो। हमको अब भी ऐसे निरीक्षक दिखाई पड़ते हैं जो इस बात को एक निश्चित सिद्धान्त के रूप में रख सकते है कि किसी भी पाठशाला के मूल्य एवं उन्नति का निर्णय उसके परीक्षा-फलों के आधार पर होना चाहिए। अब यद्यपि परीक्षा-फलों की अवहेलना तो कोई न करेगा, तथापि कोई भी शिक्षा, जो शिक्षा कही जा सके, इस प्रकार की नहीं होती जो केवल परीक्षाफलों में ही केन्द्रीभूत हो और उन्हीं के द्वारा अपना निर्णय कराकर सन्तुष्ट हो। ऐसे निरीक्षकों से, जिनकी उस कार्य से सम्बन्ध रखनेवाली दृष्टि, जो उन्हें सौंपा गया है, परीक्षाफलों से घिरी हुई है, उन्नति-शील विकास की दिशा में किसी प्रकार की आशा नहीं की जा सकती। निरीक्षण करनेवाला अधिकारी चाहे जूनियर हो अथवा सीनियर, एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो अपने को केवल दफ़्तर की दैनिक क्रियाओं, पाठशालाओं के प्रबन्धकों द्वारा प्रति वर्ष भेजे जानेवाले विस्तृत विवरणों, संख्याओं तथा विभिन्न आँकड़ों से ऊपर रख सके और शिक्षा-सम्बन्धी नये-से-नये एवं सर्वोत्कृष्ट विचार से अपना सम्पर्क बनाये रख सके। परीक्षाएँ और परीक्षाफल पाठशाला-कार्य का केवल एक अंग हैं, पर उसका सबसे महत्त्वपूर्ण अंग नहीं, और उनके द्वारा पाठशाला के समस्त कार्य की परीक्षा करने का निश्चय करने का अर्थ है—दिये हुए कार्य को एक सरल एवं मृतप्राय ढंग से करना।

दूसरी बात यह है कि जो लोग इस महत्त्वपूर्ण पद पर आसीन हों उनके लिए यह आवश्यक है कि वे विशाल हृदय एवं उदार चित्तवाले हों। यह तो सभी जानते है कि अलग-अलग निरीक्षकों की अलग-अलग सनक होती है। सच मानो, कभी-कभी वे ही बातें, जो अध्यापकों तथा प्रधान अध्यापकों को सनक जान पड़ती है, वास्तव में मूल्यवान् विचार एवं सुझाव होते हैं। पर कभी-कभी ऐसा होता है कि निरीक्षकगण किसी काम को करने के लिए उस मार्ग को छोड़कर, जो उन्हें सबसे ज़्यादा अच्छा जान पड़ता है, अन्य सभी मार्गों की ओर से आँखें मूंद लेते हैं। अतएव वे उस विधि अथवा योजना को हरेक के ऊपर लादते हैं। निरीक्षक को पक्षपातहीन रहना चाहिए और सदैव सत्तारूपी राक्षस से, जो इस प्रकार लालच दिखाता है, अपने को बचाये रखना चाहिए। यदि कुछ चीज़ों को करने के लिए प्रधान अध्यापक दूसरे अथवा अध्यापकगण कुछ ऐसे उपाय बताते है जो उस उपाय से भिन्न हों, जिसके ऊपर निरीक्षक का अनुग्रह है, तो निरीक्षक को इस बात के लिए तैयार रहना चाहिए कि वह निष्पक्ष भाव से उनकी परीक्षा करे, यथार्थ अभ्यास में उनकी परीक्षा लेने के लिए अवसर प्रदान करे और तब यदि उसको निश्चित रूप से इस बात का विश्वास हो जाय कि वे बेकार हैं तो उसे यह कह देना चाहिए और इसके कारण देने चाहिए, अथवा इससे भी ज़्यादा अच्छा यह है कि वह सम्बन्धित अध्यापक अथवा प्रधान अध्यापक के साथ निष्कपट रूप से विषय की आलोचना कर ले और अपनी राय के लिए कारण दे दे। परन्तु निरीक्षक के मन में यह ख्याल कभी न पैदा होना चाहिए कि वह एक निरीक्षक है, इसलिए वह ग़लती कर ही नहीं सकता (अथवा यह भी नहीं कि वह निर्दोष होने का दिखावा करने की चेष्टा करता रहे) तथा आवश्यक रूप में अपनी देख-रेख के अन्तर्गत रहनेवाले प्रधान अध्यापकों एवं अध्यापकों से ज़्यादा जानना है। बहुत-से मामलों में इस प्रकार की राय को क़ायम करनेवाली कोई चीज़ नहीं होती।

तीसरी बात यह है कि जो लोग इस महत्त्वपूर्ण पद पर आसीन हों, उनके विचार रचनात्मक होने चाहिए, ध्वंसात्मक नहीं। दुर्भाग्य होते हुए भी, अनेक निरीक्षकों के सम्बन्ध मे यह बात सच है कि अपने कार्य के सम्बन्ध में उनका विचार एक दक्ष आलोचक होने के सिवा और कुछ नहीं होता। अब यह बात स्वीकार कर ली गई है कि आलोचकों को एक बड़ा उपयोगी कार्य करना होता है और उसकी आलोचना आवश्यक

है। यदि वह सम्यक् प्रवृत्ति में प्रदान की जाती है तो उसे धन्यवाद सहित स्वीकार कर लिया जाता है। परन्तु आलोचना करते-करते अचानक रुक जाने का मतलब हुआ, जैसा कितनी ही बार होता है, कार्य की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण शाखा में असफल हो जाना। पाठशाला में जाना और इधर-उधर की चीज़ों में दोष निकालना, रोज़-नामचे में यह लिखना कि यह कक्षा अंगरेज़ी पढ़ने में कमज़ोर है और दूसरी कक्षा इतिहास में स्तर से नीचे है, अमुक अध्यापक अंगरेज़ी में मौखिक कार्य ठीक से नहीं करता और दूसरा अध्यापक उर्दू उतनी अच्छी तरह से नहीं पढ़ाता जितनी अच्छी तरह से उसको पढ़ाना चाहिए—ये सब कोई कठिन काम नहीं। इन कामों को करने के योग्य बनने के लिए बहुत ज्यादा प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं। पर यह तो कर्तव्य का केवल छोटा-सा ही अंश है। प्रत्येक निरीक्षक को दूसरे तथा अधिक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य—कार्य के रचनात्मक अंग के साथ अधिक सम्बन्ध रखना चाहिए।

जब निरीक्षक को पता लगे कि अमुक कक्षा एक विषय में कमज़ोर है, अथवा एक अध्यापक असंतोषजनक विधियों का प्रयोग कर रहा है तो उसे चाहिए कि वह अध्यापक को प्रतिकार के लिए सुझाव दे, उसको यह दिखाये कि कक्षा को किस तरह पढ़ाना चाहिए, यह इंगित करे कि उसकी विधियों में कहाँ त्रुटि है और उसको किस प्रकार सुधारा जा सकता है। यदि निरीक्षण सदैव मुख्यतया अलोचनात्मक एवं विध्वंसात्मक दृष्टिकोण से करने के स्थान पर, इस रचनात्मक ढंग से किये जायँ तो निरीक्षक का आगमन भयोत्पादक न होगा, जैसा कि वर्तमान समय में प्रायः होता है। मैं आलोचना की अवहेलना नहीं कर रहा हूँ। बिना इसके अध्यापकगण सुधार नहीं कर सकते। पर मैं तो इस तथ्य पर ज़ोर देने की चेष्टा कर रहा हूँ कि आलोचना तो कार्य के अर्द्ध भाग से भी कम है और यह कि रचनात्मक पक्ष के बिना आलोचना का अधिकांश मूल्य नष्ट हो जाता है।

इस सम्बन्ध में भी यह बताना अनुचित न होगा कि निरीक्षक के लिए अच्छे काम की प्रशंसा करना उतना ही आवश्यक है जितना असंतोषजनक कार्य के साथ दोष निकालना। वित्तीय सहायता-प्रणाली का प्रभाव, विशेषरूप से जब विभाग के पास पैसे की कमी होती है, यह होता है कि निरीक्षकगण उस हालत में जब कि उन्हें आर्थिक सहायता मे वृद्धि करनी होती है, रोज़नामचे में अथवा अध्यापकों के कार्य के विषय में किसी प्रकार के प्रोत्साहित करनेवाले विवरण लिखने में बड़े सावधान

हो जाते हैं। परन्तु एक निरीक्षक जो उस समय प्रशंसा नहीं करता, जब प्रशंसा करना उचित हो, तो वह अपने काम में उतना ही असफल हो रहा होगा जितना कि उस समय जब कि आलोचना करना उचित हो। आलोचना न करनेवाला निरीक्षक असफल हो सकता है।

चौथी बात यह है कि उन व्यक्तियों को, जो इस महत्त्वपूर्ण पद पर आसीन हों, अनिवार्य रूप से सहृदय होना चाहिए। सच तो यह है कि अध्यापक के कार्य अथवा पाठशाला के कार्य का सार निकालना उस समय तक असम्भव है जब तक कि शिक्षक कक्षा तथा पाठशाला के साथ सहृदयता की प्रवृत्ति से काम नहीं करता। इसका मतलब यह नहीं कि निरीक्षक चीज़ों को टाल दे अथवा दोषों की ओर से अपनी आंखें मूंद ले। यह सच्ची सहानुभूति नहीं। पर उसे समस्त विचारों को ध्यान में रखने, प्रधान अध्यापक एवं अध्यापकों के प्रति मित्रवत् रुख रखने, जो कुछ ठीक से किया गया है उसकी सराहना करने तथा जो कुछ ठीक से नहीं किया गया है उसकी ओर मित्रवत् ढंग से उनका ध्यान ले जाने के लिए तैयार रहना चाहिए। कभी-कभी ऐसे निरीक्षक देखने में आते हैं जो इस सुप्रसिद्ध तथ्य को समझने में असमर्थ दिखाई देते हैं कि कक्षाओं में प्रति वर्ष बड़ी विभिन्नता आ जाती है। एक साल पाठशाला के पास पांचवीं कक्षा अच्छी होगी और दूसरे साल किसी-न-किसी तरह से पाठशाला में निकम्मे विद्यार्थी आ जायँगे। स्वभावतः बादवाले समुदाय के विद्यार्थियों को औसत रूप से उस स्तर तक लाना, जहां उन्हें होना चाहिए, सर्वोत्कृष्ट अध्यापकों के लिए एक असाध्य कार्य है। यह चीज़, जैसा मैं कहता हूँ, निरीक्षकों को छोड़कर बाक़ी सभी लोगों को अच्छी तरह से मालूम हैं। उनके पास कक्षा के लिए एक स्तर होता है और यदि उन्हें स्तर से तनिक भी हेर-फेर दिखाई देता है तो वे अध्यापक को दोषी ठहरा देते हैं। एक अध्यापक दस वर्ष या उससे अधिक समय तक एक कक्षा को संतोषजनक ढंग से पढ़ा लेता है और तब अचानक एक वर्ष उसका कार्य असंतोष-जनक बन जाता है। कोई भी इस बात की कल्पना कर सकता है कि यह बात मान ली जायगी कि अध्यापक का काम वही रहा, पर हाँ, उस वर्ष विशेष में उसको कहीं अधिक कठिन कक्षा के साथ निबटना पड़ा। चाहे कुछ भी हो, ऐसे मामलों में निरीक्षक को अच्छी सलाह तभी मिल सकती है जब कि प्रधान अध्यापक के निर्णय द्वारा उसका पथ-प्रदर्शन हो और कक्षा के बुद्धि-चापल्य का उत्तरदायित्व सदैव बरे शिक्षण के ऊपर

डाल दिया जाय। अध्यापक का कोई दोष न होते हुए भी कक्षाओं में अत्यधिक विभिन्नता आ जाने की सम्भावना है।

फिर वह अध्यापक आता है जो घबरा जाता है और जिसके लिए निरीक्षक का आगमन एक बुरा स्वप्न होता है। वह अपने साथ न्याय नहीं कर पाता। वह निरीक्षक के सामने ऐसे पढ़ाता है, जैसे वह अकेले में कभी न पढ़ायेगा। वह अपनी सारी बुराइयों को दिखा देता है और उसकी अच्छाइयां छिपी ही रह जाती हैं। यदि निरीक्षक स्वभाव से सहृदय है तो वह इस प्रकार के अध्यापक की घबराहट को दूर कर देने में समर्थ होगा और ऐसा करने के लिए वह सचमुच उसके सामने से हट जायगा तथा अध्यापक के कार्य के ऊपर अन्तिम निर्णय करने के पूर्व वह हर हालत में प्रधान अध्यापक का मन ले लेगा।

प्रधान अध्यापक एवं अध्यापकों के प्रति अपने व्यवहार में निरीक्षक द्वारा सहृदयता की प्रवृत्ति अन्य उपायों से भी दिखाई जा सकती है। अध्यापकों के प्रति अपने व्यवहार में अक्खड़पना दिखाने तथा अपशब्दों का प्रयोग करने से निरीक्षक को न तो कोई लाभ होता है और न उसका काम ही कुछ अधिक प्रभावशाली हो जाता है। यह एक शाश्वत नियम होना चाहिए और अच्छे निरीक्षकों का होता ही है कि अध्यापकों के साथ अनिवार्य रूप मे नम्रता का व्यवहार किया जाय। यदि झिड़कियाँ अथवा चेतावनियाँ देनी हों तो निश्चय ही यह कार्य कक्षा के सामने न किया जाना चाहिए। यह प्रत्यक्ष भले ही जान पड़े, पर यह एक ऐसी चीज़ है जो कभी-कभी भुला दी जाती है। निरीक्षकों को चाहिए कि वे केवल प्रधान अध्यापक से ही बातचीत न करें, बल्कि निरीक्षण समाप्त हो जाने के बाद अध्यापकों से व्यक्तिगत रूप में उनके काम के विषय में बातचीत करने का अभ्यास डालें। निश्चय ही इस तरह से कुछ समय तो लगेगा, पर इस प्रकार की वार्ताओं से अध्यापकों को बड़ा लाभ होगा और अध्यापकों एवं पाठशालाओं के स्तर में सुधार करने में वे अवश्य बहुत सहायक होंगी। इस प्रकार के व्यक्तिगत वार्तालाप से निरीक्षक को शिक्षक के कार्य का निर्णय करने में बड़ी सहायता मिलेगी, क्योंकि रोज़नामचों में तथा अध्यापको के प्रमाण-पत्रों पर केवल विवरण लिख देना पर्याप्त नहीं।

निरीक्षण की विधियाँ

कक्षा का निरीक्षण करने में निरीक्षक को सदैव इस बात की चेष्टा करनी

चाहिए कि कक्षा तथा अध्यापक शान्तिपूर्वक अपना काम करते रहें। पहले तो शिक्षक को कक्षा का अध्यापन करने देना चाहिए। किन्तु जैसा पहले बताया जा चुका है, निरीक्षक को बड़े ध्यान से अध्यापक को देखते रहना चाहिए और इस बात का पता लगा लेना चाहिए कि कहीं वह धैर्य खो बैठनेवाला व्यक्ति तो नहीं है। कुछ शिक्षकों को निरीक्षक की उपस्थिति में पहले से भी अच्छे और उच्चतर प्रयत्न करने के लिए प्रोत्साहन मिलता है। कुछ अध्यापक ऐसे होते हैं कि निरीक्षक की उपस्थिति में उनकी वही दशा हो जाती है जो सर्प की उपस्थिति में एक खरगोश की हो जाती है। ऐसे मामलों में प्रधान अध्यापक से कक्षा को पढ़ा देने के लिए कहा जा सकता है। तब फिर निरीक्षक को भी सदैव स्वयं कक्षा लेनी चाहिए। उसको इस बात के लिए सावधान रहना चाहिए कि (पढ़ाते समय) उसका ध्यान पूरी कक्षा में बँटा हो और वह केवल थोड़े से ऐसे विद्यार्थियों को इधर-उधर से छाँट न ले जो अच्छे भी हो सकते हैं और बुरे भी। उसे यह बात भी बड़े ध्यान से देखते रहना चाहिए कि कक्षा पढ़ाते समय अध्यापक अपने अच्छे विद्यार्थियों के ऊपर ही केन्द्रीभूत न हो जाय।

कक्षाओं के लिखित कार्य की जाँच की जानी चाहिए अर्थात् निरीक्षक को किये गये लिखित कार्य के ऊपर एक निगाह डाल लेनी चाहिए। साधारणतः निरीक्षण के समय लिखित परीक्षाएँ देना बुद्धिमानी का काम नहीं। यही नहीं कि वह समय इसके लिए ठीक नहीं होता, वरन् एक बात यह भी है कि निरीक्षण को परीक्षा न बना दिया जाना चाहिए। कभी-कभी यह एक अच्छी योजना होती है कि एक विभाग की समस्त कक्षाओं की एक ही विषय की सारी अभ्यास-पुस्तिकाएँ एक कमरे में एकत्र कर दी जायँ, ताकि सब-की-सब एक ही समय में देखी जा सकें। वे कक्षा के हिसाब से अलग-अलग रख दी जानी चाहिए। इस तरह से कभी-कभी कार्य के स्तर तथा क्या किया जा रहा है, इस सम्बन्ध में श्रेष्ठतर सामान्य विचार प्राप्त करना सम्भव हो जाता है। यद्यपि मामूली तौर पर प्रत्येक पुस्तिका को देखना तो सम्भव नहीं, पर चुनाव के समय यथासम्भव ईमानदारी बर्ती जानी चाहिए और निरीक्षक को इस बात के लिए सावधान रहना चाहिए कि वह अपर्याप्त तत्त्वों के आधार पर अनुकूल अथवा प्रतिकूल निष्कर्षों पर न पहुँचे।

यह बात सदैव स्मरण रहनी चाहिए कि कुछ ही मिनटों में साल भर के काम का

सार निकालना बड़ा कठिन होता है। यह काम एक छोटी-सी परीक्षा कराकर और यदि परीक्षाफल खराब हो तो यह मान लेने से कि काम खराब रहा है, नहीं किया जा सकता। कक्षा की तिमाही परीक्षा के रिकार्ड की सदैव जांच कर लो जानी चाहिए और अध्यापकों को कक्षा की उन परीक्षाओं की उत्तर-पुस्तिकाएँ रखने का आदेश दे दिया जाना चाहिए जो उस वर्ष होनेवाले निरीक्षण के पहले हुई हों। निरीक्षक को ये चीजें ज़रूर देखनी चाहिए। कक्षा का निरीक्षण करते समय उसे कक्षा के उन्नति-विवरण भी अपने साथ रखने चाहिए। उसे अध्यापक से निश्चित रूप से यह बात मालूम कर लेनी चाहिए कि कौन-से लड़के सबसे अच्छे हैं और कौन-से सबसे बुरे। बहुधा निरीक्षक अचानक विभिन्न बालकों को चुन लेने मे विश्वास करता है। वह सौभाग्यशाली हो सकता है अथवा नही, पर दोनो ही तरह से उसके ऊपर अनुचित प्रभाव पड़ता है। प्रश्नों के उत्तर में जिस ढग से हाथ उठाये जाते हैं उससे प्रभावित होने में विश्वास रखना भी बुद्धिमानी की बात नहीं। इसका मतलब कुछ हो सकता है और नहीं भी हो सकता है, परन्तु यदि निरीक्षक रिकार्डों से तथा अध्यापक से इस बात की जानकारी प्राप्त करता है कि कौन-से बालक कमजोर हैं और कौन-से अच्छे है तो वह कक्षा का मूल्याकन कहीं अधिक ईमानदारी के साथ कर सकेगा।

इस सम्बन्ध में निरीक्षक को स्मरण रखना चाहिए कि वह सदैव प्रधान अध्यापक की सम्मति लेता रहे और कक्षा का मूल्यांकन उससे प्राप्त करे। कक्षा के विषय में जानने के लिए निरीक्षक को सम्भवत: जितना अवसर प्राप्त हो सकता है, प्रधान अध्यापक को उसकी अपेक्षा कहीं अधिक अवसर प्राप्त हो जाता है।

विज्ञान और चित्र-विद्या जैसे व्यावहारिक कार्यवाले विषयों में निरीक्षक को व्यावहारिक कार्य सदैव विद्यार्थियों से करवाना चाहिए। विषय के सिद्धान्तो के ऊपर प्रश्न पूछने की अपेक्षा यह परीक्षा कहीं ज्यादा अच्छी है। उसे मन में पाठ्य-क्रम का ध्यान रखना चाहिए और ऐसी चीज़ों की आशा न करनी चाहिए जो असम्भव हों। जब एक कक्षा को दो साल में पूरा भारतीय और अंगरेज़ी इतिहास खतम करना है तब इस बात की शिकायत करना कि विद्यार्थियों की अभ्यास-पुस्तिकाओं में हर चार या पांच पृष्ठ के बाद ऐतिहासिक मानचित्र नहीं बने हैं, तर्कयुक्त नहीं है।

निरीक्षक का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए—पाठशाला की प्रवृत्ति और पाठशाला

की केवल शिक्षा-सम्बन्धी दशा को आँकना। अध्यापक-मंडल की बैठकों एवं क्रियाओं के रिकार्ड विभिन्न प्रकार की अतिरिक्त पाठशाला-क्रियाओं की उपस्थिति एवं अनुपस्थिति यह दिखाने में सहायक होंगी। शिक्षा-सम्बन्धी विधियों अथवा संगठन में किसी प्रकार के प्रायोगिक कार्य की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति निश्चित रूप से पाठशाला की प्रवृत्ति का प्रदर्शक सिद्धान्त होगा। खेल के मैदान में अनुशासन और पाठशाला की शारीरिक क्रियाओं का संगठन भी पाठशाला के कार्य के अधिक प्रभावशाली लक्षण हैं।

निरीक्षक को हमेशा इस बात के लिए सावधान रहना चाहिए कि उसके निरीक्षण के लिए किसी तरह का दिखावा न किया जाय। कभी-कभी पाठशालाएँ निरीक्षक के आगमन के अवसर पर दिखावा करना पसन्द करती हैं। इस चीज़ को कड़ाई के साथ निरुत्साहित करना चाहिए। इसी कारण यदा-कदा पहले से सूचना दिये बिना पाठशाला का निरीक्षण करना बड़ी अच्छी चीज़ है, पर यह काम मन में सन्देहयुक्त भावना भरकर न किया जाना चाहिए। यह निरीक्षण पूर्णरूप से मित्रवत् ढंग से, एक प्रकार से विधिरहित रूप में होना चाहिए। यदि निरीक्षक का रुख ठीक है तो पाठशालाएँ उसके इस प्रकार के निरीक्षणों का स्वागत करेंगी और साथ ही उनसे लाभ उठायेंगी। निश्चय ही वे निरीक्षक को पाठशाला के साधारण काम के सम्बन्ध में विधिपूर्वक होनेवाले निरीक्षण की अपेक्षा अधिक अच्छा विचार (idea) देंगी।

यदि पिता-शिक्षक-परिषद् (Parent-teacher Association) हों तो निरीक्षक के लिए सदा यह अच्छी चीज है कि वह उनसे मिलता रहे। निरीक्षक उनके साथ पाठशाला की कठिनाइयों एवं समस्याओं की विवेचना कर सकता है, ऐसे उपाय सुझा सकता है जो उसके विचार में अपनाये जाने चाहिए और इस तरह वह पाठशाला तथा उन सभी लोगों के लिए, जो उसमें (पाठशाला) रुचि रखते हों, बहुत सहायक हो सकता है।

निरीक्षक को, यदि सम्भव हो तो, प्रबन्धकारिणी समिति के साथ भी भेंट करनी चाहिए। पाठशाला में रजिस्टर में दर्ज किये जानेवाले कार्य का निरीक्षण सावधानी के साथ करना होता है और प्रायः कुछ विषय ऐसे निकल ही आते हैं जिनको प्रबन्धकारिणी समिति के ध्यान में लाना ही पड़ता है, जिनको वे ठीक कर सकती हैं अथवा सुधार सकती हैं। यहाँ पर फिर निरीक्षक की सहायता तथा सुझाव सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं, और ऐसे विषयों के लिए लिखा-पढ़ी द्वारा

व्यवहार करने की अपेक्षा व्यक्तिगत रूप में समिति से भेंट कर लेना कहीं अधिक सन्तोषजनक होता है। यह एक ऐसा तथ्य है जिसका ध्यान निरीक्षकों को सर्वदा रहना चाहिए। व्यक्तिगत सम्पर्क का बड़ा प्रभाव पड़ता है और उसके लिए जिस अतिरिक्त समय की आवश्यकता होती है वह अच्छी तरह से सार्थक होता है।

निरीक्षक तथा उसके कार्य के विषय में जो कुछ कहा जा चुका है, उससे यह स्पष्ट हो जायगा कि निरीक्षक को वर्तमान के साथ चलना चाहिए। फिर प्रधान अध्यापक के लिए शैक्षिक जगत् में क्या हो रहा है उसके तथा नई विधियों एवं प्रयोगों के साथ अपना सम्पर्क बनाये रखने की आवश्यकता के विषय में जो कुछ कहा गया है, वह सब निरीक्षक के लिए और भी अधिक ज़ोर के साथ लागू होता है। निरीक्षकों से इस बात का बड़ा खतरा रहता है कि वे अपने दैनिक काम में तथा संख्याओं और हिसाब-किताब में इतने व्यस्त हो जाते हैं कि वे स्वाध्ययन एवं नवीनतम विकासों के साथ अपने सम्पर्कों को जारी रखने के लिए समय ही नहीं देते। शिक्षा के दृष्टिकोण से निरीक्षक को अपने ज़िले अथवा डिवीजन का सबसे अधिक क्रियाशील व्यक्ति होना चाहिए। जब तक वह अपने को शैक्षिक जगत् में होनेवाली उन्नति एव तत्सम्बन्धी आधुनिक ज्ञान के सम्पर्क में रखने के लिए विशेष प्रयास नहीं करता तब तक वह ऐसा (क्रियाशील) नही हो सकता। उसे केवल अपने ही लिए ऐसा नहीं करना है, वरन् उसको जो कुछ प्राप्त होता है उसे अपने प्रधान अध्यापकों एवं अध्यापकों तक पहुँचाना होता है। वार्षिक सम्मेलन तो बहुधा होते रहते हैं, परन्तु नियम के अनुसार वे ऐसे अवसर नहीं होते जबकि उनसे शिक्षा-सम्बन्धी वह प्रेरणा मिल सके जो उनसे मिलनी चाहिए। कुछ स्थानों में शैक्षिक सप्ताह मनाये जाते हैं, जब देश के अन्य भागों से वक्तागण आमंत्रित किये जाते हैं और प्रधान अध्यापक तथा अध्यापकगण कुछ ऐसी बातें सीख लेते हैं जो वास्तव में सीखने योग्य और साथ ही उनके लिए बड़ी सहायक होती हैं। निरीक्षकों द्वारा इस तरह का काम और भी अधिक मात्रा में किया जा सकता है। अलग-अलग डिवीज़नों के सम्मेलन बुलाने की कोई आवश्यकता नहीं। ज़िला-सम्मेलन वर्ष में कई बार आयोजित हो सकते हैं, जिनमें विधियों एवं कार्य की विवेचना की जा सके और ऐसे वक्ता बुलाये जा सकें जिनके पास देने के लिए वास्तव में कुछ हो।

अध्याय १५

माता-पिता तथा पाठशाला

प्रधान अध्यापक तथा अध्यापक-मंडल का यह उद्देश्य होना चाहिए कि वे अपने विद्यार्थियों के माता-पिता के साथ यथासम्भव निकट-से-निकट सम्बन्ध की स्थापना करें तथा उसका प्रतिपादन करें। बच्चों का तो कहना ही क्या है, इससे माता-पिता और शिक्षक दोनों को भी लाभ होगा। माता-पिता और अध्यापक दोनों बच्चों के सम्बन्ध में होनेवाले एक-दूसरे के ज्ञान को पूर्ण कर सकते हैं और बच्चे की देखभाल में सहयोग हो सकता है। यह सहयोग जितना ही अधिक होगा, पाठशाला तथा माता-पिता दोनों को बच्चों के प्रति अपने उत्तरदायित्व को सचाई के साथ निभाने के लिए उतना ही अधिक अवसर प्राप्त हो सकेगा। ऐसे अनेक उपाय हैं जिनसे पाठशाला तथा माता-पिता के बीच इस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित हो सकता है और एक बार स्थापित हो जाने के बाद दृढ़ एवं विकसित किया जा सकता है।

पितृ-दिवस

वर्ष में एक दिन समस्त विद्यार्थियों के माता-पिता पाठशाला में विशेषरूप से

निमंत्रित किये जाते हैं और उनके मनोरंजन के लिए तथा उन्हें यह दिखाने के लिए कि पाठशाला में क्या हो रहा है, विशेष आयोजन किये जाते हैं। यह एक उत्तम योजना है कि एक या दो कमरों में सजाकर बच्चों द्वारा किये गये कार्य की प्रदर्शिनी रखी जाय जहाँ समस्त विषयों में सारी कक्षाओं से सर्वोत्कृष्ट कार्य के नमूने लेकर रखे गये हों। यदि कोई हाथ का काम या व्यावहारिक कार्य सिखाये जाते हैं तो उत्पादन प्रदर्शनी की रुचि को और बढ़ा देता है। यदि छोटी कक्षाओं द्वारा योजनाएँ पूरी की जा रही हैं, तो सर्वोत्कृष्ट परीक्षाफल दिखाये जा सकते हैं। किन्तु साधारण विषयों में ड्राइंग, मानचित्र, नक़शों, नमूनों, हस्तलेख, खाकों, पत्रिकाओं के साथ प्रदर्शनी माता-पिता और बच्चे दोनों के लिए अत्यधिक रुचिकर बनाई जा सकती है।

पितृ-दिवस पर पाठशाला माता-पिता के हाथ में छोड़ दी जाती है और विद्यार्थियों से यह आशा की जाती है कि वे अपने माता-पिता को पाठशाला दिखाने के लिए सब तरफ़ ले जायँ और साल भर के अन्दर जो भी नई चीज़ की जा चुकी हों अथवा आरम्भ हुई हों अथवा कोई भी ऐसी चीज, जिसमें उनकी विशेष रुचि हो, उसकी ओर उन्हें संकेत करें। तीसरे पहर एक विशेष कार्यक्रम प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसमें बालचर अथवा गर्ल गाइड्स, रेडक्रॉस समितियों आदि के प्रदर्शन सम्मिलित हों। संध्या समय रंगमंच पर एक नाटक खेला जा सकता है। ग्राम्य क्षेत्रों में इस अवसर का प्रयोग ग्राम-उत्थान-कार्य के किसी अंग के सम्बन्ध में कुछ दिखाने के लिए किया जा सकता है। माता-पिता को अपने बच्चों तथा अध्यापकों के साथ भोजन करने के लिए निमंत्रित किया जा सकता है। कभी-कभी यह सम्भव होता है कि वार्षिक पारितोषिक-वितरण, जहाँ कहीं भी होता हो, उसी दिन कर दिया जाता है।

प्रधान अध्यापक पितृ-दिवस के अवसर पर माता-पिता के समक्ष पाठशाला-कार्य अथवा संगठन की उन नई योजनाओं का, जो पाठशाला का आदर्श हों, स्पष्टीकरण कर सकता है; पाठशाला तथा माता-पिता के बीच सम्भावित सहयोग के मार्ग निर्धारित कर सकता है। पाठशाला के समक्ष रहनेवाली कठिनाइयों को समझा सकता है और सामान्य रूप से माता-पिता को अपना विश्वस्त बना सकता है। वह उस अवसर का प्रयोग यथासम्भव अधिक-से-अधिक माता-पिताओं से भेंट करने तथा उनके विषय में और अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए भी कर सकता है। उसे

अपने को उत्सव के किसी संगठन-कार्य से मुक्त रखना चाहिए ताकि उसके पास माता-पिताओं से मिलने का समय बना रहे।

यह पितृ-दिवस सम्पूर्ण पाठशाला के लिए होता है और एक सालाना जलसा होता है। यदि पाठशाला भवनों में विभाजित हो, जैसा कि सातवें अध्याय में सुझाया जा चुका है, तो प्रत्येक भवन के लिए वर्ष में एक बार अपना-अपना पितृ-दिवस मनाना भी बड़ा लाभदायक होता है। उसी तरह की प्रदर्शनी तथा कार्यक्रम का आयोजन किया जा सकता है, पर उसके लिए केवल उसी भवन विशेष के माता-पिता आमंत्रित किये जायँगे जिनका वह दिन होगा। उस दिन सम्बन्धित भवन के सदस्यों को आज़ादी दे दी जाती है और उन्हें अपने माता-पिता का मन-बहलाव करने तथा उन्हें पाठशाला और पाठशाला में जो कुछ हो रहा है वह दिखाने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है। भवन-शिक्षक इस अवसर पर माता-पिता से भेंट कर सकते हैं और उनके साथ पाठशाला, छात्रावास का प्रबन्ध, शिक्षण की विधियों आदि से सम्बन्धित विषयों पर बातचीत कर सकते हैं। उन्हें विद्यार्थियों के ऊपर व्यक्तिगत रूप से उनके माता-पिता के साथ विवेचना करने के लिए भी सुअवसर प्राप्त हो जायगा। यदि ये भवन-पितृ-दिवस मनाये जाते हैं तो वे सब-के-सब वर्ष के भीतर मना लिये जाने चाहिए और पाठशाला के वार्षिक पितृ-दिवस के बहुत निकट न होने चाहिए।

पितृ-शिक्षक परिषद्

पितृ-शिक्षक परिषद् एक ऐसी परिषद् है जिसमें सभी अध्यापकगण तथा जितने भी माता-पिता चाहें शामिल हो सकते हैं। महीने में एक बार नियमित रूप से उसकी बैठक होती है और प्रति वर्ष अन्य परिषदों की तरह उसके साधारण अधिकारियों की नियुक्ति होती है। समिति तथा अध्यक्ष अधिकारियों में शिक्षकों तथा माता-पिता दोनों के प्रतिनिधि होने चाहिए और माता-पिताओं में से किसी एक के लिए सभापति के पद पर आसीन होना और उत्तम है।

कार्यक्रम स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार बदलते रहेंगे, परन्तु प्रत्येक बैठक में शिक्षा-सम्बन्धी रुचि एवं महत्त्व के किसी-न-किसी विषय पर भाषण अथवा वाद-विवाद होना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो, पाठशाला तथा स्थानीय स्थिति के साथ इसका सम्बन्ध होना चाहिए। इन बैठकों में प्रधान अध्यापक तथा अध्यापकगण

अपने उन नये विचारों को परीक्षा तथा विवेचना के लिए प्रस्तुत कर सकते हैं जो उनके पास हैं और जिन्हें वे पाठशाला से आरम्भ करना चाहते हैं। इस प्रकार वे माता-पिताओं का सहयोग और हर हालत में अपने विचारों की मूल्यवान् और प्रायः ज्ञानवर्द्धक आलोचना प्राप्त कर सकते हैं।

इस प्रकार की परिषद् पाठशाला तथा गृह के बीच सहयोग स्थापित करने में अत्यधिक सहायता पहुँचा सकती है। उन स्थानों में जहाँ माता-पिता शिक्षित हों, पाठशाला तथा माता-पिता दोनों के लिए परिषदें बड़ी मूल्यवान् हो सकती हैं। ग्राम्य क्षेत्रों में वे शिक्षा देनेवाला एक बड़ा महत्त्वपूर्ण कारण बन सकती हैं।

प्रत्येक विद्यार्थी के माता-पिता से अध्यापक-मंडल के कम-से-कम दो सदस्यों की जान-पहचान होनी चाहिए; एक तो विद्यार्थी का कक्षा-अध्यापक और दूसरा उस भवन का भवन-शिक्षक, जिसका विद्यार्थी सदस्य है। निश्चय ही प्रधान अध्यापक इस बात की अनिवार्य रूप से चेष्टा करेगा कि वह अधिक-से-अधिक जितने सम्भव हों, उतने माता-पिताओं से जान-पहचान पैदा करे, परन्तु प्रत्येक कक्षा-अध्यापक का यह कर्तव्य है कि वह अपने सभी विद्यार्थियों के माता-पिताओं से जान-पहचान करे, और प्रत्येक भवन-शिक्षक का कर्तव्य है कि वह अपने भवन के सभी विद्यार्थियों के सभी माता-पिताओं के साथ परिचय प्राप्त करे। इसके लाभ प्रत्यक्ष हैं। अपने विद्यार्थियों के माता-पिताओं के साथ निकट सम्पर्क की स्थापना करके अध्यापक घर का सहयोग प्राप्त कर सकता है और इस प्रकार अपने काम को ज़्यादा आसान बना सकता है। बच्चे के जीवन में दो महत्तम प्रभावों के प्रतिनिधियों के बीच मित्रता स्थापित हो जाने का परिणाम अच्छा ही होगा। अध्यापक विद्यार्थी को ज़्यादा अच्छी तरह से समझ जायगा और पिता को यह ज़्यादा अच्छी तरह से मालूम हो जायगा कि सावधानी अथवा दबाव की ज़रूरत कहाँ है। पाठशाला और घर के अलग-अलग दिशाओं में खींचा-तानी करने के मौक़े बहुत कुछ घट जायँगे। माता-पिता पाठशाला में तमाम ऐसी चीज़ों के कारण समझ जायँगे जो अन्यथा वे नहीं समझ सकते थे और जिन्हें तर्कहीन समझते थे, विशेषरूप से धन व्यय करानेवाली मदें।

गृह-कार्य

घर से आनेवाले विद्यार्थियों द्वारा किये जानेवाले गृह-कार्य के सम्बन्ध में

माता-पिता का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। यदि ऐसी पाठशाला है जिसमें छात्रावास में रहनेवाले तथा घर से आनेवाले दोनों प्रकार के विद्यार्थी हैं तो जहाँ सम्भव हो वहाँ माता-पिता के ऊपर इस बात के लिए ज़ोर देना चाहिए कि वे अपने बच्चों को निरीक्षित गृह-कार्य के घटे में भेजें। यदि यह सम्भव न हो तो कक्षा-अध्यापक अथवा भवन-शिक्षक को वर्ष के आरम्भ में यह बात माता-पिताओं को समझा देनी चाहिए कि विद्यार्थियों से प्रत्येक विषय के गृह-कार्य के ऊपर लगभग कितना समय व्यय करने की आशा की जाती है। यदि यह एक छोटे-से कार्ड पर छपा हो या लिखा हो और पिता को दे दिया जाय तो पिता के पास यह देखने का ज्यादा मौक़ा रहेगा कि बच्चा अगले दिन के पाठों को तैयार करने के लिए काम पर्याप्त मात्रा में कर लेता है। अध्यापक पिता को उन दशाओं के सम्बन्ध में भी परामर्श दे सकता है जिनके अन्तर्गत रहकर बच्चे को अपना गृह-कार्य करना चाहिए—प्रकाश तथा कार्य करने का समय। वह पिता के मन में यह बात जमाने की भी चेष्टा कर सकता है कि जब बच्चा काम कर रहा हो उस समय उसके लिए शान्तिमय वातावरण का प्रबन्ध किया जाय।

प्रबन्धक-मंडल

पाठशाला के प्रबन्धक-मंडल अथवा शासक-संस्था में माता-पिता का प्रतिनिधित्व होना सर्वथा विचारणीय है। ऐसा होने से पाठशाला में माता-पिता के द्वारा अधिक रुचि का लिया जाना निश्चित हो जाता है। पितृ-शिक्षक-परिषद् के अधिकारी, जो पितृगण ही होते हैं, पाठशाला के प्रबन्धक-मंडल अथवा समिति के सदस्य बनाये जा सकते हैं अथवा उस संगठन का प्रयोग पाठशाला की शासक-संस्था के लिए निर्धारित संस्था में पितृगण का चुनाव करने के लिए किया जा सकता है।

विवरण (Reports)

पाठशाला की ओर से तिमाही में एक बार माता-पिता के पास विवरण भेजे जाने चाहिए। जो विवरण भेजा जाता है उसमें सम्भवतः अधिक-से-अधिक जितनी

बात आ सकती हों, भर दी जानी चाहिए, अर्थात् उसके द्वारा पिता को अपने बच्चे के विकास के विषय में यथासम्भव अधिक-से-अधिक जितनी सूचना दी जा सके, उतना ही अच्छा है। यह सूचना केवल उसके मानसिक विकास के विषय में तथा पाठशाला में विभिन्न विषयों में उसकी स्थिति के बारे में न होनी चाहिए, बल्कि उसका सम्बन्ध उसके शारीरिक, सामाजिक तथा नैतिक विकास के साथ भी होना चाहिए। बच्चे के जीवन का प्रत्येक अंग, जिसके ऊपर पाठशाला अपना प्रभाव डालती है और जिसके साथ उसका कोई भी सम्बन्ध रहता है, उसका हवाला इस विवरण में आ जाना चाहिए। तब पिता इस बात का पूर्ण आलाकन प्राप्त करने में समर्थ हो जायगा कि उसका बच्चा किस तरह से उन्नति कर रहा है। इस प्रकार का विवरण उस विचार के शोधक के रूप में भी कार्य करता है जिसके अनुसार यह समझा जाता है कि पाठशाला जो कुछ कर रही है उसकी एकमात्र परीक्षा है—परीक्षा में अंक प्राप्त करने की योग्यता, और यही वह एक चीज़ है जिसके विकास के लिए पाठशाला चेष्टा करती है। इस प्रकार के विवरण-फ़ार्म का एक नमूना अध्याय के अन्त में दिया गया है।

जब यह तिमाही विवरण भेजा जाता है उस समय यह भी एक उत्तम योजना है कि उसके साथ एक ऐसा फ़ॉर्म भेज दिया जाय जो पिता को भरना हो। इससे पाठशाला को ऐसी सूचना प्राप्त हो जायगी, जिससे उसको अपने कार्य में सहायता मिलेगी। पिता के द्वारा इस तरह भेजी हुई सूचना से उन अध्यापकों को सहायता मिलेगा जिन्हें बच्चे से निबटना है और साथ ही वे भी उसकी मदद से पिता को घर में अपने बच्चे के प्रति होनेवाले व्यवहार के सम्बन्ध में सहायता प्रदान कर सकेंगे। इस तरह की कोई भी चीज़ जो अध्यापकों को उनकी अध्यक्षता में रहनेवाले बच्चों की परिस्थितियों को व्यक्तिगत रूप से समझने में सहायता देती है, सबसे अधिक मूल्यवान् होगी।

वार्षिक डाक्टरी परीक्षा के बाद यदि डाक्टर की ओर से कोई कार्रवाई करने की सिफ़ारिश की गई हो तो माता-पिता को सूचना दे देनी चाहिए कि उन्हें क्या करना है और कक्षा-अध्यापकों अथवा भवन-शिक्षकों को चाहिए कि वे अपने बच्चों के माता-पिता से डाक्टर की सिफ़ारिशों को पूर्ण करने के लिए आग्रह करने की चेष्टा करें। जब तक यह नहीं किया जाता तब तक वार्षिक डाक्टरी परीक्षा से कोई ज्यादा लाभ न होगा।

जैसा पहले बताया जा चुका है, जब कभी प्रधान अध्यापक को ऐसा जान पड़े कि विद्यार्थी को कठोर दंड देना आवश्यक है तो उसे इस बात की सूचना पिता के पास भेज देनी चाहिए। पिता के पास अपराध और दंड की सूचना के साथ-साथ ऐसे कोई भी विवरण, जिनका लिखना प्रधान अध्यापक के विचार से आवश्यक हो, भेज दिये जाने चाहिए।

कभी-कभी एक ऐसी बात उठ खड़ी होती है जिसके विषय में अत्यधिक मतभेद हो जाता है; जैसे तिमाही विवरण गुप्त होना चाहिए या नहीं—यह बात। बच्चे को विवरण देखना चाहिए या नहीं? प्रायः भारतवर्ष में इस बात की सम्भावना नहीं कि वह (बच्चा) उसे न देखे। सब कुछ देखते हुए प्रायः यह ज्यादा अच्छा है कि विवरण लिखते समय पहले से ही यह बात मान ली जाय कि बच्चा और पिता दोनों उसको देखने जा रहे हैं। यदि कोई ऐसी चीज़ है जिसको प्रधान अध्यापक पिता को तो बता देना चाहता है पर बच्चे को उसके विषय में नहीं मालूम होने देना चाहता, तो वह पिता के नाम एक निजी पत्र भेज सकता है। पता लगा है कि प्रधान अध्यापक के लिए यह एक उत्तम योजना है कि वह विद्यार्थियों को अपने पास आने और अपनी रिपोर्टों के विषय में उससे मिलने तथा उसके साथ उनकी (रिपोर्टों की) विवेचना करने के लिए आमंत्रित करे। विशेष रूप से बड़े विद्यार्थियों के साथ यह एक बड़ी मूल्यवान् कार्यवाही हो सकती है, और इस प्रकार के वाद-विवाद से बच्चे को विश्वास तथा अपनी उन्नति में रुचि प्राप्त होती है। प्रधान अध्यापक को चाहिए कि वह इसी तरह से माता-पिता को अपने बच्चों की रिपोर्टों की विवेचना अपने साथ करने के लिए निमंत्रण दे। कहने की आवश्यकता नहीं कि सावधानी के साथ यह देख लिया जाय कि रिपोर्टें वास्तव में माता-पिता के हाथ में पहुँच जाती हैं।

तिमाही विवरण

नाम ..... कक्षा ..... भवन .....

१. नागरिकता			
१. सहयोग		२. उपकारिता	

३. प्रयास तथा परिश्रम
४. सम्मान की भावना
५. नम्रता
६. खिलाड़ीपना
७. सावधानी—
(अ) काम में
(ब) सामान के साथ
८. अन्तःकरण की शुद्धता
९. उत्तरदायित्व सँभालना
१०. आरम्भिक शक्ति

२. स्वास्थ्य-सम्बन्धी आदतें

१. व्यक्तिगत स्वच्छता (नाखून, दाँत, कपड़े आदि)
२. पाख़ानों का प्रयोग और मैदान की सफ़ाई
३. छात्रावास-सम्बन्धी आदतें (सोना, खाना आदि)
४. खेलों में रुचि
५. खेलों की योग्यता
६. ड्रिल में रुचि
७. ड्रिल की योग्यता
८. शारीरिक विकास—
वज़न में वृद्धि
ऊँचाई में वृद्धि
छाती की नाप में वृद्धि
९. आसन

३. कला-कौशल

ड्राइंग
व्यावहारिक कार्य
सैद्धान्तिक कार्य
बिना किसी नाप या यंत्र के तस्वीर खींचना
नमूना
पैमाना
सामान्य रुचि
स्वतंत्र कार्य

दर्ज़ीगीरी
व्यावहारिक कार्य
सैद्धान्तिक कार्य
आरम्भिक शक्ति
सामान्य रुचि
स्वतंत्र कार्य

कपड़ा बुनना
व्यावहारिक कार्य
सामान्य रुचि
आरम्भिक शक्ति
स्वतंत्र कार्य

कृषि
व्यावहारिक कार्य
सैद्धान्तिक कार्य
काम करने की इच्छा
सामान्य रुचि
स्वतंत्र कार्य

बढ़ईगीरी
व्यावहारिक कार्य

सैद्धान्तिक कार्य
आरम्भिक शक्ति
सामान्य रुचि
स्वतंत्र कार्य

४. सामान्य विषय

अंगरेजी
मौखिक
लिखित
सामान्य रुचि
कक्षा के बाहर प्रयोग
स्वतंत्र कार्य

मातृ-भाषा
मौखिक
लिखित
कल्पना का प्रयोग
शब्दकोष और शब्दकोष का प्रयोग करने की योग्यता
सामान्य रुचि
स्वतंत्र कार्य

इतिहास
कठस्थ करनेवाला कार्य
सिद्धान्तों की समझ
ऐतिहासिक तर्क बुद्धि
व्यावहारिक कार्य
सामान्य रुचि
स्वतंत्र कार्य

सामान्य विज्ञान
व्यावहारिक कार्य
सैद्धान्तिक कार्य
आरम्भिक शक्ति

जिल्दसाजी
व्यावहारिक कार्य
सामान्य रुचि —
आरम्भिक शक्ति
स्वतंत्र कार्य —

सामान्य रुचि
स्वतंत्र कार्य

गणितशास्त्र
सामान्य कार्य
विषय की समझ
नियमों को लागू करने की योग्यता
सामान्य रुचि
स्वतंत्र कार्य
मानसिक कार्य

सांस्कृतिक भाषा
मौखिक
लिखित
सामान्य रुचि
स्वतंत्र कार्य

विज्ञान
व्यावहारिक
सैद्धान्तिक
वैज्ञानिक मस्तिष्क एवं प्रवेश का विकास
आरम्भिक शक्ति
सामान्य रुचि
स्वतंत्र कार्य

भूगोल		सिद्धान्तों की समझ	.....
सैद्धान्तिक कार्य	.....	भौगोलिक तर्क-बुद्धि	.....
व्यावहारिक कार्य	.....	स्वतंत्र कार्य	.....

५. उपस्थिति

सम्भावित उपस्थिति..... अनुपस्थिति के मुख्य कारण.....

यथार्थ उपस्थिति..... .....

कितनी बार आने में विलम्ब हुआ..... .....

विद्यार्थी की सामान्य, शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक उन्नति के ऊपर अध्यापक (भवन-शिक्षक) के निरूपण.....

पिता के प्रति प्रधान अध्यापक के निरूपण एवं सिफ़ारिशें.....

.....

A. श्रेष्ठ; A—. अति उत्तम; B+. उत्तम; B. संतोषजनक; B—. काफ़ी संतोषजनक; C. खराब; F. असफलता; स्तर से नीचे; X. यथार्थ में बहुत खराब।

माता-पिता का विवरण (Report)

(छुट्टियों के बाद वापस भेजा जानेवाला)

शारीरिक

स्वास्थ्य; कोई ज्वर आदि ?

क्रिया। किस प्रकार की क्रिया ?

क्या उसने खेल खेले थे ?

साधारणत: वह किस समय सोने जाता था ?

साधारणत: वह किस समय सोकर उठता था ?

सामाजिक

किस तरह के मित्र ?

क्या वह घर पर मदद करता है ?
घर और माता-पिता के प्रति उसका क्या रुख है ?

मानसिक

क्या वह नियमित रूप से कुछ पढ़ता था ?
यदि पढ़ता था तो प्रति दिन कितना ?
वह किस चीज़ का शौक़ीन मालूम पड़ता है ?
क्या उसने पाठशाला-कार्य के अतिरिक्त कोई मानसिक कार्य किया है ?

व्यक्तिगत

ऐसी कौन-सी पसंद और नापसंद है जिनकी ओर इन छुट्टियों में आपका ध्यान गया है ? खाने में, काम में, खेल में अथवा किसी दूसरी चीज़ में ?
क्या वह डरता है ? यदि है तो किससे ?
वह किस चीज़ में मुख्य रूप से रुचि लेता हुआ जान पड़ता है ?
क्या उसकी कोई आदतें हैं ?

पाठशाला-अधिकारियों के प्रति प्रार्थनाएँ और सिफ़ारिशें .....
.....
.....

पिता के प्रति सिफ़ारिशें—

१. देखिये कि वह जल्दी सोता है और जल्दी उठता है।

२. यदि किसी प्रकार सम्भव हो तो देखिये कि वह नियमित रूप से खेल खेलता है, अथवा कोई रुचिकर व्यायाम करता है।

३. वह किसकी संगति में रहता है, इसके लिए सावधान रहिये।

४. घर में सहायता देने के लिए उसे नियमित कार्य दीजिये।

५. यदि सम्भव हो तो उसे अध्ययन करने के लिए शान्त जगह दीजिये।

६. देखिये कि वह प्रति दिन नियमित रूप से कुछ पढ़ता है।

७. पाठशाला के पाठ्य-क्रम से बाहर की पुस्तकों एवं विषयों में उसकी रुचि पैदा करने की चेष्टा करिये।

८. किसी आदत में रुचि पैदा करने में उसकी सहायता करने की चेष्टा करिये

अध्याय १६

धार्मिक शिक्षा

क्या पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा दी जानी चाहिए, इस प्रश्न के सम्बन्ध में अनेक कठिनाइयाँ उठ खड़ी होती हैं। राजकीय पाठशालाओं के मामले में धार्मिक तटस्थता का विषय आ जाता है। धार्मिक तटस्थता का खंडन किये बिना धार्मिक शिक्षा देना किस प्रकार सम्भव हो सकता है! निजी पाठशालाओं के मामले में, जहां विभिन्न धर्मवाले विद्यार्थी पढ़ते हैं वहां अलग-अलग धर्मों को माननेवाले विद्यार्थियों के ऊपर ज़बरदस्ती एक धर्म-विशेष की शिक्षा लादने का अनुचित व्यापार होता है। इसका उत्तर हो सकता है कि यदि माता-पिता अपने बच्चों को वह विशेष प्रकार की शिक्षा प्राप्त नहीं कराना चाहते तो बच्चों को पाठशाला भेजने की ज़रूरत ही नही। जहां एक ही स्थान में कई एक पाठशालाएँ हैं वहां तो यह बात बिलकुल ठीक है, परन्तु जिस क्षेत्र में केवल एक ही पाठशाला है वहां यह मामला तय नही हो पाता। केवल साम्प्रदायिक पाठशालाओं में, जहां लगभग सभी विद्यार्थी एक ही धर्म के अनुयायी होते है, यह प्रश्न सरलता से हल हो जाता है।

कुछ स्थानों में धर्म के स्थान पर नीति-शास्त्र की शिक्षा देकर अथवा शिक्षा देने का प्रयास करके इस कठिनाई को दूर करने की चेष्टा की जाती है। भारत के

अतिरिक्त अन्य देशों में ऐसा प्रयास किया गया है। इस देश में राजकीय विभागों द्वारा इसकी चेष्टा की जाती है। 'नीति-शास्त्र' का एक बहुत बड़ा वर्ग सभी धर्मों में समान रूप से विद्यमान है और यह अनुभव किया जाता है कि किसी के धार्मिक विश्वासों का खंडन किये बिना सुरक्षा के साथ इसकी शिक्षा दी जा सकती है। तो भी सच बात यह है कि यह कार्य कुछ असम्भव-सा ही है और अन्त में निष्फल भी।

वास्तव में धर्म के साथ 'नीति-शास्त्र' को सम्बन्धित किये बिना उसकी (नीति-शास्त्र की) शिक्षा देना असम्भव है। धार्मिक आश्रय वह प्रेरणा-शक्ति प्रदान करता है जो नीति-शास्त्र में जान फूंक देती है। यह धार्मिक आश्रय स्वयं नैतिक व्यक्ति तक को सदैव स्पष्ट नहीं हो पाता, परन्तु उसकी नैतिकता उसके धर्म अथवा उस धार्मिक प्रशिक्षण का, जो उसने अल्पावस्था में प्राप्त किया था, तथा उसके सामाजिक वातावरण के सामान्य धार्मिक मंडल का चेतन अथवा अचेतन परिणाम है। नैतिक व्यक्ति भले ही इसको न समझे अथवा उसकी सत्यता को स्वीकार न करे, परन्तु उसकी नैतिकता अनिवार्य रूप से उसके धर्म-सम्बन्धी एकांगी मानसिक झुकाव द्वारा निर्धारित होगी, चाहे वह झुकाव अचेतन ही क्यों न हो।

परन्तु धर्म केवल नैतिकता का ही उद्गम-स्थान नहीं। इसके फलस्वरूप नैतिकता का अभ्यास करनेवाले व्यक्ति के धार्मिक जीवन में चेतना तथा गहराई भी आ जाती है। धार्मिक कठिनाई एवं सन्देह के बीच से होकर गुज़रने का रास्ता ढूंढ़ निकालने का सबसे पक्का रास्ता है—जिस चीज़ को अपनी चेतना सम्यक् एवं उत्तम निश्चित करे उसी के अनुसार कार्य करना, दूसरे शब्दों में अपने उच्चतम ज्ञान के अनुसार कार्य करना। इसके फलस्वरूप होनेवाले विकास को सम्बन्धित व्यक्ति धर्म अथवा धार्मिक भले ही न माने, परन्तु इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता कि व्यापक रूप में धर्म का विचार करने पर ऐसा ही है और उसके द्वारा उच्चतर ज्ञान एव दैवी शक्ति के साथ सम्पर्क उत्पन्न होता है।

धर्म से नैतिकता को प्रेरणा मिलती है। इसके बिना यथार्थ नैतिकता का विकास करने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। जिस प्रकार हम नैतिकता के बिना सच्चे धर्म की कल्पना नहीं कर सकते उसी प्रकार धर्म के बिना सच्ची नैतिकता की कल्पना नहीं की जा सकती और धार्मिक आधार-शिला एवं प्रेरक शक्ति के बिना सजीव नैतिकता की कल्पना करना कठिन है। धर्म हमारी नैतिकता को मान-दंड के साथ-

साथ प्रेरक शक्ति प्रदान करता है। विभिन्न धर्मों के पवित्र ग्रन्थ तथा महान् विभूतियां, जिनके जीवन एवं शिक्षाएँ उन ग्रन्थों के भीतर सुरक्षित हैं, कर्म का मानदंड प्रदान करती हैं तथा उन आदर्शों को प्रेरणा देती हैं जो कर्म का पथ-प्रदर्शन करते हैं और जिनके बिना किसी ऐसी नैतिकता का विकास करना असम्भव है जिसका विद्यार्थी के जीवन में कोई मूल्य हो। भावना कर्म की संचालक-शक्ति है और धर्म उस भावना को प्रेरित करता है जो नैतिक कार्यों को उत्तेजित करती है।

अतएव यह आवश्यक है कि किसी भी पाठशाला में, जो अपने विद्यार्थियों के सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास करने की चेष्टा कर रही हो, धर्म की शिक्षा दी जानी चाहिए। सच तो यह है कि जो भी शिक्षा दी जाय उसका समस्त आधार धार्मिक होना चाहिए, अर्थात् वे आदर्श, जो योजनाओं एवं नीतियों को निर्धारित करें तथा उनका पथ-प्रदर्शन करें, ऐसे उच्चतम आदर्श होने चाहिए जो उन लोगों द्वारा स्वीकृत हों जो पाठशाला के लिए उत्तरदायी हों और जो चारित्रिक विशेषताएँ वे अपने विद्यार्थियों में विकसित करना चाहते हों। वे ऐसी विशेषताएँ होनी चाहिए जिनमें धार्मिक तत्त्व आधारशिला के रूप में हो। आदर्श स्वभावतः उनके धर्म द्वारा प्रदान किये जाते हैं। पर साथ-ही-साथ सहिष्णुता एवं इस बात को स्वीकार करने की तत्परता अनिवार्य रूप से होनी चाहिए कि हम हरएक से इस बात की आशा नहीं कर सकते कि वह हमारे विचारों को मान ही ले, विशेषरूप से धर्म के विषय में। यदि विद्यार्थी उस धर्म का अनुसरण नही करता जिसे हम श्रेष्ठ समझते हैं तो उसे समस्त धार्मिक प्रभावों से अलग रखने और किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा न प्राप्त करने देने की अपेक्षा यह अत्यधिक उत्तम है कि वह सचाई के साथ एक धर्म का पालन करे और उस धर्म के आदर्शों द्वारा निर्धारित मार्ग पर चलकर अपनी उन्नति की यथा-शक्ति चेष्टा करता रहे, चाहे हम यह विचार भले ही करें कि उसका धर्म हमारे धर्म की अपेक्षा अन्तिम सत्य से कहीं अधिक दूर है।

तब तो धार्मिक शिक्षा प्रत्येक पाठशाला में होनी चाहिए। धार्मिक तटस्थता को भंग किये बिना ऐसा किया जा सकता है। राजकीय पाठशालाओं में इस बात का प्रबन्ध करना कोई कठिन कार्य नहीं कि विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधि निश्चित समय पर पाठशाला में आयें और अपने-अपने सम्प्रदाय के विद्यार्थियों को अपने-अपने धर्म की शिक्षा दें। बहुधा पाठशाला के अध्यापक ही यह काम करने के लिए तैयार

हो जायँगे। जहाँ कहीं पितृ-शिक्षक परिषद् हों वहां उनके ज़रिये से इस प्रकार के प्रबन्ध किये जा सकते हैं। निजी पाठशालाओं में, जहां समान जातिवाले अधिक होते हैं और जहां एक धर्म को माननेवाले विद्यार्थियों की प्रभुता होती ही है, उस धर्म विशेष की शिक्षा दी जा सकती है। तो भी यदि अन्य धर्मों का अनुसरण करने वाले विद्यार्थी इस धार्मिक शिक्षा में उपस्थित न होना चाहें तो उन्हें ऐसा करने के लिए बाध्य करने के कोई प्रयास न होने चाहिए। यह चीज़ बिलकुल ऐच्छिक होनी चाहिए। अनिवार्य धर्म से अब तक किसी की भलाई नहीं हुई, अतएव प्रत्येक ऐसी पाठशाला में, जहां शिक्षा केवल एक ही धर्म की दी जाती है, चेतन-शक्ति का सम्मान अवश्य होना चाहिए।

यदि धार्मिक शिक्षा देने के लिए पर्याप्त शिक्षक हों और प्रबन्ध किया जा सके तो दिन में विभिन्न समयों पर विभिन्न कक्षाओं को धार्मिक शिक्षा देने के बजाय यह ज़्यादा अच्छा है कि सभी कक्षाओं को धार्मिक शिक्षा एक ही समय में दी जाय—चाहे पाठशाला के आरम्भ में और चाहे पाठशाला के अन्त में; पर जहां तक हो सके, आरम्भ का समय रखना अच्छा है। ऐसा करने की सम्भावना स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर होगी। अधिकारियों को एक बात ध्यान में रखनी चाहिए, वह यह कि किसी भी अध्यापक को धार्मिक शिक्षा देने के लिए बाध्य न किया जाय। यह एक ऐसा विषय नहीं है जिसको सिखाने की क्षमता प्रत्येक अध्यापक में केवल इसलिए होगी कि वह उस धर्म का अनुयायी है, जिसकी पाठशाला में प्रभुता है। धार्मिक शिक्षा देने का काम एक ऐसे अध्यापक के हाथ में सौंपना, जो अपने निजी धार्मिक जीवन द्वारा उसे देने के लिए उपयुक्त नहीं है, किसी प्रकार की शिक्षा न प्राप्त करने से भी बुरा है।

उपासना धर्म और जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। दिन का कार्यक्रम एक छोटी-सी प्रार्थना द्वारा आरम्भ होना चाहिए। जब सभी अथवा अधिकांश लोग एक ही धर्म के माननेवाले हों, तब इसकी व्यवस्था करना कठिन नहीं। दूसरे मामलों में जहां मिले-जुले हुए विद्यार्थी हों, वहां उपासना, प्रार्थना और इसी तरह की अन्य चीज़ों के ऐसे रूप निर्धारित किये जा सकते हैं जो सभी को मान्य हों और जिनमें सब लोग सम्मिलित हो सकें। विभिन्न अध्यापक बारी-बारी से इसको करा सकते हैं, परन्तु यह सेवा ऐच्छिक होनी चाहिए। किसी अध्यापक को इसे कराने के लिए बाध्य न

किया जाना चाहिए और किसी भी ऐसे विद्यार्थी को जो उसमें सम्मिलित होना न चाहता हो, उसे ऐसा करने के लिए बाध्य न किया जाना चाहिए। पाठशाला में शान्ति, मनन एवं धार्मिक पाठ के लिए एक कमरा अलग कर दिया जाना चाहिए। उपासना को मौन उपासना का रूप देना हितकर होता है। अध्यापकों तथा विद्यार्थियों को मौन का प्रयोग सिखाने की आवश्यकता होगी; परन्तु यदि कोई उपासना का नेतृत्व ग्रहण करता है तो उसकी अपेक्षा एक साथ मौन उपासना करने में, एक साथ मौन प्रार्थना करने में, विशेषरूप से जहां विभिन्न धर्मों को माननेवाले विद्यार्थी हों, वे बहुधा कहीं अधिक सचाई के साथ उपासना करने में समर्थ हो सकेंगे। जब भिन्न धर्मवाला कोई उपासना का नेतृत्व करता है तो इस बात की सम्भावना रहती है कि वह इस तरह से अग्रसर हो कि अन्य धर्मों को माननेवाले पूर्ण रूप से उसमें प्रवेश ही न कर पायें। यदि उपासना अथवा उपासना का कुछ भाग मौन रूप में किया जाता है तो यह सम्भावना दूर हो जाती है। फिर भी इस बात पर ज़ोर दिया जाना चाहिए कि मौन उपासना कोई ऐसी वस्तु न हो जो बिना शिक्षा के लाभप्रद हो सके।

पाठशाला में निश्चितरूप से धार्मिक पक्ष के सम्बन्ध में दूसरी उत्तम योजना यह है कि एक ऐसा शान्त कमरा बना लिया जाय जहाँ विद्यार्थीगण धार्मिक पाठ, प्रार्थना अथवा मनन के लिए जा सकें। सभी उचित अवसरों पर यह कमरा खुला रहना चाहिए और पाठशाला में जिन-जिन धर्मों के अनुयायी हों उन सभी के धार्मिक ग्रन्थों की प्रतियाँ वहाँ रखी रहनी चाहिए। कुछ पाठशालाओं में, जहाँ अलग कमरा नहीं मिल पाता, बाग़ का थोड़ा-सा हिस्सा इस काम के लिए निर्धारित कर दिया जाता है और निश्चित रूप से उपासना एवं मनन के कामों के लिए अलग रखा जाता है। प्रत्येक पाठशाला में विद्यार्थियों के लिए उपासना एवं प्रार्थना करने के लिए इसी प्रकार का कुछ प्रबन्ध होना चाहिए।

मिश्रित पाठशालाओं में, अर्थात् ऐसी पाठशालाओं में जहाँ के विद्यार्थी एक से अधिक धर्मों के अनुयायी हों, बड़े विद्यार्थियों के लिए तुलनात्मक धर्म में पाठ्य-सामग्री की व्यवस्था करना प्रायः लाभप्रद होता है। एक तिमाही के लिए विषयों का पाठ्य-क्रम तैयार किया जा सकता है और विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधियों से प्रस्तुत विषय के सम्बन्ध में रचनात्मक ढग से अपने विचार प्रकट करने के लिए कहा जा सकता है। इस प्रकार भावी जीवन के सम्बन्ध में हिन्दू, मुसलमान और सिख विचारकों की

उक्तियाँ दी जा सकती हैं और प्रत्येक के लिए एक या आवश्यकता होने पर एक से अधिक दिन निर्दिष्ट किये जा सकते हैं। इस प्रकार की किसी योजना की व्यवस्था करने में यह बात स्पष्ट रूप से समझ ली जानी चाहिए कि दूसरे धर्मों की सारी ध्वंसात्मक आलोचना अथवा उनके ऊपर होनेवाले आक्रमण हर तरह से अनुचित हैं और उनमें पड़ना ठीक नहीं। जो कुछ इच्छित है वह है--प्रस्तुत विषय के ऊपर प्रत्येक धर्म के विचारकों की रचनात्मक उक्ति। इस प्रकार की उक्तियां अथवा भाषण अध्यापक-मंडल के सदस्यों द्वारा दिये जा सकते हैं, अथवा यदि विचारणीय या आवश्यक हो तो बाहरवाले लोग बुलाये जा सकते हैं।

पाठशालाओं में होनेवाली धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था के सम्बन्ध में एक आवश्यक बात यह है कि जो कुछ सिखाया गया हो उसके अनुसार कार्य करने का सुयोग प्रदान किया जाना चाहिए। कदाचित् यह बात सभी धर्मों के लिए सत्य है कि सिद्धान्त बहुत ज्यादा होते हैं ; बातचीत, भाषण तथा उपदेश अत्यधिक होते हैं और जिन सिद्धान्तों को लेकर हम तर्क-वितर्क करते हैं, उन्हीं सिद्धान्तों को दैनिक जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र में हम पर्याप्त मात्रा में पूर्ण नहीं करते। धार्मिक शिक्षा में पाठों की कोई भी श्रेणी उस समय तक पूर्ण नहीं हो सकती जब तक कि वह कार्यरूप में परिणत न हो जाय।

प्रवेश की समस्या-विधि का प्रयोग करके इसके लिए सर्वोत्तम आयोजन किया जा सकता है, अर्थात् एक पाठ अथवा पाठों की श्रेणी का प्रस्थान-बिन्दु आचरण अथवा जीवन की एक ऐसी समस्या हो जो कक्षा के सदस्यों के सम्मुख उपस्थित हो और जिसका समाधान करने के लिए वे आकुल हों। यही समस्या प्रस्थान-बिन्दु बन जाती है। कक्षा में समस्या के विषय में तर्क-वितर्क होता है और अध्यापक कक्षा को समस्या का स्पष्टीकरण करने, गाँव या नगर के सम्बन्ध में तथा व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में भी उसको देखने में सहायता देने के लिए चेष्टा करता है। वे उसका विश्लेषण करते हैं और समस्या के पीछे रहनेवाले कारणों तथा उन तथ्यों का पता लगाते हैं जो सामाजिक एवं व्यक्तिगत कठिनाई की उत्पत्ति करते हैं। वे व्यक्तिगत रूप से लोगों के चरित्र की उन विशेषताओं का पता लगाते हैं जो उस मामले के लिए उत्तरदायी हैं जो कि एक समस्या अथवा कठिनाई बन गया है।

समस्या का विश्लेषण कर लेने तथा उसके कारणों का पता लगा लेने के बाद

दूसरी चीज़ है उसको उन लोगों के धर्म के साथ जोड़ देना जो उसका सामना कर रहे हैं। यह मालूम करना चाहिए कि उनका धर्म इस विषय में क्या कहता है, विवेचना के लिए प्रस्तुत विषय के सम्बन्ध में उसमें क्या शिक्षा दी हुई है, समस्या का समाधान किस प्रकार किया गया था अथवा अतीत में अन्य लोगों ने किस प्रकार उसका सामना किया था। इस विवेचना से उपचार अथवा उपचार ढूंढ़ निकालने की चेष्टा करने की विधि का पता चलता है। इस प्रकार दैनिक जीवन की समस्या के साथ धर्म का अत्यन्त आवश्यक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। कक्षा इस बात का भी निर्णय कर सकती है कि समस्या को हल करने के लिए चरित्र के किन विशेष लक्षणों की आवश्यकता है और किस प्रकार उनकी उत्पत्ति की जा सकती है।

यह सब कर लेने के बाद कक्षा को इस बात का निर्णय करना चाहिए कि समस्या के सम्बन्ध में वे कौन-सा व्यावहारिक कार्य कर सकते हैं, अर्थात् उनमें से प्रत्येक क्या कर सकता है और समुदाय के रूप में वे क्या कर सकते हैं। अध्यापक की सहायता से वे योजना बना सकते है और उन निश्चित क्रियाओं को पूर्ण कर सकते हैं जो उन्हें अपने धर्म को व्यवहार के रूप में लाने में समर्थ बना सकेंगी। बाद को यह मालूम करने के लिए कि वे किस प्रकार सफल हुए तथा उन कठिनाइयों के सम्बन्ध में सहायता प्राप्त करने के लिए, जो उठ खड़ी हुई हों, एक सम्मेलन बुलाया जा सकता है। इस विधि का प्रयोग बारह वर्ष और उसके ऊपर की आयुवाले बड़े विद्यार्थियों के साथ किया जा सकता है। यह एक ऐसी विधि है जो ग्राम्य क्षेत्रों में बड़े सन्तोषजनक ढंग से ग्राम-पुनर्निर्माण के कार्यक्रम के साथ जोड़ी जा सकती है। जो समस्याएँ ग्राम्य पुनर्निर्माण-कार्य में लगे हुए लोग हल करने की चेष्टा कर रहे हैं, वे बिलकुल वही समस्याएँ हैं जिनका सामना गांव के बालकों एवं बालिकाओं को अपने दैनिक जीवन में करना पड़ता है। धार्मिक शिक्षा का जो पाठ्य-क्रम इन चीज़ों को लेता है वह स्वयमेव अपने को व्यावहारिक जीवन तथा आचरण के साथ जोड़ लेता है।

यदि पाठशाला का संगठन प्रोजेक्ट-विधि के अनुसार किया जाता है तो प्राय: धार्मिक शिक्षा को उन योजनाओं के साथ जोड़ देना सम्भव रहता है जो पाठशाला के अन्य विषयों के सम्बन्ध में पूर्ण की जा रही हों। यह बात जितनी ही अधिक होगी, उतना ही अच्छा होगा। चूंकि योजना एक ऐसी आवश्यकता अथवा समस्य

को लेकर चलती है जिसका अनुभव विद्यार्थियों को हुआ है और जिसका सामना करना ही था, अतएव यह भी एक समस्यात्मक प्रवेश बन जाता है। यदि धर्म स्वाभाविक ढंग से पूर्णतया उन उपायों के साथ लाया जा सके जो आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए अपनाये जा रहे हैं, तब तो बहुत ही अच्छा है।

अध्याय १७

ग्राम्य शिक्षा

विस्तार एवं निरीक्षण की समस्याएँ

कुछ समस्याएँ ऐसी होती हैं जिनका सामना ग्राम्य पाठशाला में और विशेष रूप से ग्राम्य प्राथमिक पाठशाला में प्रत्येक अध्यापक को करना ही पड़ता है। जिन्हें इस प्रकार की पाठशालाओं का निरीक्षण करना होता है और जो लोग प्राथमिक शिक्षा के विस्तार में रुचि रखते हैं, उन लोगों को इन समस्याओं का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। कोई भी व्यक्तिगत रूप से उनके समाधान की दिशा में अधिक कार्य भले ही न कर सके, परन्तु हरएक को उन्हें समझना चाहिए, ताकि वह अध्यापक की स्थिति समझने में समर्थ हो सके और यह जान सके कि कहाँ पर उसे विशेष सहायता की आवश्यकता है।

१. बरबादी और धीरे-धीरे होनेवाली कमी.

यह तो सभी जानते हैं कि जो लोग पहली कक्षा से आरम्भ करते हैं उनमें से प्रतिशत के हिसाब से अधिकतर विद्यार्थी ऐसे होते हैं जो चौथी कक्षा तक नहीं

पहुँच पाते। इसका मतलब है धन और शक्ति की बरबादी। श्री परुलेकर (Parulekar)* जो कुछ कहते हैं उसके होते हुए भी मैं तो यह नहीं समझता कि जिन लोगों ने चौथी कक्षा में नहीं पढ़ा वे लोग साक्षर कहे जा सकते हैं। सच तो यह है कि जो लोग चौथी कक्षा में पढ़ भी लेते हैं उनमें से बहुत-से लोग ऐसे पाये गये हैं जो थोड़े दिनों बाद निरक्षर बन ही जाते हैं। उन्होंने जो कुछ सीख लिया था उसको बनाये रखने का कोई प्रयास नहीं किया। पाठशाला छोड़ने के पश्चात् जो कुछ सीख लिया गया हो उसको याद रखना, यही वह तथ्य है जो यथार्थ में विषय की पहेली है। पर हम यह कहने में सुरक्षित हैं कि जो बच्चे चौथी कक्षा तक अध्ययन नहीं कर पाते वे स्थायी रूप में साक्षर नहीं हो सकते और उनके ऊपर व्यय किया हुआ धन समय, एवं शक्ति बिलकुल व्यर्थ हो जाते हैं।

यह कहा जा सकता है कि अनिवार्य शिक्षा इसका हल है। यदि अनिवार्यता वास्तविक वस्तु है तो उसका इच्छित प्रभाव होगा ही, परन्तु अनिवार्यता को सफल बनाने के लिए भी उसके पीछे जनमत होना चाहिए। जब तक अधिकांश ग्रामवासी पक्ष में न हों तब तक अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की सफल योजना को कार्यान्वित करने की कोई आशा नहीं की जा सकती। आज हम उस स्थिति से बहुत दूर हैं। हमको सदैव उस आर्थिक कठिनाई का ध्यान रहना चाहिए जो ग्रामवासी के सम्मुख रहती है और जिसके लिए अनिवार्यता कोई हल प्रदान नहीं करती। बहुत-से माता-पिता उस छोटी-सी रक़म का परित्याग सरलता से नहीं कर सकते जो उनके बच्चे उस दशा में कमा सकते हैं जब कि वे पाठशाला में न पढ़ते हों।

इस विषय में अध्यापक को दो प्राणियों से निबटना रहता है--बच्चा, जो पाठशाला में उसके सम्मुख बैठता है और बच्चे के माता-पिता। वह इन दो दिशाओं में होनेवाली बरबादी की इस समस्या के लिए कोई हल ढूँढ़ निकालने की चेष्टा कर सकता है।

प्रायः ऐसा होता है कि यदि एक बालक किसी काम को करने के लिए बहुत उत्सुक होता है तो देर-सवेर उसके लिए मार्ग निकल ही आता है। अतः यदि बालक पाठशाला आने के लिए बहुत उत्सुक है तो आशा यही है कि वह अवश्य आ जायगा।

---

* आर० वी० परुलेकर--Literacy in India (Macmillan & Co)।

बरबादी के सवाल के हल का एक पहलू है—बच्चे में पाठशाला आने की और एक बार (पाठशाला में) आ जाने के बाद वहाँ ठहरने की इच्छा उत्पन्न करना। बहुधा अपनी अनुपस्थिति द्वारा यह इच्छा स्पष्ट हो जाती है।

तब यह इच्छा किस प्रकार उत्पन्न की जा सकती है?

पहली बात तो यह है कि अध्यापक एवं विद्यार्थी के बीच मित्रवत् सम्बन्ध होना चाहिए। विद्यार्थी को यह अनुभव करना चाहिए कि अध्यापक उसको समझता है, उसके साथ सहानुभूति रखता है, उसको हर समय सहायता देने के लिए तैयार रहता है, वह अध्यापक के पास किसी भी काम से जा सकता है और सदैव इस बात का भरोसा कर सकता है कि वह सहृदयता के साथ उसकी बात को सुन लेगा। यदि विद्यार्थी अपने अध्यापक के विषय में इस प्रकार सोचता है तो कम-से-कम उसको पाठशाला आने से नफ़रत न होगी और अधिकांश मामलों में वह अवश्य आना चाहेगा।

इसके अन्दर यह वस्तु निहित है कि अध्यापक अपने विद्यार्थियों के साथ व्यक्तिगत प्राणियों के रूप में बर्ताव करेगा और एक राशि के रूप में नहीं। वह प्रत्येक विद्यार्थी के स्वास्थ्य में, उसकी उन्नति में, उसके घर की दशा में और उसके कार्य में व्यक्तिगत रूप से रुचि लेगा। वह प्रत्येक विद्यार्थी को व्यक्तिगत रूप से सहायता प्रदान कर सकेगा। बच्चा इस बात का अनुभव करेगा कि उसके प्रति व्यक्तिगत रुचि दिखाई जा रही है। हम सदैव उन व्यक्तियों की ओर आकर्षित होते हैं जो हममें निजी रूप से रुचि लेते हैं और इस माने में बच्चे बिलकुल उसी तरह होते हैं जैसे कि बड़े लोग। अध्यापक के प्रति आकर्षण होने का तात्पर्य है पाठशाला के प्रति आकर्षण होना। आधुनिक दशाओं के अन्तर्गत, जहां तक सम्भव हो, अध्यापक का उद्देश्य होना चाहिए—'गुरु' और 'शिष्य' के प्राचीन सम्बन्ध की स्थापना करना।

यह कोई सरल कार्य नहीं है, विशेषरूप से बड़ी पाठशालाओं में बड़ी कक्षाओं के साथ। गाँव की छोटी पाठशाला में यह काम इतना कठिन नहीं। पर चाहे कठिन हो या न हो, अध्यापक का उद्देश्य यही होना चाहिए और इस उद्देश्य की पूर्ति के जितने ही निकट हम पहुँचेंगे, इस समस्या का कुछ-न-कुछ समाधान हमारे निकट आता जायगा। इस बीच में हमें अनिवार्य रूप से इस प्रकार के जनमत की उत्पत्ति

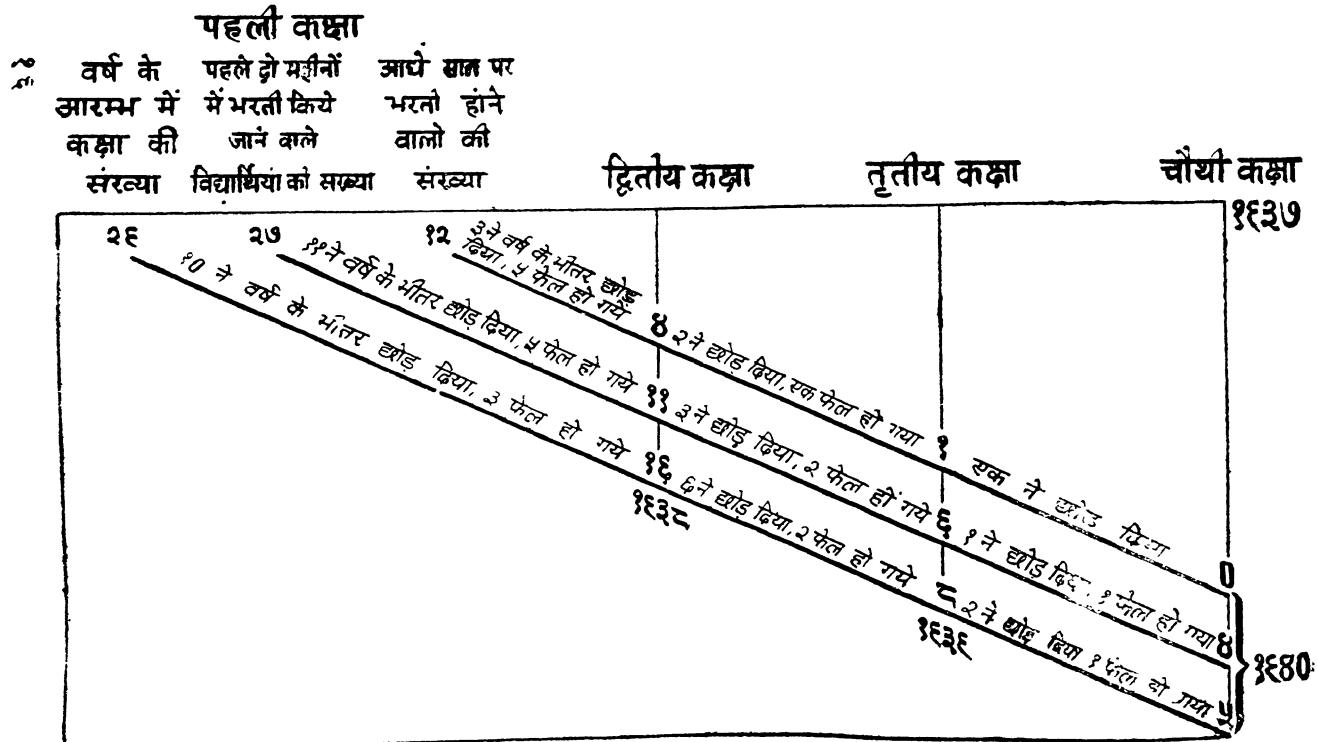

पंजाब में अध्यापकों तथा प्रधान अध्यापकों को एक नज़र में पाठशाला छोड़नेवाले विद्यार्थियों का अन्दाज लगाने में समर्थ बनाने के लिए प्रयोग में लाया जानेवाला चार्ट। यहां पर दी हुई गिन्तियां काल्पनिक हैं।

करने की यथाशक्ति चेष्टा करते रहना चाहिए जो बड़ी कक्षाओं का होना सहन न कर सकेगी।

पाठशाला में प्रयुक्त विधियों की ओर ध्यान देकर अध्यापक भी घटाव (leakage) की समस्या के हल में अपना योग दे सकता है और इसमें उसका निरीक्षक उसकी बड़ी सहायता कर सकता है। जब तक बच्चे को पाठशाला एक उदासीन और अरुचिकर स्थान जान पड़ेगी तब तक वह वहां रहने के लिए उत्सुक न होगा, विशेषरूप से यदि पाठशाला में रुकने के लिए घर की तरफ़ से उसके ऊपर दबाव न हो। पर यदि उसको यह मालूम होगा कि पाठशाला एक ऐसा स्थान है जहां वह काम करता है, चीजें बनाता है तथा क्रियाशील होने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है, इसके साथ-ही-साथ उसे जब इस बात का अनुभव होगा कि जो कुछ वह करता है उसका जीवन के साथ, जैसा कि वह उसे समझता है, वास्तविक सम्बन्ध है तब पाठशाला में उसको रखने में इतनी अधिक कठिनाई नहीं होगी।

अतः खेल और सभी प्रकार की क्रियाओं में होनेवाली बच्चे की रुचि से पूर्ण लाभ उठाना बड़ा महत्त्वपूर्ण है। प्रत्येक प्राथमिक पाठशाला में अध्यापकों द्वारा उन सभी उपायों का, जो 'खेल द्वारा शिक्षा' के नाम से प्रसिद्ध हैं, प्रयोग किया जाना चाहिए। चूँकि हरएक बच्चा खेल की प्रवृत्ति में सबसे अधिक सीखता है, अतएव शैक्षिक दृष्टिकोण से ठोस होने के अतिरिक्त यह पाठशाला को रुचि एवं आनन्द का एक स्थान बना देगा। पर इसका मतलब यह नहीं कि पाठशाला एक बड़ा खेल बनाई जा सकती है। खेल द्वारा शिक्षा देने की विधियों से शैक्षिक उद्देश्य की पूर्ति होनी चाहिए। पर इससे हमको एक विस्तृत क्षेत्र की प्राप्ति होती है और सरलता से सीमा का उल्लंघन कर देने का भय होने की आवश्यकता नहीं रहती। वह विधि, जो प्रॉजेक्ट-विधि के नाम से प्रसिद्ध है, वास्तव में एक खेल की विधि है और जिन लोगों ने इसका प्रयोग किया है वे इस बात को जानते हैं कि वह किस प्रकार पाठशाला को एक नई जगह बना देती है।

खेल-विधि का प्रयोग अनुशासन के सम्बन्ध में भी किया जा सकता है। यदि पाठशाला को एक आकर्षक स्थान बनाना हो तो इस तथ्य के ऊपर विचार किया जाना चाहिए। पाठशाला में भय के लिए जितना ही अधिक स्थान होगा और बच्चों को यदि

उसे छोड़ने का अवसर मिल जायगा तो पाठशाला में ठहरने का आग्रह करना उतना ही अधिक कठिन हो जायगा। भय को दूर करने का सर्वोत्तम उपाय है—यथासम्भव अधिक-से-अधिक स्वायत्त शासन के द्वारा खेल-विधि से शिक्षा देने की प्रवृत्ति का प्रयोग करना, चाहे इस प्रकार का स्वायत्त शासन कितना ही आरम्भिक क्यों न हो। निश्चय ही स्वायत्त शासन की स्थापना किये बिना अनुशासन में भय से छुटकारा पा लेना सम्भव है, परन्तु भय से मुक्त होने के लिए निश्चित प्रयास किया जाना चाहिए, चाहे कोई भी उपाय प्रयोग में क्यों न लाये जायँ।

यदि बच्चों को चीजें बनाने के लिए बहुतायत के साथ सुयोग प्रदान किये जाते हैं तो पाठशाला भी उनके लिए और अधिक आकर्षक बन जायगी। किसी-न-किसी तरह की हाथ की कारीगरी का काम व्यावहारिक रूप में सभी बच्चों को स्वभाव से ही पसन्द आता है। यदि उन्हें पता चल जाता है कि पाठशाला में रहकर वे अपनी क्रियाशील रहने की इच्छा को संतुष्ट कर सकते हैं, काम कर सकते हैं और चीजें बना सकते हैं तो वे पाठशाला में ठहरने के लिए कहीं अधिक इच्छुक होंगे।

पाठशालाओं में हाथ की कारीगरियों को आरम्भ करने से बच्चों के रुख पर प्रभाव पड़ने के साथ-साथ एक ऐसे दूसरे व्यक्ति के रुख के ऊपर भी महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा जिसके साथ अध्यापक और निरीक्षक को निबटना पड़ता है—वह है पिता। जब कि बहुत-से गाँव के माता-पिता पाठशाला के साधारण कार्य में कुछ अधिक लाभ नहीं देख पाते, तब वे कारीगरी के मूल्य का अंकन कर सकते हैं, विशेषरूप से यदि वह एक ऐसी कारीगरी है जो उनकी आर्थिक दशा को सुधारने का एक साधन बन सकती है। ग्रामवासी साधारण कपड़े सिलने, कपड़ा बुनने और घर तथा खेत के लिए आवश्यक वस्तुओं को बनाने और उनकी मरम्मत करने का काम सीखने से होनेवाले लाभ को देख सकता है। यदि उसको पता लगता है कि उसके बच्चे पाठशाला में ये काम सीख रहे हैं तो पाठशाला के प्रति उसका रुख बदल जायगा। परन्तु यदि हाथ का काम सिखाया जाता है तो गम्भीरता के साथ सिखाया जाना चाहिए। हमारे लिए किसी ऐसे व्यक्ति को रखना आवश्यक है जो उस कारीगरी को जानता हो और उसे सिखा सकता हो। ऐसी कारीगरी सिखाने से कोई लाभ नहीं जिसे बच्चे ठीक-से सीख न सकें।

यदि अध्यापक अपने बच्चों के माता-पिता और उनसे सम्बन्धित विषयों के प्रति मित्रवत् रुचि उत्पन्न करने की चेष्टा करता है तो वह भी समस्या को हल करने में सहायता दे सकता है। आगे चलकर समाज के प्रति पाठशाला के सम्बन्ध के विषय में जो सुझाव दिये जायँगे वे सब यहाँ के लिए उचित हैं। यदि पिता को यह ज्ञात हो जाता है कि अध्यापक उसकी दशा में रुचि रखता है, वह उससे मिलने और जब कभी सम्भव हो उसकी सहायता करने के लिए और उसको अपनी आर्थिक दशा सुधारने में मदद देने के लिए जो कुछ कर सकता है वह करने के लिए, उसको अच्छी सलाह देने के लिए और सामान्यरूप से उसके प्रति सहानुभूति दिखाने के लिए उद्यत है तो वह अध्यापक के प्रति विश्वास रखने लगेगा। जब उसके बच्चे को पाठशाला में रखने का प्रश्न उठेगा तब वह अध्यापक की बात सुनने और उसकी सलाह लेने के लिए कहीं अधिक तत्पर होगा।

यदि माता-पिता स्वयं पढ़े-लिखे होंगे तो स्वभावतः वे शिक्षा में कहीं अधिक रुचि रखेंगे। अतएव अध्यापकगण अपने गाँवों में प्रौढ़-शिक्षा प्राप्त कराने के लिए जितने भी प्रयास कर सकेंगे उन सबका प्रभाव उस समस्या के समाधान पर पड़ेगा, जिसके ऊपर हम विचार कर रहे हैं। प्रौढ़-शिक्षा प्रचार-आन्दोलन के सम्बन्ध में जितना भी कार्य किया जायगा, साधारण प्राथमिक शिक्षा पर उसका अनुकूल प्रभाव पड़ेगा।

ये कुछ ऐसे मार्ग हैं जिनमें अध्यापकगण सरकार द्वारा अपनाये हुए किसी भी उपाय की परवाह किये बिना घटाव (leakage) की इस गम्भीर समस्या को हल करने में सहायता पहुँचा सकते हैं। मैं तो यहां तक कहने को तैयार हूँ कि दबाव उस समय तक वास्तव में कदापि सफल नहीं हो सकता, जब तक कि अध्यापक सुझाये गये ढंगों से अपने हिस्से का काम पूरा न करे।

२. अनियमित उपस्थिति.

अनियमित उपस्थिति के प्रश्न का घटाव के प्रश्न के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है और नाश एवं घटाव की समस्या का समाधान करने के लिए जिन उपायों का प्रयोग किया जाता है, अनियमित उपस्थिति के सम्बन्ध में उन्हीं उपायों का प्रयोग करने से प्रभाव समानरूप से उत्तम होगा।

अनियमित उपस्थिति के कई कारण हैं :—

(क) बच्चे अथवा पिता, या दोनों में ही रुचि का अभाव।

(ख) बच्चे का बुरा स्वास्थ्य।

(ग) अपने माता-पिता को सहायता पहुंचाने के विचार से बच्चे का किसी काम में लगा होना।

(घ) घर से पाठशाला की दूरी।

इनमें से पहले कारण का निराकरण उन्हीं ढंगों पर किया जा सकता है, जिनके ऊपर घटाव की चर्चा करते हुए हम विचार कर चुके हैं।

दूसरे कारण का निराकरण केवल उसी दशा में किया जा सकता है, जब कि इस बात का निश्चय करने की चेष्टा की जाय कि डाक्टरी सहायता प्राप्त कर ली गई है। अध्यापक जहाँ तक देख सकेगा, इस तरह की चीज़ों को देखेगा; जैसे, उठी हुई आँख। उसका काम यह होगा कि वह देखे कि आँख का इलाज हो रहा है। इसके अतिरिक्त वह अपने प्रशिक्षण-काल में प्राप्त होनेवाले प्राथमिक सहायता-सम्बन्धी ज्ञान का प्रयोग भी करता रहेगा। परन्तु अधिक गम्भीर बातों के लिए अध्यापक को व्यक्तिगत रूप में पिता से व्यवहार करना पड़ेगा और उससे इस बात का आग्रह करना पड़ेगा कि वह अपने बच्चे के लिए डाक्टरी सहायता प्राप्त करे और एक बार डाक्टर के आदेश मिल जाने पर उन्हीं के अनुसार कार्य करे। यदि सम्भव हो तो बच्चों की प्रतिवर्ष एक बार डाक्टरी परीक्षा अवश्य होनी चाहिए और अध्यापक को तोल के चार्ट आदि अपने पास रखने चाहिए।

तीसरा कारण आर्थिक है, जिसमें नियम के अनुसार अध्यापक हाथ नहीं डाल सकता। जो कुछ वह कर सकता है वह केवल इतना ही कि वह पिता के साथ उस विषय पर बातचीत करे और दोनों मिलकर सहयोग के साथ यथासाध्य उत्तम प्रबन्ध करें। कभी-कभी तो पाठशाला को परिस्थितियों के अनुकूल बनाने के लिए पाठशाला के घंटों में परिवर्तन किया जा सकता है। छुट्टियाँ ऐसे समय में रखी जा सकती हैं जब कि काम ज्यादा हो, जैसे फ़सल कटने का समय, अथवा ऐसे समयों में पाठशालाओं में केवल आंशिक काल के लिए पढ़ाई रखी जा सकती है।

चौथी कठिनाई तो केवल और अधिक पाठशालाएं खोलकर ही दूर की जा सकती है। यह कठिनाई केवल थोड़े-से प्रान्तों में ही पाई जाती है।

३. स्थिरता (**Stagnation**).

इसके लिए फिर कई एक कारण हैं :—

(क) खराब शिक्षण-विधियाँ।
(ख) अनियमित उपस्थिति।
(ग) कक्षाओं में बुद्धि का असमान मान-दंड।
(घ) निरंतर चलनेवाला बुरा स्वास्थ्य।
(ङ) पाठशाला में प्रवेश पाने का समय।
(च) एकाकी अध्यापक-पाठशालाएं और फलस्वरूप विद्यार्थियों की ओर दिये जानेवाले ध्यान का अभाव।

(क) घटाव की समस्या के विषय में बताते हुए सुझाव दिया जा चुका है कि शिक्षण-विधि में सुधार, विशेषरूप से खेल द्वारा शिक्षा देने की विधियों और क्रिया-विधियों का आरम्भ, बड़ा महत्त्वपूर्ण है। बहुत-से बच्चे केवल इसलिए उन्नति नहीं करते कि क्रिया-विधियों का प्रयोग नही किया जाता। हमें करके सीखने' का सिद्धान्त व्यवहार में लाना चाहिए। सच तो यह है कि बच्चे जितने ही अधिक मंद-बुद्धि हों, उनके लिए उतने ही अधिक हाथ के काम की आवश्यकता होगी।

(ख) इस समस्या से निबटने के लिए सुझाव दिये जा चुके हैं।

(ग) गांव के शिक्षक से तो बुद्धि-परीक्षाएं देने की आशा नहीं की जा सकती, परन्तु वह अपनी कक्षा की बुद्धि का कुछ मूल्यांकन अवश्य कर सकता है और बुद्धि के अनुसार उसका समुदायों में वर्गीकरण कर सकता है। तभी वह कुछ हद तक अपनी विधियों एवं ध्यान का वर्गीकरण करने में समर्थ होगा। यदि वह कक्षा के तेज़ लड़कों को समुदायों का मुखिया बना लेता है तो उसे उनसे भी कुछ सहायता प्राप्त हो सकेगी। स्थिरता के इस कारण से वास्तव में संतोषजनक ढंग से निबटने के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक व्यक्तिगत रूप से अधिक-से-अधिक जितना कार्य कर सके, वह करे। यह ऐसा कारण नहीं है, जिसका निराकरण सरलता से किया जा सके। अध्यापक तो केवल उन्हीं की सहायता कर सकता है जो अपनी मंद बुद्धि के कारण यथाशक्ति कार्य न कर पाते हों। जब स्थिरता का कारण यह हो तब इससे पूर्णतया बचने की आशा नहीं की जा सकती। स्थिरता के मामलों के सिलसिले में रजिस्टर देखते

समय निरीक्षकों को सदैव यह बात ध्यान में रखनी चाहिए। व्यक्तिगत रूप से बालक के प्राकृतिक अनुदान के ऊपर प्रायः कोई विचार नहीं किया जाता, जो अध्यापक के लिए अन्यायपूर्ण है।

(घ) यहाँ पर, जैसा सुझाया जा चुका है, डाक्टरी सहायता एवं पिता के सहयोग की आवश्यकता है।

(ङ) पाठशाला में प्रवेश पाने की अवधि वर्ष के पहले महीने अथवा छः सप्ताह तक सीमित कर दी जानी चाहिए। तब अध्यापक का कार्य कहीं अधिक सरल बन जायगा। अध्यापक से यह आशा करना कि वर्ष का आरम्भ होने के दो या तीन महीने बाद वह बच्चों को पहली कक्षा में ले और उन्हें उन बच्चों के स्तर पर ले आये जो पहले महीने से कक्षा में पढ़ते रहे हों, स्पष्टरूप से अन्याय है। फिर जहाँ बच्चे वर्ष के सातवें और आठवें महीनों में भरती किये जाते हैं, वहाँ उनको एक अलग प्रारम्भिक अथवा किंडर गार्टन कक्षा में रखा जाना चाहिए। अगले वर्ष के आरम्भ तक उनको पहली कक्षा में जाने की आज्ञा न दी जानी चाहिए।

(च) उस समय तक, जब तक कि अध्यापक को एक असम्भव कार्य करने के लिए कहा जाता है, स्थिरता की समस्या कदापि हल नहीं हो सकती। साधारणरूप में इसे हल करने के लिए बच्चों के ऊपर व्यक्तिगत रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। जब तक अध्यापकों को इतने ही विद्यार्थी नहीं दिये जाते जितने कि वे सँभाल सकें तब तक यह नहीं किया जा सकता।

इस समस्या—वास्तव में इन सभी समस्याओं—में सहायता करने के लिए निरीक्षकगण एक काम कर सकते हैं। वह यह कि वे इस बात को देखें कि छोटी कक्षाओं में उत्तम अध्यापक पढ़ाते हैं। पहली कक्षा पाठशाला की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कक्षा है। उसके लिए सर्वोत्कृष्ट अध्यापक की आवश्यकता है। ग्राम्य पाठशालाओं की अनेक समस्याएं उस दशा में कहीं अधिक सरलता से हल हो जायँगी जब कि पहली कक्षा में सर्वोत्कृष्ट शिक्षा का प्रबन्ध हो।

४. एकाकी अध्यापक पाठशालाएं.

ये कठिन एवं असंतोषजनक होती हैं तो भी भविष्य में कुछ समय तक तो रहेंगी ही। अतएव अध्यापक और निरीक्षक को उस बुरी परिस्थिति में होते हुए भी

यथाशक्ति अच्छे-से-अच्छा काम करके दिखाना चाहिए। कुछ बातें ऐसी हैं जिनकी ओर विशेषरूप से ध्यान दिया जाना चाहिए।

(क) अध्यापक को इस बात का निश्चय करने के लिए कि किसी एक समय पर कक्षाओं में विषयों का संगोपन यथासम्भव प्रबन्धनीय है, अपने समय-चक्र-विभाग की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। जब एक कक्षा कोई ऐसा काम कर रही हो जिसके लिए अध्यापक का क़रीब-क़रीब बराबर रहना ही ज़रूरी हो, उदाहरण के लिए पहली कक्षा पाठ करना सीख रही हो, तब दूसरी कक्षाओं को ऐसा काम करते रहना चाहिए जिसे वे कम-से-कम निरीक्षण में कर सकती हों; जैसे, गणित के प्रश्न करना अथवा मौन पाठ करना।

(ख) अध्यापक को अपने लिए ऐसी सामग्री प्राप्त कर लेना या बना लेना चाहिए जो विद्यार्थियों को अपने आप काम करने अथवा जोड़ों या समुदायों में काम करने में समर्थ बना सके। गणित के कार्ड, जिनका वर्णन उन्नतिशील पाठशाला (Progressive School)* में किया गया है, और वे पाठ, जो तालीमी खेल (Talimi Khel)† सीरीज़ की पुस्तकों में सुझाये गये हैं, जो कुछ किया जा सकता है उसके उदाहरण हैं। योजनाओं का प्रयोग बहुतायत के साथ किया जा सकता है। ऊपर की दो बड़ी कक्षाओं में, विशेषरूप से भूगोल और मातृ-भाषा जैसे विषयों के सम्बन्ध में, निर्दिष्ट कार्य का प्रयोग किया जा सकता है। सच तो यह है कि एकाकी अध्यापक-पाठशाला में शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियों को एक वास्तविक लाभ प्राप्त हो सकता है, वह है—अपने आप अथवा छोटे-छोटे समुदायों में रहकर अपने आप काम करने की शिक्षा प्राप्त करना। यदि निरीक्षकगण अध्यापकों को लाभदायक सामग्री प्रदान करने के लिए यथासम्भव सब कुछ करते रहें तो वे इस प्रकार की पाठशालाओं में अध्यापकों को बड़ी सहायता पहुँचा सकते हैं।

(ग) अध्यापक को प्रत्येक कक्षा के सर्वोत्कृष्ट विद्यार्थी से प्राप्त होनेवाली निश्चित सहायता से लाभ उठाना चाहिए। उसको यह काम बड़ी बुद्धिमानी के साथ

* The Progressive School—W. M. Ryburn (ऑक्सफ़ोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस)।

† Talimi Khel—W. M. Ryburn (I, II, III पुस्तकें) (ऑक्सफ़ोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस)।

करना चाहिए। परन्तु इस प्रकार की कुछ सहायता इन अच्छे विद्यार्थियों को कोई हानि पहुँचाये बिना ली जा सकती है। उदाहरण के लिए अध्यापक एक कक्षा के साथ पढ़ाई का पाठ ले सकता है और तब प्रत्येक अच्छे विद्यार्थी को दो-दो कमज़ोर लड़के देकर उन्हें वही पाठ पढ़ाने का आदेश दे सकता है। गणित में तेज होनेवाले विद्यार्थी दूसरों के काम को जाँच सकते हैं। योजना-कार्य तथा खेलों में भी इस प्रकार के नेताओं से काम लिया जा सकता है।

(घ) अध्यापक के पास दिन भर के काम के लिए एक निश्चित व्यावहारिक योजना अवश्य होनी चाहिए। उसे निश्चित रूप से यह मालूम होना चाहिए कि प्रत्येक घंटे में प्रत्येक कक्षा क्या करने जा रही है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अध्यापक के लिए सावधानी के साथ तैयारी करना बहुत आवश्यक है। एक रात पहले, अगले दिन प्रत्येक कक्षा को श्यामपट पर दिया जानेवाला कार्य तैयार कर लिया जाना चाहिए। पाठशाला आरम्भ होने पर श्यामपट की तैयारी का जितना काम करना उसके लिए अनिवार्य है, उससे अधिक करने की उसे आवश्यकता नहीं। उदाहरण के लिए वह एक कक्षा द्वारा किये जानेवाले सवालों की गिनतियाँ लिख सकता है और दूसरी कक्षा को प्रतिलेखन अथवा श्रुतिलेख के लिए तैयार करने को दिये जानेवाले पाठ्य-पुस्तिका के अनुच्छेदों को इंगित कर सकता है। प्रत्येक कक्षा के लिए इस तरह की कोई चीज रखी जा सकती है और इस प्रकार पाठशाला को बिना किसी अड़चन के चलाने में बड़ी सहायता प्राप्त हो सकती है। यह तो स्पष्ट है कि ऐसा करने के लिए पहले से सावधानी के साथ तैयारी करने की आवश्यकता है।

(ङ) कुछ जगहों में दोहरी शिफ्ट प्रणाली का प्रयोग सम्भव हो सकता है, जिसके अनुसार मान लिया जाय कि पहली दो कक्षाएं प्रातःकाल तीन घंटों के लिए आती हों और अन्य दो कक्षाएं दिन में किसी और समय पर तीन घंटों के लिए आती हों। तब अध्यापक को एक समय में केवल दो ही कक्षाओं का ध्यान रखना पड़ेगा। इसके कारण उन बच्चों की कठिनाई भी दूर की जा सकने की सम्भावना है जिन्हें अपने माता-पिता के लिए नौकरी करनी पड़ती है। निश्चय ही इसका अर्थ यह है कि अध्यापक को दिन में जितने समय तक काम करना पड़ता है उसका कुल योग बढ़ जाता है; पर दूसरी ओर उसका काम कहीं अधिक सरल तथा अधिक निपुण बन

जाता है और उसके ऊपर पड़नेवाला मानसिक बोझ हलका हो जाता है। इस प्रकार की किसी योजना का प्रयोग करने की सम्भावना स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर होगी।

५. घरों की समस्या.

अधिकांश स्थानों में यह एक वास्तविक कठिनाई है जो विस्तार के मार्ग में तथा उत्तम पाठशालाओं के मार्ग में खड़ी होती है। पाठशाला के लिए भवन प्राप्त करना कठिन होता है। एक ढंग, जिससे इस समस्या का हल निकाला जा सकता है, वह है—खुली हवा की पाठशालाएं। इनके अनेक रूप हो सकते हैं। एक अकेली दीवार हो सकती है जिसके सहारे छप्पर की छत बना दी जाय। इस छप्पर का ढाल दीवार की ओर से आगे की ओर होगा, जहाँ उसको सहारा देने के लिए सिरे पर खम्भे गड़े होंगे। यदि इच्छा हो तो यह छप्पर दीवार के दोनों ओर नीचे की तरफ़ डाला जा सकता है। जब दो दीवारें समकोण पर एक-दूसरे को काटती हुई बनाई जायँ तब भी छप्पर की छतें बनाकर इसी ढंग का प्रबन्ध कर लिया जाना चाहिए। इस तरह से चार कक्ष बन जाते हैं। खुले मैदान में भवन बनाने का दूसरा ढंग यह है कि बीचोबीच में एक खम्भा हो और ऊपर गोलाकर छप्पर की छत हो, जिसका ढाल नीचे की ओर छोटे खम्भों के वृत्त के ऊपर हो। खम्भों का वृत्त एक नीची दीवार के द्वार से मिलाया जा सकता है। इस तरह का रहने का स्थान ३०–४० रु० के बीच में तैयार हो सकता है और एक अच्छी खुली हवा के कक्षा-कक्ष का काम दे सकता है। हवा या धूप या वर्षा से बचने के लिए जिस ओर छाया की आवश्यकता हो उस ओर टाट या मोटे कपड़े का पर्दा डाला जा सकता है।

प्रारम्भिक शिक्षा का प्रसार करने में मुख्य समस्या है आर्थिक, और इस विषय में अध्यापक कुछ भी नहीं कर सकता। सच तो यह है कि प्रारम्भिक पाठशाला-अध्यापक को बहुत कम वेतन मिलता है और जब तक उसकी दशाओं तथा आशाओं में कोई भौतिक सुधार नहीं होता तब तक कोई भी शिक्षा-प्रणाली वास्तव में सफल नहीं हो सकती। अतएव इस दृष्टिकोण के साथ-साथ अधिक सुविधाओं का प्रबन्ध करने के दृष्टिकोण से इस विषय में धन की आवश्यकता होगी ही।

ग्राम्य पाठशालाओं के निरीक्षकों को बहुत-सी चीज़ें अपने मन में रखना चाहिए।

ग्राम्य शिक्षक के पास ऐसे साधन बहुत ही कम होते हैं जिनके ऊपर वह निर्भर रह सके। सूचना, सहायता एवं प्रोत्साहन के लिए वह अपने निरीक्षक के ऊपर निर्भर रहता है। निरीक्षक को चाहिए कि वह अपने काम को इतना नीचे न गिरा दे कि वह केवल दैनिक कार्य भर रह जाय। अध्यापक को नवीन प्रयासों के लिए प्रेरित करना उसके निरीक्षण का मुख्य ध्येय बन जाना चाहिए। यदि वह अध्यापक में सहानुभूतिपूर्ण रुचि दिखाता है और उसकी कठिनाइयों को समझने की चेष्टा करता है तो उसे ऐसा करने में कोई कठिनाई न होगी। इसके बाद भी उसे अनिवार्यरूप से नई विधियों के विषय में, पुस्तकों के विषय में, यदि ऐसी पुस्तकें प्राप्य हों तो नई सामग्री किस प्रकार बनाई जाय इस विषय में और बच्चों को सामान्यरूप से क्रिया-शील एवं पाठशाला में रुचि रखनेवाले बनने में सहायता देने के विषय में सूचना तथा सुझाव देते रहना चाहिए।

निरीक्षक को कठोरता के साथ दिखावे के समस्त प्रयासों को दबा देना चाहिए। उसे आरम्भ से ही यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिए कि वह वास्तविक कार्य देखना चाहता है, दिखावे के ऊपर समय नष्ट करना नहीं चाहता और सच्चे कार्य के अभाव में दिखावे के प्रयासों द्वारा प्रभावित होने के लिए तैयार नहीं है।

निरीक्षक को अनिवार्यरूप से अधिक-से-अधिक प्रायोगिक कार्य की व्यवस्था करनी चाहिए, चाहे वह निरा आरम्भिक ही क्यों न हो। इस प्रकार के कार्य में की गई उन्नति को आँकना और प्राप्त किये हुए फलों की विवेचना पाठशाला में होनेवाले उसके प्रत्येक निरीक्षण की एक विशेषता होनी चाहिए।

निरीक्षक को चाहिए कि वह अपनी पाठशालाओं में अध्यापकों से एक रोज़-नामचा रखने के लिए कहे, जिसमें जैसे-जैसे कठिनाइयाँ आती जायँ वैसे-वैसे लिख ली जायँ। फिर अपने निरीक्षण के अवसर पर निरीक्षक से इन कठिनाइयों एवं समस्याओं के सम्बन्ध में सहायता देने के लिए कहा जा सकता है। यदि ऐसा किया जाता है तो उसके आगमन का व्यावहारिक महत्त्व बहुत बढ़ जायगा।

हर दफ़ा जब निरीक्षक आता है तो निरीक्षण-कार्य समाप्त हो जाने के बाद निरीक्षक और अध्यापकों का एक सम्मेलन होना चाहिए, जिसमें पाठशाला और काम से सम्बन्धित चीजों की विवेचना की जा सके।

ग्राम्य पाठशाला और समाज

स्थानाभाव के कारण यहाँ पर कुछ ऐसे तरीक़ों को गिना देने के सिवा और कोई उपाय नहीं है, जिनके द्वारा पाठशाला उस समाज को सहायता पहुँचा सकती है, जिसके बीच वह स्थित हो। इस विषय के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक जानने के लिए पाठक बहुत-सी पुस्तकों* का अध्ययन कर सकते हैं।

गाँव के ऊपर पाठशाला का प्रभाव दो तरह से पड़ेगा—(१) उसके विद्यार्थियों के प्रभाव के द्वारा, (२) सामाजिक संस्था के रूप में, वह क्या हो सकती है इसके द्वारा। पहले शीर्षक में उसकी क्रियाएं, उसके समस्त कार्यक्रम एवं पाठ्य-क्रम में निहित होंगी। दूसरे शीर्षक के अन्तर्गत उसके कार्य एवं सेवा के मार्ग निम्नलिखित होंगे जो प्रायः ग्राम्य पाठशालाओं और उनके अध्यापकों के लिए खुले होते हैं:—

(१) प्रौढ़-शिक्षा-कार्य, जिसमें रात्रि-पाठशाला को चलाना शामिल है। अध्यापकगण और विद्यार्थीगण, दोनों इसमें सहायता कर सकते हैं।

(२) प्रौढ़-शिक्षा का अधिक सामान्य कार्य भाषण, प्रदर्शनी, तथा लालटेन द्वारा दिये जानेवाले भाषण, समाचार-पत्रों के पाठ, नाटक और ग्राम्य पुस्तकालयों द्वारा किया जा सकता है।

(३) सहकारी कार्य को प्रोत्साहन दिया जा सकता है। सहकारी समितियाँ किस प्रकार चलाई जानी चाहिए, इसका एक व्यावहारिक उदाहरण पाठशाला में दिया जा सकता है, और कभी-कभी सहकारी दुकानें, सहकारी श्रेष्ठतर रहन-सहन-समितियाँ आदि स्थापित करके इसको और विस्तृत बना देना सम्भव रहता है।

---

* Better Village Schools—M. Olcott (Y. M. C. A. Publishing House).
The Progressive School—W. M. Ryburn (Oxford University Press).
Better Villages—F. L. Brayne (Oxford University Press).
Education & Village Improvement—I. W. Moomaw (Oxford University Press).

(४) पाठशाला के द्वारा विभिन्न प्रकार के स्वास्थ्य-कार्य तथा गाँव की सफ़ाई की दशाओं में सुधार का काम आरम्भ किया जा सकता है।

(५) खेती करने की श्रेष्ठतर विधियां सिखाकर, विभिन्न प्रकार के बीजों के सम्बन्ध में सूचना देकर और खाद तथा खेती से सम्बन्ध रखनेवाली अन्य चीज़ों के बारे में बताकर गाँव के किसान को सहायता दी जा सकती है। यदि पाठशाला के पास प्रायोगिक भूमि हो तो और भी अच्छा है।

(६) बालिकाओं की शिक्षा की ओर क़दम उठाया जा सकता है और अच्छा प्रचार का कार्य किया जा सकता है।

(७) अन्ध-विश्वासों तथा गांव में प्रचलित किसी अन्य रीति-रिवाज के विरुद्ध शिक्षा दी जा सकती है।

(८) पाठशाला गाँव के खेलों तथा मनोरंजन का केन्द्र हो सकती है।

(९) पाठशाला साम्प्रदायिकता के विरुद्ध होनेवाले संग्राम में मार्गदर्शक बन सकती है।

(१०) उदाहरण एवं उपदेश द्वारा पाठशाला घरों की ओर और सामान्यरूप से गाँव की सजावट की शिक्षा दे सकती है।

(११) यदि सौभाग्य से पाठशाला के पास हाथ की कारीगरी सिखाने का प्रबन्ध हो तो वह गांव में कुटीर-उद्योगों का प्रचार कर सकती है।

(१२) पाठशाला गाँव के जानवरों को और समय पड़ने पर उनके मालिकों को सहायता पहुँचा सकती है। जानवरों के इलाज के सम्बन्ध में दी गई शिक्षा उनके मालिकों को अपनी आर्थिक दशा सुधारने में सहायता देगी।

ये कुछ ऐसे सामान्य उपाय हैं जिनके द्वारा पाठशाला ग्राम्य उत्थान और श्रेष्ठतर ग्राम्य जीवन का केन्द्र बन सकती है। और भी काम हैं जो पाठशाला कर सकती है, पर हरएक गाँव की अपनी विशेष समस्याएँ और सुयोग होते हैं और स्वभावत: अध्यापक को अपनी क्रियाओं की योजना बनाते समय उस गाँव की स्थानीय दशाओं का ध्यान रखना ही पड़ेगा, जहाँ वह काम कर रहा है।

———

परिशिष्ट

हॉकी, एसोसिएशन फ़ुटबॉल, रगर टच, क्रीकेट, वॉलीबॉल, बास्केट बॉल तथा छोटे खेलों के नियम

हॉकी

१. मैदान की लम्बाई १०० गज़ और चौड़ाई ६० गज़ से ज़्यादा और ५५ गज़ से कम न हो। महत्त्वपूर्ण मैचों के लिए चारों कोनों पर और पक्ष-रेखाओं के केन्द्र में भी रेखा से एक गज़ बाहर की तरफ़, झंडी लगाने के लिए खम्भे गाड़ दिये जाने चाहिए। मैदान के भीतर रेखाएँ खींच दी जानी चाहिए जो पक्ष-रेखाओं के समानान्तर हों तथा पक्ष-रेखाओं से जिनकी दूरी ७ गज़ हो।

२. प्रत्येक गोल लाइन (Goal line) के केन्द्र में एक गोल होना चाहिए, जिसमें दो लम्बाकार खम्भे हों, जिनके बीच की दूरी ४ गज़ हो। दोनों एक आरपार जानेवाली छड़ से जुड़े हों और वह छड़ ज़मीन से सात फ़ीट हो। खम्भे और छड़ २ इंच से ज्यादा चौड़े और ३ इंच से ज्यादा गहरे न हों। जाल खम्भे में छड़ों में और अन्तिम रेखा के पीछे ज़मीन में बांधे जा सकते हैं।

३. प्रत्येक गोलके सामने मारनेवाला वृत्त होगा। यह वृत प्रत्येक खम्भे को केन्द्र मानकर और १५ गज का अर्द्धव्यास (Radius) लेकर इस तरह खींचा जाता है कि गोल लाइन से बाहर मैदान में एक चौथाई वृत खिच जाता है। तब ये दोनों चौथाई वृत एक सीधी रेखा द्वारा एक साथ जोड़ दिये जाते हैं। यह सीधी रेखा लक्ष्य के समानान्तर होगी और उसकी लम्बाई ४ गज होगी। इस तरह से घेरा हुआ मैदान

का भाग मारनेवाला वृत्त (Striking Circle) कहलाता है। इसको दिखानेवाली रेखा खीच दी जायगी, खोदी नहीं जायगी; क्योंकि यदि वह खोद दी जाती है तो गेंद या तो रुक जायगा और या इधर-उधर चला जायगा। रेखा ३ इंच चौड़ी होगी।

४. गेंद चमड़े का बना हुआ क्रीकेटवाला गेंद होगा जो सफ़ेद रँगा होगा या सफ़ेद चमड़े का बना हुआ होगा। गेंद का वज़न ५$\frac{3}{4}$ औंस से ज्यादा और ५$\frac{1}{2}$ औंस से कम न होना चाहिए।

५. प्रत्येक स्टिक इतनी बड़ी होनी चाहिए कि वह दो इंच के छल्ले के बीच से निकल सके। कुल वज़न २८ औंस से ज्यादा न होना चाहिए। इस वजन के अन्दर रबड़ के उस हैण्डिल अथवा छल्ले का वज़न भी शामिल होना चाहिए, जिसका प्रयोग किया जाता है। छड़ी का सिरा गोल होना चाहिए, पर वर्गाकार न काटा जाना चाहिए। छड़ी में कुछ जड़ा न होना चाहिए।

६. टोली में ग्यारह खिलाड़ी होते हैं। मामूली तौर से पांच आगे, तीन अर्धपृष्ठ में, दो पूर्ण पृष्ठ में और एक गोलकीपर होता है। रेफ़री को खेल के आरम्भ मे ही यह सूचना दे दी जानी चाहिए कि गोलरक्षक कौन है और यदि खेल के बीच में गोलरक्षक बदलता है तो उसकी सूचना रेफ़री को ज़रूर दे दी जानी चाहिए।

७. जब तक कप्तानों के बीच कुछ और तय न हो तब तक खेल ३५-३५ मिनट की दो अवधियों तक खेला जाना चाहिए। आधे समय के बाद टीम को पक्ष बदल लेने चाहिए और बीच का अवकाश पाँच मिनट से अधिक का न होना चाहिए।

८. खेल का आरम्भ प्रति टीम के एक-एक खिलाड़ी द्वारा होना चाहिए जो गेंद को क्रीड़ास्थल के केन्द्र में बुली करेगा। बुली में प्रत्येक खिलाड़ी गेंद के उस सिरे के पास की ज़मीन पर मारेगा जो उसकी तरफ़ होगा, तब वह अपने विपक्षी की छड़ी के चपटे सिरे को तीन बार थपथपायेगा। पहले ज़मीन पर मारेगा फिर उसके बाद अपने विपक्षी की छड़ी को थपथपायेगा। इसके बाद खेल आरम्भ करने के लिए दोनों में से एक खिलाड़ी को गेंद में ठोकर मारना चाहिए। वे दोनों खिलाड़ी, जो बुली दे रहे हों, किनारे की रेखाओं का सामना करते हुए बराबर से खड़े होंगे। जब बुली ली जा रही है तब प्रत्येक अन्य खिलाड़ी अपने हिस्से में होगा, अर्थात् प्रत्येक खिलाड़ी गेंद की अपेक्षा अपनी गोल लाइन के अधिक निकट होगा। कोई दूसरा खिलाड़ी उन खिलाड़ियों के, जो बुली दे रहे हों, इतने नज़दीक न खड़ा होगा कि उसकी गेंद से दूरी पांच गज़ से कम हो। गोले में साधारण बुली गोल-लाइन (Goal line) से पाँच गज़ से कम दूरी पर न ली जानी चाहिए। प्रत्येक गोल के बाद खेल फिर से आरम्भ होगा। आधे समय के बाद मैदान के केन्द्र में बुली देकर खेल आरम्भ होगा।

९. गोल बनाने के लिए आक्रमणकारी द्वारा अपने विपक्षी के मारनेवाले वृत्त में गेंद के ऊपर चोट की जानी चाहिए, या अपने विपक्षी के मारनेवाले गोल में आक्रमणकारी की स्टिक को छूकर गेंद को गोल के अन्दर निकल जाना चाहिए और

उसे अनिवार्यरूप से गोल-लाइन के ऊपर, गोल-स्तम्भों के बीच से और क्रास-बार के नीचे से पूरी तोर पर गुज़रना चाहिए। यदि गेंद आक्रमणकारी के द्वारा मारा नहीं जाता या उसके विपक्षी क वृत में उसकी स्टिक को छूकर गोल के अन्दर नही निकल जाता तो कोई गोल नहीं बन सकता। यदि गेंद बचाव पक्षवाले की एक या एक से अधिक स्टिक को या व्यक्ति को छूकर गोल के बीच से गुज़र जाता है और आक्रमण-कारी द्वारा वृत में उसके ऊपर चाट पड़ चुकती है, या वह छुआ जा चुकता है तो एक गोल बन जाता है। यदि गोल-स्तम्भों का कुछ हो जाता है, परन्तु यदि रेफ़री की राय में हरएक चीज़ ठीक होने पर गेंद गोल के बीच से होकर गुज़र जाता है तो एक गोल दिया जायगा।

१०. एक खिलाड़ी उस दशा में आफ़-साइड होता है जब कि उसके और उसके विपक्षियों के गोल के बीच में उसके विपक्षियों की संख्या तीन से कम होती है; पर कुछ दशाएं ऐसी हैं जब कि वह आफ़-साइड नहीं होता--(अ) वह मैदान के उस अर्द्धभाग में हो जो उसकी टोली का हो, (ब) गेंद उसके अपने हाथ में आने के पूर्व उसके विपक्षियों में से किसी के द्वारा छुआ या मारा गया हो, अथवा अपनी ही टोली के किसी ऐसे सदस्य द्वारा छुआ या मारा गया हो जो विपक्षियों की गोल-लाइन से स्वयं उसकी अपेक्षा अधिक निकट हो।

एक खिलाड़ी जो ऑफ़-साइड हो जाय उसको उस समय तक गेंद खेलने या अपने किसी ऐसे विपक्षी के साथ, जो गेंद को मारने की कोशिश करे, हस्तक्षेप करने की चेष्टा न करनो चाहिए जब तक कि गेंद उसके विपक्षियों में से किसी के द्वारा खेल न लिया गया हो। केवल ऑफ़-साइड होने के लिए किसी खिलाड़ी को उस समय तक सज़ा न दी जायगी जब तक कि रेफ़री की राय में इस स्थिति से उसको कोई लाभ न हो रहा हो, या विपक्षी के खेल पर कोई प्रभाव न पड़ रहा हो। यदि ऑफ़ साइड होते हुए भी वह गेंद को खेलने या खेल में भाग लेने का प्रयास करता है तो उस स्थान पर, जहाँ नियम का उल्लंघन किया गया है, उसके विरुद्ध एक फ्री हिट दिया जायगा। एक खिलाड़ी जो ऑफ़ साइड है, वह ऑन-साइड केवल इसलिए न कर दिया जायगा कि उसका गेंद विपक्षी की स्टिक या शरीर को छू चुका है या छूकर गोल के अन्दर निकल गया है; अन्यथा ज्योंही गेंद एक विपक्षी द्वारा निश्चित रूप से खेल लिया जाता है त्योंही जो खिलाड़ी ऑफ़-साइड स्थिति में होता है, ऑन-साइड कर दिया जाता है। यदि गेंद गोल-स्तम्भ या क्रॉस-बार से लगकर वापस आ जाता है तो वह खेला हुआ मान लिया जाता है।

११. गेंद हाथ से या पैर से रोका या पकड़ा जा सकता है, पर यदि पकड़ा जाता है तो पकड़े न रखा जाना चाहिए, बल्कि तुरन्त इस तरह से गिरा दिया जाना चाहिए कि वह ज़मीन पर लम्बाकार दशा में गिरे। यदि गेंद रोकने के लिए हाथ या पैर का प्रयोग किया जाता है तो गेंद बिल्कुल रोक दिया जाना चाहिए। यदि गेंद को रोकने के लिए पैर का प्रयोग किया जाता है तो वह तुरन्त हटा दिया

जाना चाहिए। यदि गेंद शरीर के किसी अंग से टक्कर लेता है या किसी दिशा में चला जाता है, या यदि वह हाथ से रोका जाता है और किसी दिशा में चला जाता है तो ब्रीच हो जाती है और अपराधी के विरुद्ध एक फ्री हिट दिया जाता है। गेंद उठाने, ले जाने, किक करने, फेंकने, आगे या पीछे ठोकर देने के लिए स्टिक का प्रयोग होना आवश्यक है। बिना स्टिक के ये काम न होने चाहिए। गोलरक्षक को गेंद अपने वृत्त में किक करने की आज्ञा दी जानी चाहिए। यदि अपने हाथ से गेंद रोकते समय वह लम्बाकार नहीं गिरता तो उसको सज़ा न दी जानी चाहिए।

१२. गेंद को मारने के लिए स्टिक का केवल चिपटा किनारा प्रयोग में लाया जाना चाहिए, और कोई खिलाड़ी उस समय तक खेल में भाग नहीं ले सकता जब तक कि उसकी छड़ी उसके हाथ में न हो। दौड़कर दूसरे को अनजान में धक्का देना, ढकेलना, विपक्षी की छड़ी के ऊपर चोट करना या उसको फंसाना अथवा अपनी छड़ी से विपक्षी की छड़ी को पकड़ना निषिद्ध होना चाहिए। साधारण खेल में सभी मामलों में पेनाल्टी के रूप में अपराधी के विरुद्ध एक फ्री हिट दिया जाता है।

१३. जब विपक्षी गेंद से उसको मारने भर की दूरी पर हो तब खिलाड़ी को उसके और गेंद के बीच में अपना शरीर अड़ाकर अथवा इस तरह घूमकर कि वह अपने को विपक्षी और गेंद के बीच में ले आये, उसके मार्ग में बाधक न बन जाना चाहिए। जब किसी खिलाड़ी का विपक्षी गेंद से उसको मारने भर की दूरी पर हो तब उसे खिलाड़ी को अपनी छड़ी से रुकावट न डालनी चाहिए अथवा बाईं ओर से अपनी छड़ी अपने विपक्षी तथा गेंद के बीच में न ले आनी चाहिए। साधारण खेल में पेनाल्टी के रूप में अपराधी के विरुद्ध एक फ्री हिट दिया जाता है।

१४. गेंद के ऊपर मारते समय स्टिक का कोई भी भाग, चाहे प्रहार के आदि में हो चाहे अन्त में, कंधे से ऊपर न उठाया जाना चाहिए, न छड़ी के किसी भाग द्वारा गेंद खिलाड़ी के कंधे की ऊंचाई के ऊपर हवा में रोका जा सकता है और न खिलाड़ी गेंद तक पहुँचने में अपनी छड़ी का कोई भाग अपने कंधे से ऊंचा उठा सकता है। साधारण खेल में पेनाल्टी के रूप में अपराधी के विरुद्ध उस स्थान पर फ्री हिट दिया जायगा जहां नियम का उल्लंघन किया गया था।

१५. (कॉर्नर). आक्रमणकारी टोली का खिलाड़ी साइड लाइन अथवा गोल लाइन के ऊपर उस बिन्दु से हिट लेगा जो कोने के झंडे से तीन गज़ से अधिक दूरी पर न हो। जब इस प्रकार का हिट लिया जा रहा हो उस समय बचाव-टोली के पैर और स्टिकें सब गोल लाइन के पीछे होनी चाहिएँ और बचाव-टोली का कोई भी खिलाड़ी उस खिलाड़ी से पांच गज़ से निकटतर दूरी पर न होगा जो हिट ले रहा हो। आक्रमणकारी टोली के सारे सदस्यों के पैर और स्टिकें खेल के मैदान में प्रहारक वृत्त के बाहर होंगी। जब गेंद उस खिलाड़ी के द्वारा हिट किया जा रहा हो जो अपनी टीम के सदस्य को कॉर्नर हिट दे रहा हो, तब विपक्षियों के गोल की ओर हिट किया जा सकने के पूर्व गेंद अनिवार्य रूप से रोक लिया जाना चाहिए। पर यह

ज़रूरी नहीं कि वह पूर्णतया गतिहीन हो जाय। यदि रोके जाने के पूर्व गेंद पहले ही से बचाव करनेवाले को या उसकी छड़ी को छू लेता है तो गेंद को बिना रोके एक गोल बन जाता है। कॉर्नर हिट लेनेवाला खिलाड़ी उस समय तक गेंद को फिर से हिट नहीं कर सकता, जब तक कि वह दूसरे खिलाड़ी को अथवा उसकी स्टिक को न छू चुका हो। जब गेंद बचाव-टोली के एक खिलाड़ी को व्यक्तिगत रूप से या उसकी स्टिक को छू कर गोल के अन्दर निकल जाता है और गोल लाइन के ऊपर चला जाता है, तब एक कॉर्नर हिट दिया जाता है (उस दशा को छोड़कर जहां नियम ९ के अनुसार गोल बनता है), या जहां रेफ़री की राय में गोल बनने के पहले ही रक्षात्मक टोली के किसी ऐसे सदस्य द्वारा, जो अपने २५ के अन्दर हो, बेजाने गोल लाइन के ऊपर फेंक दिया जाता है।

१६. « पेनाल्टी कॉर्नर ». पेनाल्टी कॉर्नर गोल के दोनों सिरों में से किसी भी सिरे पर गोल लाइन के ऊपर एक ऐसे विन्दु से लिया जायगा, जिसकी दूरी निकटतम गोल-स्तम्भ से १० गज़ से कम न हो। पेनाल्टी कॉर्नर हिट के नियम वही होंगे जो कॉर्नर हिट के लिए होते हैं।

पेनाल्टी कॉर्नर उस दशा में दिया जाता है जब गोल बनाने के पूर्व रेफ़री की राय में गेंद जानबूझकर रक्षात्मक टोली के किसी खिलाड़ी के द्वारा मैदान के किसी भाग से गोल लाइन के पीछे फेंक दिया जाता है। इसमें गोलरक्षक शामिल रहता है।

पेनाल्टी कॉर्नर उस दशा में भी दिया जाता है जब रक्षात्मक टोली के किसी सदस्य के द्वारा मारनेवाले वृत्त में किसी प्रकार से नियमों का उल्लंघन किया जाता है। इसमें गोलरक्षक शामिल रहता है। यदि गोलरक्षक स्टिकें* देता है तो उसकी टोली के विरुद्ध एक पेनाल्टी कॉर्नर दिया जायगा।

१७. कोई खिलाड़ी जानबूझकर गेंद को इस तरह से न मारेगा कि वह हवा में उठ जाय। गेंद के पास हिट करके उसे ऊपर उछालने की आज्ञा उस समय तक होगी जब तक कि रेफ़री के मतानुसार वह भयप्रद न हो अथवा उसके कारण खेल के भयप्रद बन जाने का अन्देशा न हो। जब गेंद हवा में हो तब वह केवल उतनी ही देर तक हिट किया जा सकता है जब तक कि स्टिक कंधे के ऊपर न उठाई जाय। दंड के रूप में अपराधी के विरुद्ध एक फ़्री हिट दिया जाता है।

१८. जब फ़्री हिट लिया जा रहा हो तब गेंद ज़मीन के ऊपर बिल्कुल गतिहीन पड़ा होगा और कोई दूसरा खिलाड़ी हिट लेनेवाले खिलाड़ी से ५ गज़ के भीतर की दूरी पर न होगा। यदि एक खिलाड़ी समय नष्ट करने के लिए इस दूरी के भीतर रुकता हुआ जान पड़े तो हिट लिया जा सकता है। फ़्री हिट लेने के बाद मारनेवाला खिलाड़ी उस समय तक खेल में भाग नहीं ले सकता जब तक कि गेंद किसी अन्य

---

* अर्थात् नियम १४ के अन्तर्गत उल्लंघन करता है।

खिलाड़ी के द्वारा छुआ या मारा न जा चुका हो। फ़्री हिट लेने में गेंद ज़मीन के ऊपर मारा या ढकेला जाना चाहिए। गेंद के पास हिट करके गेंद को ऊपर उछालने की आज्ञा नहीं है। जब गेंद हिट किया जाय उस समय उसको स्थिर रहना चाहिए। गतिमान् गेंद को मारने के लिए दंड के रूप में दूसरे पक्ष को एक फ़्री हिट दिया जाता है।

१९. जब गेंद पूरी तरह से साइड लाइन के ऊपर से गुज़र जाता है तब नीचे हाथ करके उसको ज़मीन के ऊपर अन्दर की ओर हाथ से लुढ़का दिया जाय। गेंद को हवा के बीच से फेंकने अथवा उसे हाथ से नीचे-ऊपर उछालने की आज्ञा नहीं है। वह उस स्थान से, जहां से वह विपक्षी टोली के एक सदस्य द्वारा बाहर चला गया था, उस टोली की ओर अन्दर की तरफ़ लुढ़का दिया जायगा, जिसके सदस्य ने इसके पहले गेंद को मारा या छुआ था। जब गेंद अन्दर की तरफ़ लुढ़काया जा रहा हो तब कोई खिलाड़ी साइड लाइन से सात गज़ की दूरी तक न तो खड़ा होगा और न अपनी स्टिक रखेगा। जो खिलाड़ी गेंद को भीतर की ओर लुढ़का रहा हो वह अपने पैर और स्टिक पूरी तरह से साइड लाइन के पीछे रखेगा। गेंद अन्दर की ओर किसी भी दिशा में लुढ़काया जा सकता है। जिस खिलाड़ी ने गेंद भीतर लुढ़काया होगा वह गेंद को उस समय तक फिर से न खेलेगा जब तक कि वह किसी दूसरे खिलाड़ी के द्वारा छुआ या हिट न कर दिया गया हो।

यदि भीतर लुढ़कानेवाला खिलाड़ी इस नियम का किसी प्रकार उल्लंघन करता है तो विपक्षी टोली के सदस्य द्वारा गेंद दुबारा अन्दर की ओर लुढ़काया जायगा।

२०. यदि आक्रमणकारी टोली के किसी सदस्य द्वारा गेंद गोल लाइन के ऊपर से फेंक दिया जाता है और गोल नहीं बनता और यदि रेफ़री की राय में वह रक्षात्मक टोली के किसी ऐसे सदस्य द्वारा अनजान में ऊपर से फेंक दिया जाता है जो अपने पच्चीस में नहीं है तो गेंद उस स्थान से, जहां से वह गोल लाइन के ऊपर से गया होगा, पच्चीस गज़ की दूरी तक समकोण अवस्था में ले आया जायगा और वहां बुली ऑफ़ कर दिया जायगा। जब बुली ली जा रही हो तब सारे खिलाड़ी ऑन साइड होंगे, अर्थात् गेंद की अपेक्षा वे स्वयं अपनी गोल लाइन के अधिक निकट होंगे।

२१. « पेनाल्टी बुली ». पेनाल्टी बुली उस हालत में दी जायगी जब कि रेफ़री की राय में यदि नियमों का उल्लंघन न हुआ होता तो शायद एक गोल बन जाता और विशेषरूप से ऐसे मामलों में जहां जानबूझकर नियम का उल्लंघन किया गया हो, जबकि इस प्रकार से उल्लंघन न होने पर शायद एक गोल बन जाता। चाहे गोल बनाने का प्रश्न कहीं अधिक अनिश्चित ही क्यों न हो, फिर भी जानबूझकर नियमों का उल्लंघन किये जाने पर रक्षात्मक टोली द्वारा एक पेनाल्टी बुली दी जा सकती है।

बुली अपराधी द्वारा अथवा यदि अपराधी को मैदान से बाहर जाने का आदेश दे दिया गया हो या अपराधी किसी तरह से असमर्थ हो गया हो तो रक्षात्मक टोली

के किसी सदस्य द्वारा और आक्रमणकारी टीम के किसी सदस्य द्वारा उस स्थान पर, जहां ब्रीच हुई हो, ली जायगी। जब तक पेनाल्टी बुली पूरी न हो जाय तब तक और सब खिलाड़ी पासवाली २५ गज़ लाइन के उस पार रहेंगे।

यदि बुली लेते समय गेंद पूरी तरह से उस गोल लाइन के ऊपर से निकल जाय, जो मारनेवाले वृत्त के भीतर हो, परन्तु गोल-स्तम्भों के बीच में न हो और अपराधी की स्टिक अथवा शरीर से दूर हो तब बुली फिर से ली जायगी।

यदि गेंद गोल-स्तम्भों के बीच से होकर निकल जाय तो एक गोल बन जायगा और सब मामलों में गेंद ज्योंही मारनेवाले वृत्त के पूर्णतः बाहर निकल जायगा त्योंही २५ गज़ की निकटतर लाइन के बीचों-बीच एक बुली द्वारा खेल फिर से आरम्भ हो जायगा।

रक्षा करनेवाले के द्वारा किसी प्रकार की ब्रीच होने पर आक्रमणकारी टोली को एक पेनाल्टी गोल दिया जायगा। आक्रमणकारी द्वारा किसी प्रकार की ब्रीच होने पर रक्षात्मक टोली को एक फ्री हिट दिया जायगा।

२२. यदि गेंद रेफरी को स्ट्राइक करना है तो वह (गेंद) खेला जाता रहेगा। यदि गेंद गोलरक्षक के पैडों (Pads) में या किसी खिलाड़ी के कपड़ों में अटक जाता है तो रेफरी खेल को रोक देगा और जहां पर घटना हुई होगी वहां पर एक बुली देकर खेल को फिर से आरम्भ करेगा; पर शर्त यह है कि वृत्त के अन्दर गोल लाइन से ५ गज़ की दूरी के अन्दर-अन्दर कोई बुली न ली जायगी। रेफ़री के निश्चय ही अन्तिम निश्चय होंगे। रेफ़री उस समय तक कोई पेनाल्टी न देगा जब तक कि उस पक्ष को, जिसे वह पेनाल्टी दे रहा हो, उससे कोई लाभ न हो। पेनाल्टी का उद्देश्य है दंड देना। अगर नियमों का उल्लंघन करने के लिए टोकने और फ्री हिट देने से उस पक्ष को, जिसे हिट दिया जा रहा हो, कोई लाभ न हो तो रेफ़री को पेनाल्टी नहीं देनी चाहिए।

रेफ़री को इस बात का अधिकार है कि वह खिलाड़ियों को रद्दी खेल तथा दुश्चरित्रता के अपराध में मैदान से बाहर निकाल दे। गम्भीर मामलों को छोड़कर खिलाड़ियों को पहले चेतावनी दे दी जानी चाहिए और यदि उसके बाद भी वे रद्दी ही खेल खेलते रहें तो उनको खेल में और अधिक भाग लेने से रोक दिया जाना चाहिए।

एसोसियेशन फ़ुटबॉल

१. खेल में दोनों पक्षों में ग्यारह-ग्यारह खिलाड़ी होने चाहिए।

२. साधारण रूप से क्रीड़ा-स्थल की लम्बाई ११५ गज़ और चौड़ाई ७५ गज़ होनी चाहिए। न्यूनतम लम्बाई १०० गज़ और अधिकतम लम्बाई १३० गज़ होनी चाहिए। न्यूनतम चौड़ाई ५० गज़ और अधिकतम चौड़ाई १०० गज़ होनी चाहिए।

३. गोल लाइनों पर दोनों ओर एक-एक सीधे खम्भे गाड़कर गोल बना दिये

जाने चाहिए। कॉर्नर फ्लैगों से उनकी दूरी बराबर होनी चाहिए। दोनों गोलों के बीच की दूरी ८ गज होनी चाहिए और दोनों के बीच में एक क्रॉस-बार होना चाहिए जो ज़मीन से ८ फ़ीट ऊंची हो। गोल के खम्भों और क्रॉस बार की अधिक-से-अधिक चौड़ाई ५ इंच होनी चाहिए।

४. गोल का क्षेत्र वह क्षेत्र होता है जो उन रेखाओं से घिरा होता है जो ६ गज लम्बी हों और गोल-स्तम्भ के दोनों तरफ़ छः गज़ की दूरी पर गोल लाइन के साथ समकोण बनाती हुई खींची जायँ और जिनके एक ओर वह रेखा हो जो इन दोनों रेखाओं को मिलाने के लिए गोल रेखा के समानान्तर खींची गई हो।

५. पेनाल्टी-क्षेत्र वह क्षेत्र होता है जो दोनों ओर गोल-स्तम्भों से १८ गज़ लम्बी रेखाओं तथा उस रेखा के द्वारा घिरा हो जो इन दोनों रेखाओं को मिलाने के लिए गोल लाइन के समानान्तर खीची गई हो।

६. गेंद की परिधि २७ इंच से कम और २८ इंच से अधिक न होनी चाहिए।

७. खेल का समय ९० मिनट होता है; परन्तु आपस में कम या अधिक समय तय किया जा सकता है।

८. टॉस जीतनेवाला अपनी इच्छा के अनुसार पक्ष चुन सकेगा अथवा किक-ऑफ़ ले सकेगा।

९. खेल का आरम्भ क्रीड़ा-स्थल के केन्द्र से एक प्लेस किक (place kick) द्वारा होगा। गेंद विपक्षियों की गोल लाइन की दिशा में किक किया जायगा। गेंद जब तक किक न कर दिया गया हो तब तक विपक्षी को गेंद से १० गज़ की दूरी के भीतर नहीं आना चाहिए और न ही उस समय तक, जब तक कि गेंद किक न कर दिया जाय, दोनों पक्षों में से किसी के भी खिलाड़ी को मैदान के केन्द्र से होकर अपने विपक्षियों की गोल लाइन की दिशा में गुज़रना चाहिए।

१०. आधे समय के बाद पक्ष बदल लिये जाने चाहिए। आधे समय पर ५ मिनट का अवकाश होना चाहिए। गोल बन जाने पर जो पक्ष अपना दाँव खो चुकता है वह मैदान के केन्द्र से किक देगा और आधे समय के बाद गेंद को उस पक्ष के विपक्षी किक करेंगे जिसने खेल के आरम्भ में किक किया था।

११. जब पूरा गेंद गोल-स्तभों के बीच क्रॉस-बार के नीचे से होता हुआ गुजर जाता है तो एक गोल बनता है। पर शर्त यह है कि गेंद आक्रमणकारी पक्ष के किसी खिलाड़ी द्वारा न तो फेंका गया हो, न मारा गया हो और न ले जाया गया हो।

१२. जब पूरा गेंद जमीन पर या हवा में गोल लाइन या टच लाइन (Touch line) को पार करके बाहर निकल जाय तो वह आउट हो जाता है। यदि वह गोल-स्तम्भ, क्रास-बार या कॉर्नर फ्लैग को छूकर मैदान में लौट आये तो आउट नहीं होता।

१३. जब गेंद टच लाइन को पार कर जायगा तब जिस पक्ष ने उसे पहले खेला था उस पक्ष के विपक्षी दल का एक खिलाड़ी उसको टच लाइन के उस बिन्दु से

अन्दर फेंकेगा जहां से वह बाहर गया था। जो खिलाड़ी गेंद को अन्दर फेंकेगा, वह अनिवार्यरूप से खेल के मैदान की ओर सीधा मुंह करके खड़ा होगा और अपनी एँड़ियो को ज़मीन से उठाये बिना गेंद को उठाकर दोनों हाथों से अपने सिर के ऊपर उठाकर किसी दिशा में अन्दर फेंकेगा। जब गेंद इस तरह से अन्दर फेंका जायगा तब वह आउट तो न होगा, पर अन्दर फेंके जाने से गोल बन जाना ज़रूरी नहीं, और वह खिलाड़ी, जिसने गेंद भीतर फेंका था, उस समय तक गेंद को फिर से न खेल सकेगा जब तक कि वह किसी दूसरे खिलाड़ी के द्वारा खेला न जा चुका हो। अनुचित ढग से अन्दर फेंकने की पेनाल्टी के रूप मे विपक्षी दल को एक थ्रो दे दिया जाता है।

१४. जब एक खिलाड़ी गेद खेलता है तब उसी के पक्ष का कोई खिलाड़ी, जो उस समय औरों की अपेक्षा अपने विपक्षियों की गोल लाइन के अधिक निकट हो, ऑफ़ साइड हो जायगा और वह गेंद को न छू सकेगा, न ही विपक्षी के साथ किसी तरह से हस्तक्षेप कर सकेगा और न उस समय तक खेल मे किसी प्रकार से भाग ले सकेगा जब तक कि गेंद फिर से खेला न जा चुका हो और जब तक कि उस समय कम-से-कम उसके तीन विपक्षी उसके और उनकी (विपक्षियों की) गोल लाइन के बीच में न आ जायँ। खिलाड़ी उस दशा में ऑफ़-साइड नहीं होता जब कि गेंद गोल से मारा जाता है, जब कॉर्नर किक लिया जाता है, जब उसके पहले गेंद एक विपक्षी के द्वारा खेला जा चुका हो, या जब गेंद उसके अपने पक्ष के किसी सदस्य द्वारा खेला जा रहा हो उस समय वह मैदान के अपने आधे हिस्से के अन्दर हो। ऑफ़-साइड होने की पेनाल्टी के रूप में विपक्षी दल को एक फ़्री किक दिया जाता है।

१५. जब आक्रमणकारी पक्ष के खिलाड़ी द्वारा गेंद गोल लाइन के पीछे खेला जाता है तब बचाव-पक्ष के किसी सदस्य द्वारा उस गोल-क्षेत्र के उस अर्द्धभाग के अन्दर एक ऐसे स्थान से किक किया जाना चाहिए जो उस बिन्दु के निकटतम हो जहां से गेंद आउट हुआ हो। परन्तु यदि गेंद बचाव-टोली के सदस्य द्वारा पीछे खेला जाता है तो आक्रमणकारी टोली का एक सदस्य गेंद को उस जगह से किक करेगा जिसकी दूरी निकटतम कॉर्नर फ्लैग से एक गज़ से कम हो। दोनों ही हालतों में विपक्षी को उस समय तक गेंद से १० गज़ की दूरी के अन्दर-अन्दर न आने दिया जायगा जब तक कि गेंद किक न कर दिया गया हो।

१६. खिलाड़ी गेंद को इरादा करके हाथ नहीं लगा सकता, अर्थात् वह हाथ या बांह से गेंद को नहीं खेल सकता। गोलरक्षक स्वयं अपने पेनाल्टी-क्षेत्र के अन्दर अपने हाथों का प्रयोग कर सकता है पर गेंद को ले नहीं जा सकता। वह गेंद को पकड़े हुए या अपने हाथ पर रोके हुए केवल दो क़दम चल सकता है। इस नियम को भंग करने के दंडस्वरूप विपक्षी दल को एक फ़्री किक मिलेगा। गोलरक्षक द्वारा नियम-भंग होने से फ़्री किक मिलता है, पेनाल्टी किक नहीं। यदि गोलरक्षक द्वारा ब्रीच पेनाल्टी-क्षेत्र में होती है तो फ़्री किक पेनाल्टी-क्षेत्र के बाहर से लिया जायगा।

१७. खिलाड़ी को धक्का देने, लात मारने, ढकेलने या उसके ऊपर कदने की

आज्ञा न दी जानी चाहिए। दंड के रूप में विपक्षी दल को एक फ़्री किक दिया जायगा।

१८. खिलाड़ी अपने विपक्षी को पकड़ने या धक्का देने के लिए हाथों का प्रयोग नहीं करेगा। बांह या बांहों को फैलाकर रोकने की आज्ञा न होगी। दंड के रूप में विपक्षी दल को एक फ़्री किक दिया जायगा।

१९. गोलरक्षक केवल उस दशा में चार्ज किया जा सकता है जब कि वह गेंद पकड़े हो, या विपक्षी को रोक रहा हो, या वह गोल-क्षेत्र के बाहर चला गया हो।

२०. खेल के बीच में गोलरक्षक बदला जा सकता है, पर इस प्रकार के परिवर्तन की सूचना रेफ़री को दे दी जानी चाहिए। यदि रेफ़री को सूचना दिये बिना गोल-रक्षक बदल दिया जाता है और नया गोलरक्षक गेंद को पेनाल्टी क्षेत्र में हाथ लगाता है तो उसके विरुद्ध एक पेनाल्टी किक दिया जायगा।

२१. चार्ज करने की स्वीकृति है, पर वह न तो हिंसात्मक होना चाहिए और न ख़तरनाक। खिलाड़ी को पीछे से उस समय तक चार्ज दिया जाना चाहिए जब तक वह जानबूझकर विपक्षी का रास्ता न रोक रहा हो।

२२. जब फ़्री किक दिया गया हो उस समय जब तक कोई विपक्षी स्वयं अपनी गोल लाइन पर न खड़ा हो, उसे (विपक्षी को) गेंद से १० गज़ की दूरी के भीतर न आना चाहिए। यह आवश्यक है कि खेले जाने के पूर्व गेंद कम-से-कम लुढ़का तो दिया ही गया हो। किक करनेवाला गेंद को उस समय तक दुबारा न खेलेगा जब तक कि वह दूसरे खिलाड़ी द्वारा न खेला जा चुका हो। जब किक लिया जाता है उस समय गेंद स्थिर होना चाहिए। दंड के रूप में विरोधी पक्ष को एक फ़्री किक दिया जाता है।

२३. धक्का देने, मारने, ढकेलने, विपक्षी के ऊपर कूदने, उसे हाथ लगाने, पकड़ने, विपक्षी को ढकेलने और विपक्षी द्वारा नाजायज़ चार्ज करने के लिए दिये जानेवाले फ़्री किक से गोल बन सकता है। जो फ़्री किक दूसरे हिस्से में चले जाने के लिए दिया जाता है उससे गोल नहीं बनता।

२४. जब नियमों को तोड़ने के लिए फ़्री किक दिया जाता है तो किक उस जगह से लिया जाता है जहां नियम तोड़ा गया हो। २३ नं० के नियम में बताये गये उल्लंघनों और ऑफ़-साइड के लिए भी गोलरक्षक द्वारा ले जाने, गोलरक्षक को नाजायज़ ढंग से चार्ज करने, फ़्री किक लेने के लिए नियम का उल्लंघन करने और जब एक खिलाड़ी मैदान के बाहर निकाल दिया जाता है और गेंद रेफ़री द्वारा फेंका जाता है (२६ नियम देखिए) तो उसके ज़मीन में पहुँचने के पहले ही खेलने के लिए दंड के रूप में फ़्री किक दिये जाते हैं। उल्लंघन होने पर भी यदि उससे उसको लाभ होने की सम्भावना हो जिसको फ़्री किक मिलना है तो रेफ़री को चाहिए कि वह फ़्री किक न दे। पेनाल्टी क्षेत्र में उल्लंघन करने के लिए दंड के रूप में दिया जानेवाला फ़्री किक पेनाल्टी क्षेत्र के बाहर लिया जाना चाहिए।

२५. बचाव पक्ष के एक सदस्य द्वारा पेनाल्टी-क्षेत्र के अन्दर जान-बूझकर १६, १७, १८, २१ नं० के नियमों का उल्लंघन किये जाने पर विपक्षी दल को उस स्थान से पेनाल्टी किक दिया जाना चाहिए जो गोल के केन्द्र के ठीक सामने हो और गोल से १२ गज़ की दूरी पर हो। जब पेनाल्टी किक लिया जा रहा हो तब किक लेनेवाले खिलाड़ी और विपक्षी गोलरक्षक को छोड़कर और सारे खिलाड़ी पेनाल्टी-क्षेत्र के बाहर होने चाहिए। गोलरक्षक को अपनी गोल लाइन के आगे बढ़ना चाहिए। गेंद आगे की तरफ़ किक किया जाना चाहिए। पेनाल्टी किक से एक गोल बन सकता है; परन्तु जब किक करनेवाला एक गेंद को एक बार किक कर चुका होता है तब वह उसे उस समय तक दुबारा नहीं खेल सकता जब तक कि वह किसी दूसरे खिलाड़ी द्वारा न खेला जा चुका हो। यदि पेनाल्टी किक लेते समय गेंद गोल-स्तम्भों के बीच से और क्रॉस-बार के नीचे से गुज़रता है तो बचाव-पक्ष द्वारा नियमों का उल्लघन होने पर भी गोल दिया जायगा। आक्रमणकारी-पक्ष द्वारा किक लेते समय नियमों का उल्लघन होने से बचाव पक्ष को एक फ़्री किक दिया जायगा।

२६. यदि किसी कारण से खेल कुछ समय के लिए बन्द कर दिया जाता है और गेंद न तो गोल लाइन के बाहर और न पीछे जाता है तो रेफ़री गेंद को उस जगह डाल देगा जहां वह खेल बन्द होते समय पड़ा था और ज़मीन छू लेने के बाद वह फिर खेला जाने लगेगा। यदि रेफरी द्वारा गिराये जाने के बाद गेंद किसी खिलाड़ी के द्वारा खेले जाने के पूर्व गोल लाइन के बाहर या पीछे चला जाता है तो रेफ़री उसे फिर से गिरा देता है।

२७. रेफरी का कर्तव्य है नियमों को लागू करना और जिन बातों पर झगड़ा हो उनका निर्णय करना। वह खेल का रिकॉर्ड और समय का हिसाब रखेगा। किसी कारण से समय नष्ट हो जाने पर वह समय बढ़ा देगा, परन्तु अँधेरा हो जाने पर, दर्शकों द्वारा हस्तक्षेप होने पर या और किसी कारण से जब वह आवश्यक समझे तब वह खेल को बन्द कर सकता है। यदि किसी खिलाड़ी का आचरण हिंसात्मक या ख़तरनाक हो तो रेफ़री बिना चेतावनी दिये ऐसे खिलाड़ी को मैदान छोड़ देने का आदेश दे सकता है।

रगर टच

१. क्रीडास्थल की लम्बाई-चौड़ाई. लम्बाई १८० फ़ीट, चौड़ाई ८० फ़ीट हो और प्रत्येक सिरे पर १५ फ़ीट चौड़ी गैलरी हो। मैदान के केन्द्र से होती हुई एक रेखा खींची जानी चाहिए। ७ या उससे कम खिलाड़ियों के लिए एक स्थल इतना बड़ा होना चाहिए। यदि टोलियों में ११ खिलाड़ी हों तो मैदान उतना ही बड़ा होना चाहिए जितना हॉकी का क्रीड़ास्थल होता है। प्रत्येक सिरे की गैलरियाँ उतनी ही चौड़ी होंगी जितनी छोटे मैदान की होती हैं, अर्थात् १५ फ़ीट।

२. खिलाड़ी फॉर्वर्ड, हाफ़, फ़ुल बैक में विभाजित कर दिये जाने चाहिए। यदि सात खिलाड़ी हों तो ३ आगे, २ आधे और २ फ़ुल बैक होने चाहिए।

३. जो गेंद प्रयोग में लाया जाय वह रगबी (Rugby) फ़ुटबॉल होना चाहिए।

४. खेल आरम्भ करने के लिए रेफ़री गेंद क्रीड़ास्थल के केन्द्र में ज़मीन पर उछालता है। तब गेंद खेला जाने लगता है।

५. खिलाड़ी गेंद को पकड़ते और उसके साथ दौड़ते हैं। वे गेंद को दूसरे खिलाड़ी के हाथ से छीन नहीं सकते, खिलाड़ियो को धक्का नही दे सकते या किसी तरह से विपक्षियों को हाथ नही लगा सकते। ज्योही वे छू जाते है उन्हें गेंद दूसरे को दे देना होता है या उसे गिरा देना होता है। खिलाड़ी ज्योही विपक्षी द्वारा छू जाता है त्योंही उसे गेंद दूसरे को दे देना पड़ता है। छू जाने के बाद गेंद दूसरे को दे देने के पूर्व वह दो से ज्यादा क़दम नही उठा सकता।

६. गेंद हाथों से फेंककर दूसरे को दिया जाता है। खिलाड़ी अपने शरीर के किसी अंग से गेंद को पकड़कर नहीं ले जा सकता। गेंद के ऊपर थापी एक हाथ से नही मारी जा सकती। वह सफ़ाई के साथ पकड़ लिया जाना चाहिए और तब फेंक कर दूसरे को दिया जाना चाहिए। खिलाड़ी उस समय तक गेंद न तो दूसरे को दे सकता है और न उसको स्वयं फिर से पकड़ सकता है जब तक कि वह किसी दूसरे खिलाड़ी द्वारा छू न लिया गया हो।

७. यदि गेंद ज़मीन पर पड़ा हो तो वह उठा लिया जाना चाहिए और दूसरे को दे दिया जाना चाहिए।

८. जब कोई खिलाड़ी अपने विपक्षी की गैलरी के दूरवाले किनारे पर पहुँचने में और किसी के द्वारा छूए गये बिना उस गैलरी के पीछेवाली लाइन के दूरवर्ती किनारे पर गेंद को जमीन के ऊपर रखने में सफल होता है तब एक गोल बनता है। गोल बनाने के लिए गेंद दोनों हाथों से ज़मीन के ऊपर रख दिया जाना चाहिए। गेंद नीचे ज़मीन के ऊपर नहीं खींचा जा सकता और एक हाथ से स्थान मे नही रखा जा सकता। गेंद विपक्षी की गैलरी की पीछेवाली लाइन के दूरवर्ती किनारे पर ज़मीन के ऊपर कहीं भी रखा जा सकता है; पर वह सीमा-रेखाओं के काल्पनिक विस्तार के भीतर होना चाहिए।

९. कोई खिलाड़ी अपने विपक्षी की गैलरी में उस समय तक प्रवेश नही कर सकता जब तक कि गेंद उसके अधिकार में न हो। यदि वह ऐसा करता है तो वह ऑफ़ साइड हो जाता है और उसके विरुद्ध एक पेनाल्टी थ्रो दिया जाता है। यदि खिलाड़ी उस समय छू जाता है जब कि वह अपने विपक्षी की गैलरी मे हो तो उसे तुरन्त गेंद नीचे गिरा देना चाहिए।

१०. नियमों का किसी प्रकार उल्लंघन होने पर अपराधी खिलाड़ी के विपक्षियों को एक फ़्री थ्रो दिया जायगा।

११. यदि बिना गोल बनाये गेंद गोल लाइन के पीछे चला जाता है तो बचाव-पक्षवाले फ़ुल बैक्स (Full backs) द्वारा वह खेलने के लिए फेंक दिया जायगा। यदि गेंद या गेंद ले जानेवाला खिलाड़ी साइड लाइन के ऊपर चला जाता है तो गेंद उस खिलाड़ी के विपक्षियों द्वारा, जिसने गेंद को पिछली बार छुआ था या जो उसको ले जा रहा था, खेलने के लिए फेंक दिया जायगा। वह उसी जगह फेंका जायगा जहां से वह बाहर गया था।

क्रिकेट

मेरीलिबोन क्लब द्वारा दोहराये गये नियम* १८८४-१९३२

१. मैच दो पक्षों के बीच में खेला जाता है। जब तक और कुछ तय न हो दोनों पक्षों में ग्यारह-ग्यारह खिलाड़ी होते हैं। प्रत्येक पक्ष की दो इनिंग्ज़ (Innings) होती हैं जो नियम ५३ में बताये हुए मामले को छोड़कर दोनों ओर से एक के बाद एक ली जायँगी। इनिंग्ज़ के चुनाव का निर्णय सिक्का उछालकर किया जायगा।

२. स्कोर (Score) की गणना रनों (Runs) से होगी। रन उस हालत में बनेगा जबकि—

(क) हिट के बाद अथवा जब गेंद खेला जा रहा हो उस समय-बैटमैन अपने मैदान को एक सिरे से दूसरे सिरे तक जितनी बार पूरा-पूरा पार कर लें।

(ख) नियम १६, ३४, ४१ के अन्तर्गत दिये जानेवाले दंडों (Penalties), और नियम ४४ के अन्तर्गत दिये जानेवाले मुजरों (Allowances) के लिए।

इस प्रकार से बनाया जानेवाला एक या एक से अधिक रन स्कोरर (Scorer) द्वारा, जो इसी काम के लिए नियुक्त किया गया हो, नियमपूर्वक लिख लिया जायगा। जिस पक्ष के रनों की संख्या ज़्यादा होती है वही मैच जीतता है। नियम ४५ में बताये गये मामले को छोड़कर कोई भी मैच उस समय तक जीता नहीं जा सकता जब तक कि वह खेला या छोड़ा न जाय।

३. मैच आरम्भ होने के पहले प्रत्येक सिरे के लिए एक-एक अम्पायर (Umpires) नियुक्त किया जायगा।

४. गेंद का वज़न साढ़े पांच औंस से कम और पौने छः औंस से अधिक न होगा।

---

* क्रिकेट प्रेस, २५ टेम्पल चैम्बर्स (Temple Chambers), टेम्पल एवेन्यू, लंदन, ई० सी० ४ की आज्ञा से १९३३ में दि लॉ ऑफ़ क्रिकेट से पुनर्मुद्रित (मूल्य ३ पेंस)।

उसकी परिधि ८$\frac{13}{16}$ इंच से कम और ९ इंच से अधिक न होगी। प्रत्येक इनिंग के आरम्भ में दोनों पक्षों में से कोई भी एक नया गेंद मांग सकता है।

५. बैट का सबसे चौड़ा हिस्सा ४$\frac{1}{4}$ इंच से ज्यादा न होगा। इसकी लम्बाई ३८ इंच से अधिक न होगी।

६. खूटियाँ (Wickets) २२ गज़ की दूरी पर एक-दूसरे के आमने-सामने समानान्तर गाड़ी जायँगी। प्रत्येक खूंटी की चौड़ाई आठ इंच से कम और नौ इंच से अधिक न होगी। खूंटी में तीन छोटे डंडे होंगे और उनके सिरे पर दो गुल्लियाँ होंगी। डंडे नाप मे बराबर होंगे और इतने काफ़ी बड़े होंगे कि वे गेंद को मैदान के बाहर २७ इंच से कम और २८ इंच से अधिक दूरी तक जाने से रोक सकें। गुल्लियों की लम्बाई ४ इंच से कम और साढ़े चार इंच से अधिक न होगी और जब वे डडों (Stumps) के ऊपर लगी हुई हों उस समय वे उनके ऊपर आध इंच से अधिक ऊपर उठी हुई न होंगी। मैच के बीच में खूटियों की स्थिति उस समय तक बदली न जायगी जब तक कि उनके बीच की ज़मीन खेल के लिए अयोग्य नही बन जाती। उस समय भी केवल दोनों पक्षों की अनुमति से ही ऐसा किया जा सकता है।

७. बाउलिंग क्रीज़ (Bowling Crease) स्टम्प्स (Stumps) की लाइन में लम्बाई में ८ फ़ीट ८ इंच; बीच में स्टम्प्स; खूंटी के पीछे प्रत्येक सिरे पर एक रिटर्न क्रीज़ (Return Crease) के साथ समकोण बनाती हुई होगी।

८. पॉपिंग-क्रीज़ (Popping Crease) का चिह्न खूटी से ४ फ़ीट की दूरी पर लगाया जायगा। दूरी समानान्तर होगी और क्रीज़ की लम्बाई सीमित न होगी।

९. बैटमैन ज़मीन को चिकनी बनाने के लिए उसके ऊपर बैट मार सकता है और बैटमैन अथवा बाउलर अपने पैरों को ठीक से जमाने के लिए बुरादे का प्रयोग कर सकते हैं।

१०. गेंद लुढ़काया जाना चाहिए; यदि फेंका जाय या उसे झटका दिया जाय तो दोनों अम्पायर "नो बॉल" कहेंगे।

११. बाउलर बाउलर-क्रीज़ के पीछे और रिटर्न-क्रीज़ के अन्दर-अन्दर गेंद को ज़मीन के ऊपर एक पैर से फेकेगा, अन्यथा अम्पायर चिल्लाकर "नो बॉल" कहेगा।

१२. यदि बाउलर गेंद को इतना ऊंचा फेंके या खूँटी (Wicket) से उसकी दूरी इतनी अधिक हो कि अम्पायर की राय में वह मारनेवाले (Striker) की पहुंच से बाहर हो तो अम्पायर चिल्लाकर "वाइड बॉल (Wide Ball)" कहेगा।

१३. हर खूंटी से गेंद बारी-बारी से छः-छः बार फेंका जायगा, जब गेंद छः बार उछाला जा चुकेगा और निश्चितरूप से बाउलर या खूंटीरक्षक (Wicket Keeper) के हाथों में आ जायगा तब अम्पायर चिल्लाकर "ओवर (Over)" कहेगा। "नो बॉल" अथवा "वाइड बॉल" दोनों में से किसी की भी गिनती "ओवर" में न की जायगी।

१४. बाउलर अपनी इच्छा के अनुसार जब चाहे सिरे बदल सकता है, पर शर्त

केवल यह है कि वह एक इनिंग में लगातार दो बार 'ओवर' न फेंके।

१५. बाउलर उस खूंटीवाले बैटमैन से, जहां से वह गेंद फेंक रहा हो, खूंटी के उस ओर, जिधर वह बताये, खड़े होने के लिए कह सकता है।

१६. स्ट्राइकर "नो बॉल" मार सकता है और फलस्वरूप जो भी रन बनें वह उसके स्कोर में जोड़ दिये जायंगे; पर जब तक वह रन आउट (Run Out) न हो, अथवा नियम २६, २७, २९, ३० को न तोड़े तब तक वह "नो बॉल" से बाहर न होगा। जितने भी रन बैट के अलावा किसी और तरह से "नो बॉल" से बनाये जायँ वे सब "नो बॉल" बनेंगे और यदि कोई रन न बने तो एक रन स्कोर में जोड़ दिया जायगा। "वाइड बॉल" से जितने भी रन बनाये जायंगे वे सब "वाइड बॉल" कहकर स्कोर में जोड़ दिये जायगे और यदि किसी दूसरी तरह से कोई भी रन न बने तो एक रन जोड़ दिया जायगा।

१७. यदि गेंद "वाइड" या "नो बॉल" कहे गये बिना मारनेवाले के पास उसकी बैट या उसके शरीर को छुए बिना चला जाय और कुछ रन बन जायँ तो अम्पायर "बाई (Bye)" कहकर चिल्लायेगा। परन्तु यदि गेंद मारनेवाले के शरीर के किसी अंग को छू ले (हाथ को छोड़कर) और कोई रन बन जाय तो अम्पायर "Leg Bye" कहकर चिल्लायेगा। ऐसे रन क्रम से "बाईज़ (Byes)" और "लेग बाईज़ (Leg Byes)" बनेंगे।

१८. मैच और प्रत्येक इनिंग के आरम्भ में बाउलर (फेंकनेवाले) की खूंटीवाला अम्पायर चिल्लायेगा "खेलो"। उस समय से खूटियों के बीच में ज़मीन के ऊपर किसी बाउलर को ट्रायल बॉल को आज्ञा न दी जायगी और जब बैटमैनों में से एक बैटमैन बाहर होगा तब उस समय तक, जब तक कि वह अन्दर न हो जाय, किसी भी व्यक्ति को बैट का प्रयोग करने की आज्ञा न दी जायगी।

१९. जब तक कि बैटमैन की बैट, चाहे वह हाथ में हो या शरीर के किसी हिस्से में हो, पॉपिंग-क्रीज (Popping Crease) की लाइन के अन्दर ज़मीन पर न गिरा दी जायगी तब तक वह "मैदान से बाहर" समझा जायगा।

२०. जब खूंटे के ऊपर की दोनों गुल्लियां मारकर गिरा दी जायंगी, अथवा जब छोटा डंडा (Stump) ज़मीन से उखाड़कर फेंक दिये जाने के कारण दोनों गुल्लियां अलग हो जायंगी तब खूटा (Wicket) डाउन (Down) समझा जायगा।

स्ट्राइकर उस दशा में आउट होगा.

२१. यदि खूंटा नीचे फेंक दिया जाता है तो गेंद चाहे मारनेवाले की बैट अथवा शरीर को पहले ही क्यों न छू चुका हो, वह "बाउल्ड (Bowled)" कहा जायगा।

यदि खूंटे के ऊपर चोट पड़ने के कारण दोनों में से कोई भी गुल्ली डंडों के सिरे पर होनेवाली अपनी असली जगह से हट जाती है तो अम्पायर का यह कहना न्याय-पूर्ण होगा कि गुल्ली पर चोट पड़ी है ("Struck off")।

२२. या, यदि गेंद बैट अथवा हाथ की चोट से, परन्तु कलाई से नहीं, ज़मीन को छूने के पहले ही रोक लिया जाता है तो चाहे वह पकड़नेवाले के शरीर से चिपका ही क्यो न रहे, वह 'कॉट (Caught)' मान लिया जायगा।

२३. या, यदि गेंद खेलने में, शर्त यह है कि वह बैट अथवा हाथ से छुआ न जाय, मारनेवाला अपने मैदान के बाहर हो और खूटा खूंटारक्षक (Wicket-keeper) के द्वारा गेंद के सहित, अथवा हाथ से या बाह से गेंद हाथ में पकड़कर नीचे रख दिया जाय तो वह "स्टम्प्ड (Stumped)" होगा।

२४. या, यदि वह अपने शरीर के किसी अग के द्वारा गेंद को रोक लेता है जिसको फेंकनेवाले के खूटे पर रहनेवाले अम्पायर की राय में मारनेवाले के खूटे की सीध में फेंका जाना चाहिए था और उसे (खूंटे को) चोट पहुंचाना चाहिए था तो उसे "लेग बिफोर विकेट (खूंटे के पहले टाग)" कहेंगे। नोट—प्रयोगात्मक परिवर्तित ले० बि० वि० (Leg before wicket) नियम, जिसका खेल का स्थायी नियम बन जाना क़रीब-क़रीब निश्चित है, इस प्रकार है :—

यदि मारनेवाला अपने शरीर के किसी हिस्से से (हाथ को छोड़कर), जो खूटों के बीच में हो, उस गेंद को रोक लेता है जो बाउलर के खूटेवाले अम्पायर की राय में बाउलर के खूटे से स्ट्राइकर के खूटे की ओर सीधी लाइन में फेंका जाना चाहिए या स्ट्राइकर के ऑफ़ साइड पर फेंका जाना चाहिए और उसको हिट करता रहा हो।

२५. या, यदि गेंद खेलते समय वह खूटे को अपनी बैट अथवा अपने शरीर के किसी हिस्से से या पोशाक से हिट करता हो तो "उसका खूँटा (Hit wicket)" होगा।

२६. या, यदि दौड़ने या किसी और बहाने से दो में से कोई भी बैटमैन जान-बूझकर गेंद को पकड़े जाने से रोक लेता है तो 'ऑब्सट्रक्टिंग दि फ़ील्ड (Obstructing the field)" होगा।

२७. या, यदि गेंद मारा जाता है अथवा उसके शरीर के किसी अंग द्वारा रोका जाता है और वह जान-बूझकर उसको फिर से मारता है तो जब तक वह अपने खूंटे की रक्षा करने के लिए ऐसा नहीं करता, जो वह अपनी बैट से कर सकता है या हाथों को छोड़कर अपने शरीर के किसी अंग से कर सकता है, तो "हिट दि बॉल ट्वाइस" होगा।

दो में से कोई भी बैटमैन आउट होता है.

२८. यदि दौड़ने में, या किसी दूसरे समय, जब गेंद खेला जा रहा हो, बैटमैन मैदान से बाहर हो और उसका खूँटा गेंद के द्वारा किसी फ़ील्ड्समैन को छू लेने के बाद गिरा दिया जाय या किसी फ़ील्ड्समैन के हाथ या बांह द्वारा गेंद हाथ में लिये

हुए गिरा दिया जाय तो स्ट्राइकर उस समय तक आउट न कहा जायगा जब तक कि उस समय, जब कि 'नो बॉल' खेलते समय वह अपने मैदान से बाहर नहीं है और खूंटा खूँटारक्षक के द्वारा गेंद से अथवा गद हाथ में लेकर हाथ से या बांह से नीचा नही कर दिया जाता और गेंद बैट या हाथ को छू नहीं लेता वह "रन आउट" होगा।

२९. या, जब तक कि विपक्षी दल की ओर से प्रार्थना किये गये बिना वह गेंद को खेल के बीच में अपने हाथों से छू लेता है या ले लेता है तो "हैण्डल्ड दि बॉल" होता है।

३०. या, यदि यह जान-बूझकर किसी फ़ील्ड्समैन को रोक लेता है तो "ऑब्सट्रक्टिंग दि फ़ील्ड" कहलायेगा।

३१. यदि बैटमेन एक-दूसरे को पार कर लेते हैं तो वह बैटमैन, जो उस खूंटे के लिए दौड़ता है जो नीचा कर दिया जाता है, आउट हो जाता है; यदि वे एक-दूसरे को पार नहीं करते तो वह बैटमैन, जो नीचे किये गये खूंटे को छोड़ देता है, आउट हो जाता है।

३२. स्ट्राइकर के पकड़ लिये जाने पर कोई रन नहीं बनता। बैटमैन के रन-आउट हो जाने पर वह रन, जिसे बनाने की चेष्टा की जा रही होगी, नहीं बनेगा।

३३. (क) किसी कारण से बैटमैन के आउट हो जाने पर गेंद "डेड" (Dead) हो जायगा।

(ख) यदि गेंद, चाहे बैट से मारा गया हो या नहीं, बैटमैन के कपड़ों में फंस जाता है तो वह "डेड" हो जायगा।

३४. यदि खेलते समय गेंद न मिल सके और खो जाने पर उसका पता न लगे तो कोई भी फ़ील्ड्समैन चिल्ला सकता है—"लॉस्ट बॉल", तब गेंद डेड हो जायगा; स्कोर में छः रन जोड़ दिये जायँगे। लेकिन यदि "लॉस्ट बॉल" कहे जाने के पूर्व छः रन बनाये जा चुके हैं तो जितने रन उस समय बनेंगे उतने ही स्कोर किये जायँगे।

३५. निश्चितरूप से गेंद के खूंटारक्षक अथवा बाउलर के हाथ में ठहर जाने के बाद वह 'डेड' हो जायगा; परन्तु जब बाउलर गेंद देने ही जा रहा हो तब यदि गेंद दिये जाने के पहले उसके खूंटेवाला बैटमैन अपने मैदान से बाहर होगा तो वह बाउलर उसको बाहर कर सकता है; परन्तु यदि बाउलर उस खूंटे पर फेंके और एक रन बन जाय तो "नो बॉल" स्कोर होगा।

३६. दूसरे बैटमैन के अन्दर आ जाने के बाद विपक्षी दल की अनुमति के बिना बैटमैन अपने खूंटे से न तो अलग हो सकता है और न अपनी इनिंग्ज़ पूरी करने के लिए वापस आ सकता है।

३७. मैच के बीच मे किसी खिलाड़ी के बीमारी अथवा चोट के कारण खेलने में असमर्थ हो जाने पर उसके बदले में दूसरे खिलाड़ी को मैदान में आने और खूंटों के बीच में दौड़ने की आज्ञा दे दी जाती है, पर और किसी कारण के लिए विपक्षी दल की अनुमति के बिना ऐसा नही किया जा सकता।

३८. सभी मामलों में, जब बदले में दूसरे खिलाड़ी को आज्ञा दी जायगी, विपक्षी दल से उस व्यक्ति के लिए, जो एवज़ में काम करेगा, और मैदान की उस जगह की, जहां पर वह रहेगा, अनुमति लेनी पड़ेगी।

३९. उस दशा में, जब कि खूंटों के बीच में दौड़ने के लिए एवज़ में किसी खिलाड़ी को आज्ञा दी जायगी, यदि स्ट्राइकर या उसके एवज़ में काम करनेवाला अपने मैदान से बाहर है तो वह 'रन आउट' हो सकता है। जब गेंद खेला जा रहा हो उस समय यदि स्ट्राइकर अपने मैदान से बाहर हो तो वह खूंटा, जिसे उसने छोड़ दिया हो, नीचा किया जा सकता है और स्ट्राइकर को बाहर किया जा सकता है, चाहे दूसरे बैटमैन ने मैदान उस अन्त पर पूरा कर लिया हो और स्ट्राइकर और उसके एवज़ीदार ने दूसरे अन्त पर पूरा कर लिया हो।

४०. बदले के खिलाड़ी द्वारा किसी भी नियम का उल्लंघन होने पर बैटमैन को आउट किया जा सकता है।

४१. फील्डमैन गेंद को अपने शरीर के किसी भी भाग से रोक सकता है, परन्तु यदि वह जानबूझकर किसी अन्य ढंग से उसे रोक दे तो गेंद 'डेड' हो जायगा और पांच रन स्कोर में जोड़ दिये जायँगे। रन चाहे कितने ही क्यों न हो जायँ केवल पांच ही रन जोड़े जायँगे।

४२. खूंटारक्षक (Wicket keeper) खूंटे के पीछे खड़ा होगा। यदि वह गेंद को खूंटे से पास होने से पहले ही स्टम्प (Stump) करने के लिए ले ले या स्ट्राइकर (Striker) को किसी शोरगुल या गति द्वारा असुविधा पहुंचाये अथवा उसके शरीर का कोई भाग खूंटे के ऊपर या आगे हो तो स्ट्राइकर नियम २६,२७,२८,२९ और ३० को छोड़कर आउट नहीं होगा।

४३. अम्पायर ही खेल के उचित या अनुचित होने, मैदान के ठीक होने, ऋतु और खेल की रोशनी के एकमात्र निर्णयकर्ता होते हैं। सभी झगड़ों का निपटारा वही करेंगे और यदि उनमें मतभेद रहे तो स्थिति जैसी है वैसी ही बनी रहेगी।

४४. वे ठीक खूंटे गाड़ेंगे, जहां आवश्यक होगा सीमाओं (Boundaries) की व्यवस्था करेंगे और जब प्रत्येक पक्ष की इनिंग हो जायगी तो सिरे (End) बदल देंगे।

४५. वे प्रत्येक स्ट्राइकर को आने के लिए दो मिनट का समय और दो इनिंग्ज़ के बीच दस मिनट का समय देंगे। जब वे "प्ले (Play)" पुकारेंगे तब खेलने से इनकार करनेवाला पक्ष मैच हार जायगा।

४६. वे किसी बैटमैन को आउट होने का आर्डर तब तक न देंगे जब तक कि दूसरा पक्ष इसके लिए प्रार्थना न करे।

टिप्पणी. "यह कैसे?" प्रार्थना में आउट होने के सभी ढंग सम्मिलित होते हैं, जब तक कि प्रार्थना करनेवाला स्वयं आउट होने का कोई विशेष ढंग न बतला दे।

४७. बाउलर (Bowler) के खूंटे पर जो अम्पायर होगा उसके दूसरे अम्पायर

से पहले स्टम्पिग, हिट विकेट (Hit wicket), स्ट्राइकर के खूंटे पर रन-आउट (Run out) या नियम ४२ सम्बन्धी मामलों को छोड़कर सभी मामलों में प्रार्थना करनी होगी। परन्तु जिस स्थिति में अम्पायर निर्णय करने में असमर्थ रहे, उसमें दूसरे अम्पायर से प्रार्थना करना पड़ेगी, जिसका निर्णय अन्तिम होगा।

४८. यदि कोई भी अम्पायर किसी गेंद के दिये जाने के पूर्ण औचित्य के सम्बन्ध में सन्तुष्ट न हो तो वह "नो बाल (No ball)" चिल्लायेगा।

४९. यदि कोई भी बैटमैन छोटी दौड़ (शार्ट रन) दौड़े तो अम्पायर "एक शार्ट" पुकारेगा और वह रन स्कोर नहीं होगा।

५०. जब अम्पायर 'ओवर (Over)' या समाप्त पुकार दे तो गेंद 'डेड (Dead)' हो जायगा। परन्तु यह प्रार्थना की जा सकती है कि कोई बैटमैन आउट है या नहीं। फिर भी इस प्रकार की अपील दूसरे गेंद दिये जाने या खेल रुक जाने के पश्चात् नहीं हो सकेगी।

(नियम ५१ और ५२ निकाल दिये गये हैं।)

५३. जो पक्ष पहले बैट (Bat) करे और तीन दिन के मैच में १५० रन विपक्षी से अधिक बनाये या दो दिन के मैच में १०० रन विपक्षी से अधिक बनाये तो उसे यह अधिकार होगा कि यदि वह ऐसा चाहे तो दूसरे पक्ष से अपनी इनिंग का अनुकरण (Follow) कराये।

५४. इन पक्ष (In-side) तीन या अधिक दिनों के मैच में, दूसरे दिन किसी भी समय अन्त पर अपनी इनिंग घोषित कर सकता है। दो दिन के मैच में बैटिंग करनेवाले पक्ष के कप्तान (Captain) को किसी भी समाप्ति पर किसी भी समय अपनी इनिंग घोषित करने का अधिकार होगा। परन्तु यह घोषणा पहले दिन खूंटे (Stumps) खींचने के लिए नियुक्त किये गये समय से एक घंटा चालीस मिनट पहले के समय के पश्चात् नहीं की जा सकेगी। एक दिन के मैच में घोषणा किसी भी समय हो सकती है।

५५. यदि तीन दिन के मैच में पहले दिन कोई खेल न हो तो नियम ५३ और ५४ उसी प्रकार लागू होंगे, जैसे दो दिन का मैच हो। और यदि पहले दो दिन कोई खेल न हो तो नियम ५३, ५४ और नियम १ "एक दिन के मैच" उसी प्रकार लागू होंगे मानो-मैच एक दिन का मैच हो। जब दो दिन के मैच में पहले दिन कोई खेल न हो तो नियम १ "एक दिन के मैच" उसी प्रकार लागू होंगे मानों एक दिन का मैच हो।

एक दिन के मैच

१. जो पक्ष पहले बैट (Bat) करे और विपक्षी से ७५ रन अधिक बनाये तो उसे यह अधिकार होगा कि चाहे तो दूसरे पक्ष से अपनी इनिंग का अनुकरण (Follow) कराये।

२. मैच यदि प्ले आउट (play out) न हो जाय तो उसका निर्णय पहली इनिंगों से होगा। मैच के प्रारम्भ से पहले तय किया जा सकता है कि over समाप्ति में ५ या ६ बाल (ball) होंगे।

टिप्पणी. 'प्ले आउट' में 'बराबर' (tie) भी सम्मिलित है।

वालीबॉल

१. मैदान (ground) ६० फ़ीट लम्बा और ३० फ़ीट चौड़ा होगा। कोर्ट (court) की लम्बाई-चौड़ाई खेलनेवालों की संख्या के अनुसार घटाई-बढ़ाई जा सकती है। यह साइज़ प्रत्येक पक्ष में ६ खिलाड़ियों की टीमों (टोलियों) के लिए है। कोर्ट की सीमा दो इंच चौड़ी स्पष्ट रेखाओं द्वारा बनाई जायगी और ये दो इंच कोर्ट की नाप में सम्मिलित होंगे और प्रत्येक बिन्दु पर दीवालों या दूसरी रुकावटों से कम-से-कम तीन फ़ीट दूर होंगे। कोर्ट से १५ फ़ीट ऊपर की ऊंचाई तक भी किसी प्रकार की रुकावट नहीं होगी।

२. मध्य रेखा (centre line) दो इंच चौड़ी जाल के ठीक नीचे और समानान्तर कोर्ट की एक ओर से दूसरी ओर खींची जायगी। समझा जाता है कि मध्य रेखा, बग़ल की रेखाओं (side lines) के आगे भी अनिश्चित दूरी तक फैली रहती है।

३. पिछली रेखा (back line) पर कोर्ट के दाहिने किनारे से पूरी रेखा की तिहाई दूरी पर एक चिह्न बनाया जायगा। यह चिह्न एक ६ इंच लम्बी और २ इंच चौड़ी रेखा होगी जो बग़लवाली रेखा के समानान्तर खींची जायगी। इस रेखा का निकट अन्त (near end) अन्त रेखा (end line) के दो इंच पीछे से आरम्भ होगा। इस रेखा और पास की बग़ल-रेखा के बीच का यह चिह्नधारी भाग सर्विस क्षेत्र (service area) कहलाता है।

४. जाल फैलाने पर ३ फ़ीट चौड़ा और ३२ फ़ीट लम्बा होगा। उसे ऊपर और नीचे बहुत कसकर खींचना चाहिए और ऊपर और नीचे बांध देना चाहिए। जाल का ऊपरी भाग कोर्ट के मध्य में भूमि से ८ फ़ीट ऊंचा होना चाहिए। जहां तक सम्भव हो, लटकन कम-से-कम होनी चाहिए। बग़ल की रेखाओं के ठीक ऊपर जाल के ऊपरी भाग पर फ़ीते के ऊपर एक चिह्न सूचक लगा दिया जायगा।

५. गेंद परिधि में २६ इंच से कम या २७ इंच से अधिक न होगा। उसका भार ९ औंस से कम या १० औंस से अधिक न होगा। बाहर खेले जानेवाले खेल (games) में यदि दोनों पक्ष स्वीकार कर लें तो कुछ थोड़ा भारी गेंद भी काम में लाया जा सकता है, परन्तु उसका भार किसी भी अवस्था में १२ औंस से अधिक नहीं होना चाहिए।

६. टीमों में ६ खिलाड़ी होंगे। यह संख्या ९ तक बढ़ाई जा सकती है, परन्तु

मैदान (ground) की लम्बाई-चौड़ाई बढ़ा देनी चाहिए। मैचों के लिए ६ की टीमों की आवश्यकता होती है। अधिकृत मैचों में जब किसी कारणवश टीम की संख्या ६ खिलाड़ियों से भी कम हो जाय तो खेल प्रतिरोधी टीम के हाथ रहेगा।

७. खिलाड़ियो का स्थान खेल के आरम्भ में निश्चित कर दिया जाता है। जैसे बायें का अगुआ (left forward), मध्य-अगुआ (centre forward), दाहिने का अगुआ (right forward), दाहिने का पिछुआ (right back), मध्य-पिछुआ (centre back) और बायें का पिछुआ (left back)। खिलाड़ियों को खेल के बीच थोड़े समय की अदल-बदल के अतिरिक्त अपने सम्बन्धित स्थान पर रहना आवश्यक है। जब गेंद की सर्विस की जाय तो प्रत्येक खिलाड़ी अपने ही क्षेत्र में रहेगा।

इस नियम का उद्देश्य यह नहीं है कि खेल के बीच मे खिलाड़ी को गेंद खेलने के लिए अपने क्षेत्र के बाहर जाने से रोक दिया जाय। इसका उद्देश्य केवल यह है कि स्थानों की अदल-बदल खेल के बीच लम्बे समय तक न बनी रहे। टीम में सभी के सम्बन्धित स्थान बनाये रखने चाहिए।

८. खिलाड़ियों का अदल-बदल (rotation) होता रहेगा। सर्विस के लिए गेंद पानेवाली टीम गेंद की सर्विस होने से पहले एक स्थान (position) घड़ी की चाल के अनुसार (clockwise) चलती है। बायें का अगुआ (left forward) और मध्य का अगुआ (centre forward) दोनों दाहिने की ओर एक-एक स्थान (position) हटते हैं। दाहिने का अगुआ दाहिने के पिछुआ के स्थान पर आ जाता है। दाहिने का पिछुआ (right back) और मध्य का पिछुआ (centre back) एक-एक स्थान बायें की ओर बढ़ते हैं और बायें का पिछुआ बायें अगुआ के स्थान पर आ जाता है। यदि खिलाड़ी ९ हों और उनकी ३ पंक्तियां हों तो पहली और तीसरी पंक्तियां दाहिने की ओर हटती हैं और दूसरी पंक्ति बाईं ओर चलती है। खेल के आरम्भ में, जब पहले सर्विस करनेवाली टीम सर्विस हार जाय तो उसके विपक्षी दूसरे समय की भांति ही अपनी पहली सर्विस (service) के लिए स्थानान्तरण (rotation) करेंगे।

नया खेल प्रारम्भ होने पर इच्छा के अनुसार खिलाड़ियों के स्थान किसी भी ढंग से नियुक्त किये जा सकते हैं, चाहे पिछले खेल में नियुक्त स्थान कुछ भी रहे हों।

९. कप्तान कोर्ट या सर्विस के लिए टास (toss) करेंगे। टास जीतनेवाले को यह अधिकार होगा कि वह या तो पहली सर्विस ले या कोई पसन्द करे। पिछला खेल हरानेवाली टीम को अगले खेल में पहली सर्विस मिलेगी। टीमें प्रत्येक खेल के अन्त पर कोर्ट बदल लेंगी। खेल गेंद की सर्विस करनेवाले पक्ष के दाहिने के पिछुआ (left back) द्वारा आरम्भ होगा। गेंद की सर्विस करने के लिए वह गेंद को जाल के ऊपर किसी भी दिशा में मार (bat) सकता है। वह गेंद को एक ही हाथ से हिट (hit) करेगा और वह हाथ खुला होगा। वह सर्विस क्षेत्र (service area) के भीतर, अर्थात् दाहिने कोने से हटकर खींची गई पिछली रेखाओं में तीसरी के

पीछे खड़ा होगा। सर्विस करते समय उसके पैर पूरी तरह पिछली रेखा के पीछे होगे। जब वह सर्विस करता है तब रेखा के निकट दौड़कर अथवा चलकर नहीं आ सकता।

१०. प्वाइन्ट उस समय जीता जाता है जब गेंद पानेवाली टीम नियमानुसार अपने विपक्षी के कोर्ट में गेंद लौटाने में असमर्थ रहती है।

११. यदि सर्विस करनेवाली टीम प्वाइन्ट जीतने में असमर्थ रहे, या नियमानुसार गेंद को अपने विपक्षी के कोर्ट में लौटा देने में असमर्थ रहे तो 'साइड आउट' (side out) पुकारा जाता है; परन्तु कोई भी पक्ष कोई प्वाइन्ट नहीं जीतता।

१२. प्रत्येक सर्विस करनेवाली उस समय तक सर्विस करता रहेगा जब तक कि रेफ़री (referee) "साइड-आउट" न पुकार दे।

१३. यदि गेंद सर्विस के समय जाल को छू ले और ऊपर चला जाय तो 'साइड आउट' पुकारा जायगा। यदि वह ऊपर जाने के पहले किसी खिलाड़ी को छू जाय या जाल के नीचे चला जाय अथवा विपक्षी के कोर्ट के बाहर गिरे तो 'साइड आउट' पुकारा जायगा।

१४. गेंद को पकड़ा या थामा नहीं जा सकता। उसे बन्द मुट्ठी से मारा नही जा सकता। जब गेंद को हिट (hit) किया जाय तो हाथ खुला होना चाहिए। गेंद सफ़ाई से हिट करना चाहिए। उसे हाथ से उचकाना, ऊंचा उठाना या ढकेलना नहीं चाहिए। उसे दोनों हाथों से मारा जा सकता है, परन्तु दोनों हाथों की चोट गेंद पर एक ही समय में पड़नी चाहिए।

१५. कोई खिलाड़ी एक ही गेंद को लगातार दो बार हिट नहीं करेगा। वह उसे हिट करके दुबारा तभी हिट कर सकता है जब कि कोई दूसरा खिलाड़ी उसे हिट कर ले या छू ले। यदि गेंद खिलाड़ी के शरीर को कमर के ऊपर किसी अंग में छू ले तो उसे उस खिलाड़ी द्वारा हिट माना जायगा। यदि गेंद कमर के नीचे छू ले तो फाउल (foul) दे दिया जायगा।

१६. खेल के बीच में सर्विस के समय को छोड़कर यदि गेंद किसी भी समय जाल को छू ले और ऊपर चला जाय तो उसे ठीक माना जायगा और उससे खेल चलता रहेगा।

१७. गेंद को बग़ल-रेखाओं (side lines) पर मार्करों (markers) के बीच जाल के ऊपर से पास होना चाहिए। जो गेंद जाल के उस भाग के ऊपर से जाय, जो रेखाओं के बाहर हो, तो वह नियमानुसार वापसी (return) नहीं है।

१८. गेंद को खिलाड़ी जाल में से प्राप्त कर सकता है परन्तु ऐसा करने में वह जाल को हिट (hit) या स्पर्श (touch) न कर ले।

१९. जाल के ऊपर से वापस करने में एक टीम गेंद को केवल तीन बार ही हिट या स्पर्श (hit or touch) कर सकती है, अर्थात् तीसरी हिट के द्वारा गेंद जाल के ऊपर से चला जाना चाहिए। गेंद को हिट करवाने के लिए पहला या दूसरा

खिलाड़ी पीछे से भेज सकता है। खेल के बीच में गेंद कोर्ट के भीतर ज़मीन नहीं छूना चाहिए। यदि ऐसा सर्विस करनेवाले पक्ष की ओर हो तो यह 'साइड आउट (side out)' है, और यदि ऐसा करनेवाले (striker) की ओर हो तो सर्विस करनेवाले का एक प्वाइन्ट हुआ।

२०. यदि कोई खिलाड़ी उस समय सर्विस करे जब उसकी बारी न हो तो 'साइड आउट (side out)' पुकारा जायगा और उस भूल का पता चलने से पहले उसकी सर्विस पर जो भी प्वाइन्ट जीते गये होंगे उन्हें गिना नहीं जायगा।

२१. जब गेंद खेला जा रहा हो तो कोई भी खिलाड़ी जाल को अपने शरीर के किसी भी अंग से नहीं छुएगा। यदि दो खिलाड़ी जाल को एक साथ ही छू लें तो गेंद को 'मरा' (dead) गिना जायगा और उसकी फिर से सर्विस होगी।

२२. कोई भी खिलाड़ी किसी भी अवस्था में जाल के ऊपर नहीं लपकेगा।

२३. जिस समय गेंद विपक्षी की ओर खेला जा रहा हो, कोई भी खिलाड़ी जाल के नीचे नहीं लपकेगा और विपक्ष के खिलाड़ी के गेंद को नहीं छूएगा, परन्तु जब गेंद उसी के पक्ष की ओर खेला जा रहा हो तो जिस समय तक उसके पांव अपने ही कोर्ट (court) के भीतर रहते हैं, वह एक या दोनों हाथों से जाल के नीचे लपक सकता है।

२४. कोई भी खिलाड़ी कोर्ट के अपने पक्ष से मध्य रेखा (centre line) के विपरीत पक्ष में भूमि को नहीं छू सकता, जब तक कि गद भूमि को हिट न कर ले। उसके पश्चात् भी यदि वह भूमि को न छुए तो भी फाउल (foul) दे दिया जायगा। कोई भी खिलाड़ी अपने पांव मध्य रेखा या विपक्षी के कोर्ट में नहीं रख सकता।

२५. कोई भी खिलाड़ी जो किसी पीछे के स्थान पर हो, गेंद को 'बध (kill)' करने अर्थात् विपक्षी के कोर्ट में नीचे पटक देने (smashing) के लिए आगे नही दौड़ सकता।

२६. जब गेंद भूमि के किसी भाग अथवा कोर्ट के बाहर की किसी भी वस्तु को छू ले तो वह आउट हो जाता है। सीमा की रेखा (boundary) को छूनेवाला गेंद भीतर गिना जाता है, परन्तु सर्विस करते समय जब गेंद सीमा की रेखा को छू ले तो उसे आउट गिना जाता है।

२७. खेल उस समय जीता जाता है जब कोई भी टीम पन्द्रह या अधिक प्वाइन्टों के साथ दो प्वाइन्ट विपक्षी से अधिक प्राप्त कर ले।

२८. यदि वायु, सूर्य या कोई अन्य कारण किसी एक कोर्ट के लिए अनुकूल हो तो कम प्राप्ति (score) वाली टीम विपक्षी टीम से, जैसे ही वह आठ प्वाइन्ट प्राप्त कर ले, कार्ट बदलने की प्रार्थना कर सकती है, परन्तु जिम खिलाड़ी ने तुरन्त आठवाँ प्वाइन्ट जीता है, उसी के साथ सर्विस चलती रहती है। एक खेल के बीच में केवल एक ही अदल-बदल की आज्ञा दी जा सकती है।

बास्केटबॉल

१. मैदान की लम्बाई-चौड़ाई ९० × ५० फ़ीट होगी।

२. सीमा की रेखाएँ हर प्रकार की रुकावटों से कम-से-कम ३ फ़ीट दूर होंगी। कोर्ट के मध्य में २ फ़ीट अर्धव्यास का एक वृत्त बनाया जायगा। दो फ़ीट लम्बी एक छोटी रेखा प्रत्येक अन्त-रेखा (end line) के मध्य बिन्दु से १५ फ़ीट दूर अन्त-रेखा के समानान्तर बनाई जायगी। इस रेखा का मध्य-बिन्दु अन्त-रेखा के मध्य-बिन्दु के ठीक सामने होगा। एक खुली फेंक-गली (free throw lane) इस प्रकार बनाई जायगी। अन्त-रेखाओं से समकोण बनाती हुई दो रेखाएँ अन्त-रेखा मध्य-बिन्दु के दोनों ओर तीन-तीन फ़ीट दूर के बिन्दुओ से खीची जायँगी। यह रेखाएँ ९ फ़ीट लम्बी होंगी। खली फेंक-रेखा (free throw line) के मध्य-बिन्दु को केन्द्र मानकर ६ फीट अर्धव्यास का एक वृत्त खींचा जायगा जो अन्त-रेखा से समकोण बनानेवाली दोनों रेखाओं को स्पर्श करेगा। उन दोनो रेखाओं और इस प्रकार खीचे गये वृत्त द्वारा घिरा हुआ भाग खुली फेंक-गली होगा।

३. बैक बोर्डों (back boards) की चौड़ाई ६ फ़ीट और ऊंचाई ४ फ़ीट होगी। उन्हें अन्त-रेखाओं के केन्द्र-बिन्दु पर खड़ा गाड़ा जायगा।

४. बास्केट (basket) धातु के १८ इंच भीतरी व्यासवाले छल्लों से लटकाये गये जाल होंगे। वे इस प्रकार बनाये जायँगे कि गेंद बीच में से पास होते समय क्षण भर के लिए रुक जाय।

५. छल्ले अपने जुड़े हुए जालों सहित बैक बोर्डों में निचली भुजा से एक फ़ीट ऊंचाई पर की दोनो बग़ल की भुजाओं से ३-३ फ़ीट दूर जड़े जायँगे। छल्ले भूमि से १० फ़ीट की ऊँचाई पर उसके समानान्तर होंगे और इस प्रकार लगाये जायँगे कि छल्ले की भीतरी कोर का निकटतम बिन्दु बैक बोर्डों से ६ इंच दूर होगा।

६. गेंद परिधि में न ३० इंच से कम और न ३२ इंच से अधिक होगा। उसका भार २० औंस से कम या २३ औंस से अधिक न होगा।

७. प्रत्येक टीम पांच खिलाड़ियों की होगी।

८. गोल उस समय बनता है जब गेंद बास्केट में ऊपर से चला जाय। जब यह काम मैदान से किया जाता है तो २ प्वाइन्ट गिने जाते हैं और जब खुली फेंक (free throw) से होता है तो एक प्वाइन्ट गिना जाता है।

९. कोई खिलाड़ी उस समय सीमा-बाहर (out of bounds) होता है जब उसके शरीर का कोई भी अंग सीमा की रेखा या उसके बाहर की भूमि को छू ले। गेंद तब सीमा-बाहर होता है जब उसका कोई भी भाग सीमा की रेखा या सीमा की रेखा के बाहर किसी वस्तु को छू ले अथवा किसी-सीमा-बाहर खिलाड़ी द्वारा छू जाय। जब गेंद सीमा के बाहर चला जाय तो जिस खिलाड़ी ने उसे सीमा के बाहर किया हो, उसके किसी विपक्षी द्वारा गेंद को कोर्ट के भीतर फिंकवाया, पटकवाया या लुढ़कवाया

(thrown, bounced or rolled) जायगा। जो खिलाड़ी उसे कोर्ट में रख रहा है, वह सीमा बाहर उस स्थान के सामने खड़ा होगा जहां गेंद सीमा के बाहर चला गया था। यदि इस विषय में कोई सन्देह हो कि गेंद को किसने सीमा-बाहर किया तो रेफ़री (referee) गेंद को एक ऐसे स्थान पर खेल में डाल देगा, जहां गेंद बाहर चला गया था और दो चुने विपक्षियों के बीच कोर्ट के भीतर तीन फ़ीट की दूरी पर गेंद को हवा में उछाल (toss) देगा। गेंद जब बाहर जाता है तो उससे पहले अन्तिम खिलाड़ी जो उसे छू जाय, वही उसके बाहर जाने का कारण होता है।

१०. जब दो विपक्षी खिलाड़ियों का एक या दोनों हाथ गेंद के ऊपर एक ही समय हों या जब कोई अधिक रक्षित (closely guarded) खिलाड़ी गेंद को खेल से रोके हुए हो, तो गेंद को रुका (held) समझा जाता है। तब रेफ़री गेंद को अपने हाथ में ले लेगा और दोनों सम्बन्धित खिलाड़ी, जहां गेंद रोका गया था, एक काल्पनिक वृत्त में आमने-सामने खड़े होंगे। गेंद रेफ़री द्वारा हवा में फेंका जायगा, मानो केन्द्र पर फेंका जा रहा हो, और इस प्रकार वह खेल में डाल दिया जायगा।

११. गेंद खेल के आरम्भ में और अर्धसमय (half time) के उपरान्त, गोल होने के पश्चात्, अनियमित खुली फेंक होने के बाद और बास्केट के लटकनों के भीतर गेंद के फँस जाने के पश्चात् निम्नलिखित ढंग से फेंका जाता है—प्रत्येक मध्य (centre) खिलाड़ी अपने दोनों पांव केन्द्रीय वृत्त के अपने अर्धभाग में रखकर खड़ा होगा और उसका एक हाथ अपनी पीठ के पीछे पीठ को छूता रहेगा। हाथ इसी दशा में रहेगा जब तक कि वह एक खिलाड़ी अथवा दोनों द्वारा टैप (tap) न हो जाय। दूसरे खिलाड़ी कोर्ट में जो भी स्थान लेना चाहें, ले सकते हैं, जब तक कि वे मध्य (centre) खिलाड़ियों के लिए किसी प्रकार की रुकावट न बन जायँ। रेफ़री गेंद को खिलाड़ियों के बीच ठीक ऊपर उस ऊंचाई तक उछाल देगा जहां तक दोनों में से एक भी खिलाड़ी न कूद सके, जिससे कि गेंद दोनों के बीच गिर जायगा। गेंद को किसी दूसरे खिलाड़ी द्वारा छुए जाने से पहले मध्य खिलाड़ियों में से किसी एक खिलाड़ी द्वारा टैप (tap) होना चाहिए। यदि वह किसी भी खिलाड़ी द्वारा छुए गये बिना ही भूमि पर गिर जाय तो रेफ़री उसे फिर ऊपर फेंकेगा। जब रेफ़री द्वारा गेंद केन्द्र के अतिरिक्त किसी दूसरे स्थान पर उछाला (tossed) जाय तो यही विधि लागू की जाती है।

१२. गेंद किसी भी दिशा में फेंका (thrown), पटका (bounced), पाथा (batted), लुढ़काया (rolled) या दाबा (dribbled) जा सकता है।

१३. खिलाड़ी गेंद के साथ न दौड़ेगा, न उसे 'किक' (kick) करेगा और न अपनी मुट्ठी से उसे ठोकेगा (strike)। दंड : खुली फेंक (free throw)।

१४. कोई खिलाड़ी गेंद को केन्द्र में अथवा कहीं और रेफ़री द्वारा खेल में रखवाने के लिए नियमों का उल्लंघन नहीं करेगा। दंड—खुली फेंक।

१५. कोई खिलाड़ी गेंद को, जब वह फेंका जा रहा हो, उस समय तक नहीं छुएगा जब तक कि वह सीमा की रेखा पार न कर ले, और न वह अपने शरीर के किसी भी अंग को सीमा की रेखा के बाहर रहने देगा ; और इस प्रकार गेंद भीतर फेंकनेवाले खिलाड़ी के लिए अड़चन बनेगा। दंड––खुली फेंक।

१६. कोई भी खिलाड़ी गोल के लिए खुली फेंक लेते समय गेंद को किसी दूसरे खिलाड़ी की ओर बढ़ा (pass) नहीं सकता। उसे स्वच्छ प्रयत्न करना चाहिए। दंड––खुली फेंक।

१७. किसी भी खिलाड़ी को, जिस समय गेंद बास्केट की कोर पर या उसके भीतर हो, गेंद अथवा बास्केट में रुकावट नहीं डालनी चाहिए।

१८. कोई भी खिलाड़ी गेंद को पहले किसी दूसरे खिलाड़ी की ओर बढ़ाये (pass) बिना दूसरी दाब (dribble) नहीं देगा। दाब खिलाड़ी द्वारा उस समय दी जाती है जब वह गेंद को फेंकने, थामने, पटकने अथवा लुढ़काने और किसी दूसरे खिलाड़ी से छू जाने के पहले छूने से आगे या किसी भी दिशा में भेजता है। जैसे ही गेंद एक या दोनों हाथों के बीच रुक जाय या दोनों हाथों को एक साथ छू ले, दाब समाप्त हो जाती है। खिलाड़ी नियमित दाब के पश्चात् गेंद को गोल के लिए फेंक सकता है। गोल के लिए लगातार किये जानेवाले प्रयत्नों को दाब नहीं समझा जायगा। बाद के मध्य में गेंद को केवल एक ही बार हवा में थामा जा सकता है। दंड––खुली फेंक।

१९. कोई खिलाड़ी अपने किसी विपक्षी को रोक (hold), घेर (block), ठुकरा (trip), उस पर झपट (charge) या ढकेल (push) नहीं सकता। वह अनावश्यक कड़ाई भी नहीं कर सकता और न भिड़कर (charge in) किसी विपक्षी से, जो गेंद पर एक या दोनों हाथ रखे हुए दो विपक्षी खिलाड़ियों में से एक हो, शारीरिक स्पर्श नहीं कर सकता। दंड––खुली फेंक। उल्लंघनकर्ता पर व्यक्तिगत अनौचित्य (personal foul) का भी अपराध लगाया जायगा। जिस खिलाड़ी से चार व्यक्तिगत अनौचित्य हो जायँ उसे खेल से निकाल दिया जायगा।

२०. कोई खिलाड़ी अपने किसी विपक्षी को, जो बास्केट के लिए फेंकने के कार्य में हो, भिड़, ढकेल, रोक अथवा किसी अन्य ढंग से अनौचित्य (foul) नहीं कर सकता। दंड––दो खुली फेंकें और उल्लंघनकर्ता पर एक व्यक्तिगत अनौचित्य का अपराध लगाया जायगा। पहली खुली फेंक ली जाने के पश्चात् गेंद मर जायगा (dead)।

२१. जब खुली फेंक दी जाय तो गेंद उस टीम की खुली फेंक-रेखा पर रखा जायगा, जो फेंकने का अधिकार रखती है। गेंद के रेखा पर रखे जाने के दस सेकेंड के भीतर ही फेंक हो जायगी। यदि एक गोल हो जाय तो गेंद फिर केन्द्र पर खेल में डाल दिया जाता है। यदि गोल चूक जाय (miss) तो गेंद खेल में चलता रहता है। खुली फेंक, खली फेंक-रेखा के ठीक पीछे से ली जायगी। फेंक देनेवाले को छोड़कर किसी भी दूसरे खिलाड़ी को खुली फेंक-रेखा के भीतर उस समय तक आने की आज्ञा

न होगी जब तक कि गेंद बास्केट या बैंक बोर्ड (back board) को छू न ले। किसी भी खिलाड़ी को—फेंक देनेवाले खिलाड़ी को—किसी भी प्रकार की असुविधा पहुंचाने का प्रयास करने की आज्ञा नहीं है। दंड—यदि अनौचित्य उसी टीम के किसी सदस्य द्वारा हो, जो गेंद फेंक रही है, तो गोल हो जाने पर भी नहीं गिना जायगा, और यदि गोल चूक गया तो गेंद को फिर केन्द्र पर खेल में रख दिया जायगा। यदि अनौचित्य किसी विपक्षी द्वारा हो तो गोल हो जाने पर गिन लिया जायगा और यदि न हुआ तो एक और खुली फेंक दी जायगी।

२२. जब अनौचित्य दोनों ही टीमों से एक ही समय पर साथ-साथ हो तो 'दुहरा अनौचित्य' (double foul) कहा जाता है और प्रत्येक टीम को खुली फेंक दी जायगी। पहली फेंक के ले लिये जाने पर गेंद मर जाता है।

२३. कोई खिलाड़ी गेंद के मर जाने के पश्चात् उसे बास्केट के लिए नहीं फेंकेगा। दंड—गोल हो जाय तो गिना नहीं जाता।

२४. कोई खिलाड़ी खुली फेंक करने में दस सेकेंड से अधिक नहीं ले सकता। दंड—गोल हो जाय तो गिना नही जाता।

२५. किसी भी खिलाड़ी को गेंद सीमा बाहर (out of bounds) नहीं पहुंचाना चाहिए, न गेंद को सीमा-बाहर से कोर्ट के भीतर लाना चाहिए, न उसे सीमा-बाहर से खेल में रखने के पश्चात् उस समय तक छूना चाहिए जब तक कि कोई दूसरा खिलाड़ी उसे छू न ले और न उसे गेंद को खेल में रखने से पूर्व सीमा-बाहर पांच सेकेंड से अधिक रोकना चाहिए। दंड—गेंद भीतर फेंकने के लिए किसी विपक्षी के पास सीमा के बाहर जाता है।

२६. खेल का निर्णय खेल के समय में अधिकतम प्वाइन्टों की प्राप्ति से होता है। खेल में २०–२० मिनट के दो-दो अर्ध-खंड (half) होगे और १० मिनट का अर्ध-विश्राम (half time) होगा।

२७. परिभाषा.

रोकना (holding)—रोकना किसी विपक्षी से शारीरिक स्पर्श है जो विपक्षी के गति-स्वातंत्र्य (freedom of movement) में बाधक हो।

गेंद ले भागना (running with the ball)—गेंद ले भागना किसी भी दिशा में एक पग से अधिक बढ़ना है, जब कि गेंद पर अपना क़ब्ज़ा बना रहे।

घेरना (blocking)—घेरना किसी भी ऐसे विपक्षी की प्रगति मे अड़चन डालना है, जिसके पास गेंद न हो।

छोटे खेल

हथगेंद (Handball)

यह २० से २६ तक खिलाड़ियों के व्यायाम के लिए बड़ा बढ़िया खेल है।

इसके लिए ६० गज़ का वर्गाकार मैदान चाहिए। खिलाड़ियों को १० से १३ तक की दो-दो टीमों में बांट दिया जाता है। मैदान के प्रत्येक अन्त पर अन्त-रेखा के मध्य में चार फ़ीट चौड़े और सात फ़ीट ऊंचे गोल बनाये जाते हैं। गेंद एक या दोनों हाथों से फेंका (thrown), थामा (batted) अथवा मुकियाया (punched) जा सकता है। उसे किक (kick) किया, सिर से मारा (head) या शरीर से आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। फ़ुटबाल की भांति खिलाड़ियों की ओर लपका (charged) जा सकता है। इसमें ऑफ़ साइड (off-side) नहीं होता। किसी को गेंद ले जाते दौड़ने की आज्ञा नहीं है; परन्तु खिलाड़ी गेंद को एक हाथ पर पकड़े (bouncing) दौड़ सकता है। पकड़े जाने पर गेंद तीन सेकेंड से अधिक नहीं रोका जा सकता। खिलाड़ी गेंद को पटककर उसके पीछे दौड़ सकता है, उसे फिर पटक सकता है और इस प्रकार दौड़ सकता है।

यदि गेंद बग़ल-रेखाओं से बाहर चला जाता है तो बाहर जाने से पहले जिस खिलाड़ी ने अन्त में उसे छुआ था, उसके विपक्ष के किसी खिलाड़ी द्वारा गेंद को भीतर फेंकना होगा। यदि गेंद पीछे, (अर्थात् गोल-रेखाओं) से होकर चला जाता है तो बचाववाली टीम के किसी खिलाड़ी द्वारा उसे खेल में फेंक दिया जाता है।

गोल उस समय बनता है जब गेंद मैदान के किसी भी भाग से गोल के भीतर ऊपरी छड़ के नीचे फेंका, थामा अथवा मुकियाया (thrown, batted or punched) जाता है। जब गोल हो जाता है या खेल आरम्भ होता है तो रेफ़री गेंद को मैदान के मध्य बिन्दु पर हवा में ठीक ऊपर फेंकता है और वह गेंद तुरन्त खेल में आ जाता है। इसमें एसोसिएशन (Association) फ़ुटबॉल का प्रयोग होता है।

खेल के अगुआओं को दृष्टिगत रखने की बातें.

१. यह ध्यान रखना कि गेंद को रोका (hold) या ले भागा (run away) नहीं जाता।

२. यह ध्यान रखना कि खिलाड़ी बार-बार अपना स्थान बदलते रहें; जैसे यह ध्यान रखना कि एक ही खिलाड़ी सारे समय गोलरक्षक (goalkeeper) न बना रहे।

इस खेल से छोटे और बड़े लड़के बराबर ही आनन्दित होते हैं। छोटे लड़कों के लिए तो यह मुख्यतः एक व्यक्तिगत कार्य है, परन्तु बड़े लड़कों के लिए इसे एक अच्छा टीम का खेल बनाया जा सकता है, जिसमें बड़ी फुर्ती और बढ़ाने (passing) में चतुरता की आवश्यकता होती है।

पट्टा (Collaring)

एक मैदान घेरा जाता है, जिसकी लम्बाई-चौड़ाई खिलाड़ियों की संख्या पर निर्भर है। २० से ३० तक खिलाड़ियों के लिए ४० से ५० गज़ चौड़े और ५० से ६० गज़

लम्बे मैदान की आवश्यकता है। खेल आरम्भ करने के लिए दो खिलाड़ी मैदान के मध्य में और शेष मैदान के किसी एक अन्त पर खड़े होते हैं। उन्हें प्रयत्न करना है कि बिना पकड़े गये मैदान पार कर लें। यदि बीच के दोनों खिलाड़ी किसी को पकड़ लें तो उन्हें उसको इतनी देर तक रोके रखना होगा कि पीठ पर तीन बार थोड़े बहुत ज़ोर से थपथपाया (pat) जा सके। पकड़ा हुआ खिलाड़ी तब केन्द्रवाले खिलाड़ियों से मिल जाता है और उन्हें दूसरों के पकड़ने में सहायता देता है। इस प्रकार बीच की संख्या धीरे-धीरे बढ़ती और पार करने का प्रयत्न करनेवालों की संख्या घटती जाती है। यह खेल उस समय तक चलता रहता है, जब तक कि पार करने का प्रयत्न करनेवाले सभी पकड़ न लिये जायँ। अन्त के पकड़े जानेवाले दो खिलाड़ी अगले खेल के लिए मध्य स्थान ग्रहण करेंगे।

यदि कोई खिलाड़ी पार करने के प्रयत्न में बग़ल-रेखाओं से होकर बाहर चला जाता है या जिस सिरे को उसने छोड़ा था वहीं लौट आता है तो वह अपने आप क़ैदी हो गया और बीचवालों से मिल जाता है। खिलाड़ी मैदान को पार करने का जितनी बार और जिस समय भी चाहें प्रयत्न कर सकते हैं।

खेल के अगुआ के लिए बातें.

१. यह ध्यान रखना कि पकड़ा गया खिलाड़ी ठीक ढंग से तीन बार थपथपाया जाय।

२. यह ध्यान रखना कि जो खिलाड़ी अपने सिरे से हटे और मैदान के पार चलना आरम्भ करे वह अपने छोड़े हुए सिरे को फिर न लौट जाय। फिर यह भी ध्यान रखना कि खिलाड़ी बग़ल-रेखा को पार न करें।

रस्सी पट्टा (Chain Collaring)

पिछले खेल की भांति ही एक मैदान बनाया जाता है। परन्तु इस खेल के लिए छोटे मैदान की आवश्यकता होती है। मैदान लगभग २० खिलाड़ियों के लिए २५ गज़ से अधिक चौड़ा और ४० गज़ से अधिक लम्बा नहीं होना चाहिए।

एक खिलाड़ी मैदान के केन्द्र में खड़ा होता है और शेष एक छोर पर। बीचवाला खिलाड़ियों में से किसी एक का नाम पुकारता है जिसे तुरन्त ही बँधे (tagged) बिना (अर्थात् छुए गये बिना) मैदान के उस पार दूसरे छोर की ओर दौड़ने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। यदि वह ऐसा करने में सफल हो गया तो बीच का खिलाड़ी किसी दूसरे का नाम पुकारता है और इसी प्रकार खेल चलता रहता है। जब बीचवाला खिलाड़ी दूसरे खिलाड़ी को पकड़ने में सफल हो जाता है तो वे दोनों हाथ मिला लेते हैं। पहला खिलाड़ी नाम पुकारता जाता है, लेकिन बीचवाले दोनों का हाथ छूटना नहीं चाहिए। यदि किसी खिलाड़ी के पकड़ने में वे हाथ छोड़ दें तो उनके क़ैदी को छूट मिल

जाती है। जब वे तीसरे को पकड़ते हैं तो तीनों हाथ मिला लेते हैं और इस प्रकार बीच की ज़ंजीर धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। ज़ंजीर (रस्सी) के अन्त के दोनों सदस्य ही बांध (tag) सकते हैं। शेष को चाहिए कि जब तक बाहरवाले न पहुँचे, पार करनेवालों को रोकने का प्रयत्न करें। परन्तु खिलाड़ी उस समय तक नहीं पकड़ा जाता जब तक कि वह रस्सी के बाहरी सदस्यों में से किसी एक द्वारा छू न जाय। इससे पार करने का प्रयत्न करनेवालो को जब रस्सी बहुत बड़ी हो जाय तो उसे तोड़ने का प्रयत्न करने का अवसर मिल जाता है।

खेल के अगुआ के लिए बातें.

१. यह ध्यान रखना कि किसी खिलाड़ी को पकड़ते समय रस्सी टूट न जाय।

२. जब खेल बढ़ने लगता है तो मैदान की लम्बाई-चौड़ाई में परिवर्तन करने की आवश्यकता हो सकती है। मैदान की चौड़ाई रस्सी की लम्बाई के साथ-साथ बढ़ाई जा सकती है। चौड़ाई कभी बहुत अधिक नहीं होनी चाहिए, क्योंकि तब रस्सी के लिए किसी प्रकार की सफलता प्राप्त करना कठिन होता है।

चोरी (Smuggling)

इसमें १५ से २० खिलाड़ी होते हैं।

खिलाड़ियों को पक्षों में बांट दिया जाता है। एक बचाव-पक्ष होता है और दूसरा धावा-पक्ष। मैदान की लम्बाई-चौड़ाई लगभग फ़ुटबॉल के मैदान के बराबर होती है और सीमाएं स्पष्टरूप से बनाई जाती हैं। उसके मध्य में लगभग १० गज व्यास का एक वृत खींचा जाता है। बचाव-पक्ष मैदान में रहता है और बाहर या मध्य के वृत्त के भीतर को छोड़कर कहीं भी जा सकता है। धावा करनेवाले पक्ष को कोई चिट्ठी या कोई दूसरी छोटी चीज़ दी जाती है, जिसको उन्हें मैदान के बीचवाले वृत्त में पहुँचाना है। जब वे बचाव करनेवालों की दृष्टि से दूर होते हैं तो यह चिट्ठी या चीज़ पक्ष के किसी एक सदस्य को दे दी जाती है जो उसे चतुरतापूर्वक कहीं अपने पास छिपा लेता है। अब सभी धावा करनेवालों का लक्ष्य यह है कि वे पकड़े गये बिना वृत्त के भीतर पहुँच जायँ। वे शत्रु की भूमि पर इच्छानुसार बढ़ सकते और वहां से लौट सकते है। बचाव करनेवाले, धावा करनेवालों में से जो भी वृत्त तक पहुँचने का प्रयत्न करता हो, उसको पकड़ने का प्रयत्न करते है। धावा करनेवाले को सचमुच पकड़ लेना चाहिए, क्योंकि उसकी तलाशी लेनी होगी। उसे केवल छूना काफ़ी नहीं; उसे रोक लेना चाहिए। यदि वह रोक लिया जाय तो उसे तलाशी देना स्वीकर कर लेना चाहिए। जब बचाव करनेवाले सन्तुष्ट हो जायँ कि वह चिट्ठी या चीज़ नहीं ले जा रहा है तो उसे वृत्त में चले जाने की आज्ञा मिल जानी चाहिए। यदि बचाव करनेवाले चिट्ठी या चीज़ को ढूढ़ निकालने में सफल हो जाते हैं तो वे जीत जाते हैं और तब धावा-पक्ष स्थान बदल लेता है। यदि चिट्ठी या चीज़ ले जानेवाला पक्ष अपने उस

सदस्य को, जो उसे लिये हुए हो, बचाव करनेवालों द्वारा पकड़े गये बिना वृत्त तक पहुँचाने में सफल हो जाय तो धावा करनेवाले जीतते हैं और बचाव करनेवालों को फिर बचाव करना पड़ता है।

खेल के अगुआ के लिए बातें.

१. यह ध्यान रखना कि सभी वृत्त के चारों ओर भीड़ न लगा दें।

२. यह ध्यान रखना कि धावा करनेवाले पैंतरेबाज़ी का उपयोग समझें। कोई खिलाड़ी, जिसके पास चिट्ठी न हो, अपने को बड़े संघर्ष में बलि पर चढ़ा दे, जिससे चिट्ठीवाला खिलाड़ी धीरे से भीतर सरक (slip) जाय।

३. यह ध्यान रखना कि जब कोई खिलाड़ी रोक लिया जाय तो वह तलाशी देना स्वीकार कर ले।

४. यह ध्यान रखना कि जब कोई खिलाड़ी वृत्त में पहुँच जाय तो उसे फिर बाहर न घसीटा जाय।

इस खेल को साधारण मैदान में खेलना आवश्यक नहीं है। वास्तव में तो पेड़ों या घरों के होने से रोचकता बढ़ जाती है। फिर भी मैदान की सीमाएं स्पष्टरूप से बनानी चाहिए।

अन्तगेंद (**End Ball**)

इसमें १४ से १६ तक खिलाड़ी होते हैं।

एक मैदान लगभग ३० गज़ लम्बा और २० गज़ चौड़ा बनाया जाता है। खिलाड़ियों की संख्या अधिक हो तो यह लम्बाई-चौड़ाई बढ़ाई जा सकती है। रेखाएं कोर्ट के एक ओर से दूसरी ओर दोनों छोर पर प्रत्येक पिछली रेखा (back line) से एक गज की दूरी पर खींची जाती हैं। कोर्ट के मध्य में चिह्न लगा दिया जाता है।

खिलाड़ी दो बराबर टीमों में बांट दिये जाते हैं। प्रत्येक टीम के तीन-चार खिलाड़ी कोर्ट के छोर पर बने खानों में कर दिये जाते हैं। एक पक्षवाले एक खानें में रहते हैं और दूसरे पक्षवाले दूसरे में। ये खिलाड़ी चिह्न खीचे हुए खाने के बाहर नहीं जा सकते और अगली या पिछली रेखा पर पांव नहीं रख सकते। शेष खिलाड़ी स्वयं कोर्ट के मध्य भाग में बँट जाते हैं। दोनों कप्तान केन्द्रीय स्थान पर एक-दूसरे के समक्ष रहते हैं। खेल का लक्ष्य यह है कि गेंद को छोर के खानों में किसी एक खिलाड़ी के पास पहुँचा दिया जाय। यह उचित ढंग से बढ़ाने और पकड़ने (pass and catch) के द्वारा किया जाना चाहिए। यदि गेंद भूमि पर लुढ़का (rolled) दिया जाय अथवा पूरी तरह हाथ न आये तो कोई प्वाइन्ट नहीं गिना जाता। यदि पकड़ने-वाला गेंद पकड़ने के अपने प्रयत्न में छोर के खाने की रेखा पर एक पांव रख देता है तो भी कोई प्वाइन्ट नहीं गिना जाता।

खेल अगुआ द्वारा गेंद केन्द्र पर ऊपर की ओर फेंकने से आरम्भ होता है। दोनों कप्तानो को उसे तब तक छूने की आज्ञा नहीं होती जब तक वह भूमि पर पहुँच न जाय। तब जो कप्तान उसे प्राप्त कर लेता है, अपनी टीम के किसी सदस्य को बढ़ा देता (passes) है जो उसे किसी दूसरे को बढ़ा देता है, यह क्रम इसी प्रकार चलता रहता है। यहां तक कि वह किसी ऐसे सदस्य के पास पहुँच जाता है जो इस प्रकार खड़ा होता है कि छोर के खाने में अपनी टीम के किसी पकड़नेवाले को बढ़ा सके। विपक्षी टीम के सदस्य उसी समय गेंद को अपने किसी पकड़नेवाले को बढ़ाने के हेतु पा लेने का प्रयत्न करते रहते हैं। जो खिलाड़ी खानों में नही है, वे कोर्ट मे जैसे चाहे घूम-फिर सकते हैं। कोई भी खिलाड़ी गेंद को दो सेकेंड से अधिक नहीं रोक सकता, न कोई खिलाड़ी गेंद लेकर भाग सकता है, न उसे पाकर अपना स्थान बदल सकता है। छोर के किसी भी पकड़नेवाले द्वारा प्रत्येक पूरी पकड़, उसके पक्ष के लिए, एक प्वाइन्ट गिनी जाती है। जो टीम २० या ऐसी ही किसी निश्चित संख्या में प्वाइन्ट पहले प्राप्त कर लेती है, वही जीतती है। जब गेंद पकड़ लिया जाता या पीछे चला जाता है तो खेल का अगुआ उसे केन्द्र में ऊपर की ओर फेंकता है। जब वह बग़ल में बाहर चला जाता है तो वह खेल के अगुआ (play leader) द्वारा सीधे भीतर फेंक दिया जाता है। नियमों का कोई भी उल्लंघन होने पर उस स्थान से, जहां उल्लंघन हुआ था, खुली फेंक के द्वारा दंड दिया जाता है। खेल के बीच में पकड़नेवाले (catchers) अपनी टीम के दूसरे सदस्यों से स्थान बदल सकते हैं, जिससे कि सभी को खेल के अधिक क्रियाशील भाग में सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त हो सके।

खेल के अगुआ के लिए बातें.

१. यह ध्यान रखना कि खिलाड़ी गेंद के साथ स्वयं न हिले।
२. यह ध्यान रखना कि पकड़नेवाले अपने खानों से बाहर नहीं हिलते।
३. यह ध्यान रखना कि गेंद दो सेकेंड से अधिक रोका नहीं जाता।
४. खिलाड़ियों को यह सिखलाना कि स्वयं कोर्ट भर में बँट जायँ जिससे कि वे प्रभावपूर्ण ढंग से गेंद को बढ़ा सकें।

घिराव (Siege)

इसमें २० से ३० तक खिलाड़ी होते हैं।

लगभग ४० फ़ीट लम्बा और ४० फ़ीट चौड़ा एक मैदान घेरा जाता है। मैदान की लम्बाई चौड़ाई खेलनेवालों की संख्या पर निर्भर करेगी। मैदान के ठीक बाहर—चारों ओर एक गज़ भर चौड़ा रास्ता बना दिया जाता है। यह एक दीवाल का और भीतरी घेरा एक क़िले का चिह्न है।

खिलाड़ियों को दो पक्षों में बांट दिया जाता है जिनमें से एक सुरक्षा-पक्ष होता है और दूसरा आक्रमण-पक्ष। आक्रमणकारियों का लक्ष्य यह होता है कि रक्षा करने-वालों को दीवाल के ऊपर से खींचकर बाहर की भूमि में कर दें। जब कोई रक्षक दीवाल के ऊपर से खींच या उठा लिया जाता है तो वह आक्रमणकारियों के साथ मिल जाता है और उन्हें सहायता देता है। इसी प्रकार रक्षक प्रयत्न करते हैं कि आक्रमण-कारियों को दीवाल के ऊपर से क़िले के भीतर खींच या उठा लायें। जब यह होता है तो आक्रमणकारी रक्षकों के साथ मिल जाते हैं।

यह खेल अकेले-अकेले भिड़न्त का है। वास्तव में किसी भी खिलाड़ी पर विपक्ष के एक से अधिक खिलाड़ियों द्वारा आक्रमण नहीं किया जा सकता, यद्यपि यह नियम के अनुकूल ही है कि एक से अधिक खिलाड़ी विपक्ष के किसी खिलाड़ी को धमकी और इस प्रकार गीदड़-भपकी देकर ध्यान बँटा दें, जब कि दूसरा कोई अचानक आक्रमण कर दे। परन्तु जब खिलाड़ियों में हाथा-पाई होने लगे तो एक से लड़ने के लिए एक ही हों।

किसी भी आक्रमणकारी को दोनों पांव क़िले में दीवाल के भीतर रखने की आज्ञा नहीं है। यदि वह ऐसा करे तो उसको गिरफ्तार समझा जाता है और वह रक्षक बन जाता है। आक्रमणकारी क़िले पर उस समय तक चढ़ाई कर सकते हैं जब तक वे एक पांव पर फुदकते (hop) रहें, परन्तु उन्हें एक पांव भूमि से अलग या दीवाल पर रखना चाहिए। यदि कोई आक्रमणकारी क़िले के भीतर फुदकते समय दूसरा पांव रख देने के लिए बाध्य हो जाय तो वह गिरफ्तार गिना जाता है।

किसी भी रक्षक को दोनों पांव दीवाल से बाहर रखने की आज्ञा नहीं है। यदि वह ऐसा करता है तो उसे गिरफ्तार गिना जाता है और वह आक्रमणकारियों में मिल जाता है। वह फुदक सकता है, परन्तु उसे एक पांव भूमि से अलग या दीवाल के ऊपर रखना चाहिए। जब सारे रक्षक बाहर खींच लिये जाते हैं तो क़िला हाथ आ जाता है। दोनों पक्ष तब स्थान बदल लेते हैं।

खेल के अगुआ के लिए बातें.

१. यह ध्यान रखना कि किसी भी खिलाड़ी से दो विपक्षी खिलाड़ी एक ही समय में न भिड़ें।

२. यह ध्यान रखना कि 'फुदकनेवाले' शत्रु-भूमि में एक पांव ही पर रहें।

३. आक्रमणकारियों को पैंतरेबाज़ी और जोड़-तोड़ का प्रयोग करने में प्रोत्साहन देना।

४. यह ध्यान रखना कि खिलाड़ियों को शारीरिक शक्ति के अनुसार यथासम्भव समानरूप से बांटा जाय।

तालाब में (In the Pond)

इसमें १६ से २४ खिलाड़ी होते हैं।

दो समानान्तर रेखाएँ एक-दूसरी से पांच गज़ दूर भूमि पर खीची जाती है। इन रेखाओं के बीच की भूमि तालाब है। खिलाड़ी दो बराबर की टीमों में बाट दिये जाते हैं। दोनों टीमें तालाब के दोनों किनारों पर खड़ो हो जाती हैं। खेल का अगुआ (Play-leader) तालाब के एक छोर पर खड़ा होता है। जब वह "तालाब में" चिल्लाता है तो दोनों ओर के सभी खिलाड़ी तालाब में कूद जाते हैं। जब वह "तालाब के बाहर" चिल्लाता है तो तो सभो तालाब में से पीछे कूद पड़ते है। यदि कोई खिलाड़ो ठोक तालाब के बाहर नहीं कूदता तो उसे दूसरे पक्ष में सम्मिलित होना पड़ता है। यदि वह किसी भी एक आज्ञा का तुरन्त पालन नहीं करता तो उसे दूसरे पक्ष में सम्मिलित होना पड़ना है। यदि जिस समय खिलाड़ी तालाब के बाहर हों और खेल का अगुआ 'तालाब के बाहर" चिल्लाये और कोई तनिक भी हिले तो उसे दूसरे पक्ष में मिल जाना होगा। इसी प्रकार यदि खिलाड़ी तालाब के भीतर हों और खेल का अगुआ "तालाब में" चिल्लाये तो जो कोई तनिक भी हिले, उसे विपक्ष में मिलना होगा। जिस पक्ष के सदस्य कुछ निश्चित समय के पश्चात् सबसे अधिक हों, जीत उसी पक्ष की होती है।

खेल के अगुआ के लिए बातें.

१. जो हिलते हों उन पर कड़ा ध्यान रखना।
२. अपनी अज्ञाएँ शीघ्रतापूर्वक देना।

एक ग़ायब (One Missing)

इसमें खिलाड़ी १० से १२ तक होते है।

इसमें आवश्यक सामग्री—कुछ मुगदर या छोटे झंडे या बोतल अथवा कोई भी ऐसी चीज़ जो खड़ी हो सके।

खिलाड़ियों की संख्या मुगदरों से एक अधिक होनी चाहिए। खिलाड़ी मुगदरों की रेखा की ओर पीठ करके खड़े किये जाते हैं। "तेज़ क़दम" (Quick March) की आज्ञा (command) पर खिलाड़ी आगे क़दम बढ़ाते हैं। वे मार्च करते ही जाते हैं जब तक कि अगुआ अपनी सीटी न बजा दे। सीटी की आवाज़ पर सब खिलाड़ी पीछे दौड़ते हैं और एक मुगदर को लेने का प्रयत्न करते हैं। एक खिलाड़ी मुगदर बिना रह जायगा। यह खिलाड़ी तब बाहर हो जाता है। खिलाड़ी फिर अपनी पीठ पंक्ति में खड़े मुगदरों की पंक्ति की ओर करके खड़े किये जाते हैं और फिर एक मुगदर कम रखा जाता है। यह क्रम इसी प्रकार चलता रहता है। यहां तक कि केवल एक

खिलाड़ी बच जाता है। यही खिलाड़ी विजेता है। यदि खिलाड़ी बहुत हों तो एक समय में दो-दो मुगदर हटाये जा सकते हैं।

खेल के अगुआ के लिए बातें.

१. यह ध्यान रखना कि सभी खिलाड़ी एक पंक्ति में ठीक से क़दम बढ़ाय (March)। कुछ खिलाड़ियों में धीरे चलने और पीछे रह जाने की प्रवृत्ति पाई जायगी।

२. यह ध्यान रखना कि जब खिलाड़ी क़दम बढ़ाते हैं तो कोई खिलाड़ी इधर-उधर नहीं देखता।

३. दूरी में अदल-बदल करने के लिए, खिलाड़ियों को सीटी बजने से पहले जाने की आज्ञा दे दी जाती है।

कबड्डी या हु-टू-टू*

इन नियमों का पालन ओलम्पिक प्रतियोगिताओं (Tournaments) में होता है और अब वे हिन्दुस्तान भर में लागू हो रहे हैं।

खिलाड़ी.

प्रत्येक पक्ष में ९ खिलाड़ी होते हैं।

खेल की लम्बाई.

मैच में यह खेल कई खंडों में खेला जाता है। प्रत्येक खंड के बीच लगभग ५ मिनट का विश्राम होता है। प्रत्येक खंड के पश्चात् घर बदल जाते हैं।

खेल का मैदान या कोर्ट.

खेल एक ४० फ़ीट लम्बे और ३१ फ़ीट चौड़े आयताकार कोर्ट में खेला जाता है। उसे दो बराबर भागों अर्थात् अर्धखंडों या घरों में, जिनकी लम्बाई-चौड़ाई २० फ़ीट और ३१ फ़ीट होती है, एक मध्य रेखा द्वारा बांट दिया जाता है। असली कोर्ट ४० फ़ीट लम्बा और २५ फ़ीट चौड़ा होता है (प्रत्येक घर २० फ़ीट लम्बा, २५ फ़ीट चौड़ा) और लम्बाई के साथ कोर्ट के दोनों बग़ल में ३ फ़ीट चौड़े दो गलियारे होते हैं।

---

* नियमों के सम्बन्ध में पूछ-ताछ डा० एम० एन० नाटू, बी० एस० सी०, एम० बी० बी० एस०, सेक्रेटरी अखिल महाराष्ट्र शारीरिक शिक्षण-मंडल, ४१८ शनवार, पूना २, से की जा सकती है।

खेल प्रायः असली कोर्ट में होता है और गलियारे 'सघंर्ष' ही में खेल में आते हैं। प्रत्येक घर में मध्य रेखा से ८ फ़ीट दूर एक 'पटक रेखा' (baulk line) होती है। कोर्ट के चारों ओर लगभग १५ फ़ीट साफ़ भूमि हो तो और भी अच्छा है।

खेल.

खेल हवा में सिक्का उछालने से आरम्भ होता है। उछाल (toss) जीतने-वाला अपना घर चुनता है और पहले आक्रमणकारी को भेजता है। उसके पश्चात् प्रत्येक पक्ष बारी-बारी से अपने आक्रमणकारियों को भेजता है। आक्रमणकारी विपक्षी के घर में घुसने से पहले अपनी 'बित्ती' (Cant) आरम्भ कर देता है। वह बित्ती बोलता हुआ घुसता है और जितने विपक्षियों, अर्थात् आक्रमण-विरोधियों या विरोधियों, को बित्ती बोलते हुए छूकर सुरक्षापूर्वक लौट सकता है, छूने का प्रत्यन करता है। विरोधी छुए न जाने का प्रयत्न करते है और वे आक्रमणकारी को पकड़ने और रोक लेने का प्रयत्न भी करते है जिससे कि वह न बचे और बित्ती अपने में बोलते हुए घर में न लौट सके। बित्ती एक या एक से अधिक (Approved syllables) की वह मौखिक ध्वनि है जो एक सांस में लगातार उच्चारित की जाय; जैसे "हू-तू-तू"। जैसे ही कोई आक्रमणकारी और विरोधी एक-दूसरे को छूने हैं, संघर्ष आरम्भ समझा जाता है। जब इस प्रकार का संघर्ष आरम्भ होता है तो गलियारे भी मैदान अथवा खेल में मिल जाते हैं। केवल एक ही खिलाड़ी विपक्षी के घर में आक्रमण करने के लिए जा सकता है। यदि एक से अधिक जायँ तो अम्पायर (Umpire) सबको वापस बुला लेगा और पक्ष की आक्रमण की पारी समाप्त हो जायगी।

विरोधी उस समय खेल से बाहर कर दिया जाता है यदि—

१. यह किसी ऐसे आक्रमणकारी द्वारा छ जाय जो अपने घर सुरक्षापूर्वक पहुँच गया हो।

२. उसने किसी ऐसे आक्रमणकारी को, जो अपने घर सुरक्षित पहुंच जाय, छुआ हो अथवा उसे रोकने में भाग लिया हो।

३. वह खेल के मैदान की सीमाओं के बाहर चला जाय।

४. जिस समय आक्रमण चल रहा हो, आक्रमणकारी के घर को अपने शरीर के किसी अंग से छू ले।

यदि कोई विरोधी, जो उपर्युक्त कारणों में से किसी के फलस्वरूप बाहर कर दिया जाय, आक्रमणकारी को पकड़ने या रोकने में भाग ले तो यह समझा जायगा कि आक्रमणकारी सुरक्षित घर पहुँच गया। इस प्रकार वह सभी विरोधियों को, जिन्होंने उसे रोकने या पकड़ने का प्रयत्न किया था, बाहर करा देगा।

आक्रमणकारी उस समय बाहर होता है जब—

१. वह अपने आक्रमण के बीच पटक-रेखा को एक बार भी पूरी तरह पार न

करे। (यदि वह किसी विरोधी को छू ले अथवा रेखा तक पहुंचने से पहले ही किसी विरोधी द्वारा छू जाय तो उसे रेखा पार करने की कोई आवश्यकता नहीं है)।

२. यदि वह अपनी बित्ती विपक्षी के घर में जारी न रख सके और तभी किसी विरोधी द्वारा छू जाय।

३. यदि वह अपने घर सुरक्षित न पहुंच सके (घर सुरक्षित पहुंचने का अर्थ है अपने घर के मैदान के किसी भी भाग को अपने शरीर के किसी भी भाग से छू लेना। साधारण ढंग से वापस आ जाना या किसी संघर्ष में से सफलतापूर्वक बच निकलना)

४. यदि वह खेल के मैदान की सीमाओं के बाहर चला जाय।

बाल खींचने, आक्रमणकारी के मुंह पर हाथ रख देने, किसी खिलाड़ी को सीमाओं के बाहर कर देने आदि के रूप में कठोर खेल खेलने पर दंड यह दिया जाता है कि जो खिलाड़ी ग़लती करता है उसे 'बाहर' गिना जाता है और जिस खिलाड़ी के साथ ग़लती की गई है, उसे 'बाहर नहीं' गिना जाता है। चिल्लाने, रुकावट डालने या हुल्लड़ मचाने पर भी इसी प्रकार उचित चेतावनी देकर दंड दिया जाता है। फिर भी प्रत्येक टीम को अपने पक्ष को आदेश देने या अम्पायर से बात करने की आज्ञा रहती है। जब एक पक्ष के सभी खिलाड़ी बाहर हो (मर) जाते है तो उस पक्ष के विरुद्ध एक 'लोन' (lona) बनता है और विपक्षी के सम्बन्ध में घोषणा की जाती कि उसने एक 'लोन' बनाया है। खेल तब फिर से आरम्भ किया जाता है और उसमें दोनों पक्षों के खिलाड़ी खेल के आरम्भ की भांति ही भाग लेते हैं।

गिनती.

१. जिस पक्ष का कोई खिलाड़ी आउट होता है, उसका विपक्ष प्रत्येक खिलाड़ी के लिए १० प्वाइन्ट प्राप्त करता है।

२. जब किसी पक्ष के विरुद्ध एक 'लोन' बनता है तो लोन जीतनेवालों को २० प्वाइन्ट प्राप्त होते हैं।

जो पक्ष नियत समय में सबसे अधिक प्वाइन्ट प्राप्त करे, वही जीतता है।